ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(A Center University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

एम.ए. समाजशास्त्र

पाठ्यक्रम कोड : एम.ए.एस. - 015

प्रथम सेमेस्टर

पाठ्यचर्या कोड : - 01

पाठ्यचर्या का शीर्षक : समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्गदर्शन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. कृष्ण कुमार सिंह
प्रभारी निदेशक (दूर शिक्षा निदेशालय)
म.गां.अं.हिं.वि.,वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. शैलजा दुबे
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग उच्च
शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादक मंडल

प्रो. एस.एन. चौधरी
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य
अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभु जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र,
म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अभिषेक त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक
दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड -1
इकाई 1 - श्री दिलीप सिंह
इकाई 2 - श्री दिलीप सिंह
इकाई 3 - श्री दिलीप सिंह

खंड - 2
इकाई 1- डॉ. संगीता सिंह
इकाई 2- डॉ. संगीता सिंह
इकाई 3- डॉ. संगीता सिंह
इकाई 4- डॉ. संगीता सिंह

खंड - 3
इकाई 1 - डॉ. स्वाती एस.मिश्रा
इकाई 2 - डॉ. स्वाती एस.मिश्रा
इकाई 3 - श्री दिलीप सिंह

खंड - 4
इकाई 1- श्री दिलीप सिंह
इकाई 2 - श्री दिलीप सिंह
इकाई 3 - श्री दिलीप सिंह
इकाई 4 - श्री दिलीप सिंह

कार्यालयीन एवं संपादकीय सहयोग

श्री विनोद वैद्य
सहा. कुलसचिव, दू.शि. निदेशालय

श्री अरविन्द कुमार
टेक्निकल असिस्टेंट, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा ठाकरे
टंकक/फार्मेटिंग/इंडिटींग
दू.शि. निदेशालय

श्री सचिन सोनी
सॉफ्टवेयर स्पेशलिस्ट, दू.शि. निदेशालय

श्री गुड्डू यादव
कंप्यूटर ऑपरेटर, दू.शि. निदेशालय

पाठ्यचर्या कोड : एमएएस- 01

पाठ्यचर्या का नाम : समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास

क्रेडिट्स : 04 क्रेडिट

शिक्षण उद्देश्य :

इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के उपरांत –

- समाजशास्त्र के उद्भव के कारणों को समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्र के उद्भव के पीछे फ्रांस एवं औद्योगिक क्रांति की भूमिका को समझने में सक्षम होंगे।
- समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध को समझ सकेंगे।
- समाजशास्त्र के इतिहास एवं विकास को समझ सकेंगे।
- विश्व के अन्य देशों में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास को समझ सकेंगे।
- भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास के कारणों को समझ सकेंगे।

मूल्यांकन के मानदंड :

1. सत्रांत परीक्षा : 70 %
2. सतत आंतरिक मूल्यांकन : 30 %

समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास

खण्ड (1) समाजशास्त्र का उद्भव की पृष्ठभूमि

इकाई : 1 समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियाँ

इकाई : 2 फ्रांस की क्रांति

इकाई : 3 इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति

खण्ड (2) समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध

इकाई : 1 समाजशास्त्र एवं मानवविज्ञान

इकाई : 2 समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान

इकाई : 3 समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र

इकाई : 4 समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र

खण्ड (3) समाजशास्त्र का इतिहास एवं विकास

इकाई : 1 यूरोप में समाजशास्त्र

इकाई : 2 अमेरिका में समाजशास्त्र

इकाई : 3 एक विषय के रूप में समाजशास्त्र

खण्ड (4) भारत में समाजशास्त्र

इकाई : 1 भारत में समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं इतिहास

इकाई : 2 भारत में समाजशास्त्र के संस्थापक

इकाई : 3 मनु, पुराण, ग्रंथ एवं कौटिल्य का समाजशास्त्र

इकाई : 4 समाजशास्त्र एवं भारतशास्त्र का संबंध

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	**खंड - 1 – समाजशास्त्र के उद्भव की पृष्ठभूमि**	
	इकाई -1 समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियाँ	4-15
	इकाई -2 फ्रांस की क्रांति	16-26
	इकाई -3 इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति	27-38
2	**खंड - 2 – समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध**	
	इकाई -1 समाजशास्त्र एवं मानवविज्ञान	39-53
	इकाई -2 समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान	54-69
	इकाई -3 समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र	70-78
	इकाई -4 समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र	79-85
3	**खंड - 3 – समाजशास्त्र का इतिहास एवं विकास**	
	इकाई -1 यूरोप में समाजशास्त्र	86-98
	इकाई -2 अमेरिका में समाजशास्त्र	99-110
	इकाई -3 एक विषय के रूप में समाजशास्त्र	111-122
4	**खंड - 4 – भारत में समाजशास्त्र**	
	इकाई -1 भारत में समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं इतिहास	123-134
	इकाई -2 भारत में समाजशास्त्र के संस्थापक	135-152
	इकाई -3 मनु, पुराण, ग्रंथ एवं कौटिल्य का समाजशास्त्र	153-167
	इकाई -4 समाजशास्त्र एवं भारतशास्त्र का संबंध	168-176

खंड-1 : समाजशास्त्र के उद्भव की पृष्ठभूमि

इकाई-1 : समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियाँ

इकाई की रूपरेखा

1.1.1. उद्देश्य

1.1.2. प्रस्तावना

1.1.3. यूरोप में वैज्ञानिक सामाजिक चिंतन एवं समाजशास्त्र का उद्भव

1.1.4. समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियाँ

1.1.5. पुनर्जागरण काल

1.1.6. वाणिज्यिक क्रांति

1.1.7. वैज्ञानिक क्रांति

1.1.8. पुनर्जागरण का सामाजिक चिंतन पर प्रभाव

1.1.9. प्रबोधन काल

1.1.10. प्रबोधन युगीन चिंतन तथा पुनर्जागरण में अंतर

1.1.11. सारांश

1.1.12. शब्दावली

1.1.13. बोध प्रश्न

1.1.14. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.1.1. उद्देश्य

इस इकाई में समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियों पर विचार किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप: -

1. यूरोप मे वैज्ञानिक चिंतन एवं समाजशास्त्र के उद्भव के बीच संबंध को समझ सकेगें।
2. समाजशास्त्र के उद्भव की सामाजिक परिस्थितियों की व्याख्या कर सकेगें।
3. पुनर्जागरण काल से संबन्धित घटनाओं की विवेचना कर सकेगें।
4. प्रबोधन की व्याख्या कर सकेगें।

1.1.2. प्रस्तावना

इस इकाई में समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियों को समझनें का प्रयास किया गया है। जिसमें समाजशास्त्र के उदय और यूरोप की सामाजिक एवं वैचारिक परिस्थितियों के बीच के संबंध को खोजा जायेगा। ऐसा इस लिए आवश्यक है क्योकि एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का उदय यूरोप की सामाजिक परिस्थितियों में ही क्यो हुआ को भली प्रकार समझ लेने से समाजशास्त्र के उदय को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

शिशु के रूप में मनुष्य की उत्पत्ति एकाएक नही होती उसकी पृष्ठभूमि मे अनेक जैविकीय एवं मानवीय क्रियाओं का योगदान होता है। उसी प्रकार किसी विज्ञान अथवा शास्त्र का उद्भव भी एकाएक नही होता उसकी पृष्ठभूमि मे अनवरत मानवीय चिंतन एवं अध्ययनगत प्रक्रियाओं का योगदान होता है। समाजशास्त्र के उद्भव के संदर्भ में भी यह पूर्णतया सत्य प्रतीत होता हैं। अतः समाजशास्त्र के उद्भव को समझनें के लिए मानवीय चिंतन की उस पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक होगा जो समाजशास्त्र के उद्भव का आधार बना।

मनुष्य मूल रूप से एक जिज्ञासू प्राणी है। जिसके कारण वह अपने पर्यावरण एवं आस-पास घटने वाले घटनाओं को समझनें का प्रयास करता है। उसके बारें में चिंतन करता है, यही कारण है कि समाजिक ताने-बाने के प्रति मानवीय चिंतन मानव समाज एवं सभ्यता के विकास के साथ ही शुरू हो गया था। समाज एवं उसके ताने-बाने के प्रति यही मानवीय चिंतन समाजिक चिंतन कहलाता है। समाजिक चिंतन को स्पष्ट करते हुए बोगार्डस ने लिखा है- ‘‘मानवीय इतिहास अथवा वर्तमान में एक या कुछ व्यक्तियों का सामाजिक समयस्याओं के बारे में विचार करना ही सामाजिक चिंतन है’’ सामाजिक चिंतन पर सदैव सामाजिक कारकों एवं सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव रहा है, जैसी सामाजिक परिस्थितियां रहती है वैसा ही सामाजिक चिंतन, जैसे चिंतन होता है वैसी ही सामाजिक परिस्थितियां बनती है। अर्थात कहा जा सकता ये परस्परिक रूप से अन्तःसम्बन्धित होती है। समाजशास्त्र के जन्मदाता आगस्ट कॉम्ट ने ‘ चिंतन के तीन स्तरों का नियम’ प्रतिपादित किया जिसमे उन्होनें यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक चिंतन की प्रक्रिया तीन स्तरों धार्मिक, तात्विक और वैज्ञानिक से होकर गुजरा है। धार्मिक स्तर में चिंतन का केन्द्र धर्म था जहां सभी सामाजिक घटनाओं को धर्म रूपी चश्में से देखा जाता था। वही तात्विक स्तर में सामाजिक चिंतन इस मान्यता पर आधारित था कि सम्पूर्ण सामाजिक घटना का कारण अमूर्त एवं निराकार शक्ति है। और चिंतन का तीसरा स्तर वैज्ञानिक एवं प्रत्यक्षवादी था। कॉम्ट के अनुसार जिसमें सामाजिक चिंतन तर्क पर आधारित था। सामाजिक घटनाओं कों निरीक्षण, परीक्षण और प्रयोग जैसी वैज्ञानिक पद्धतियों के आधार पर समझनें का प्रयास किया जाता था कही ना कही यही वैज्ञानिक सामाजिक चिंतन समाजशास्त्र के उद्भव का कारण बनता है।

1.1.3. यूरोप में वैज्ञानिक सामाजिक चिंतन एवं समाजशास्त्र का उद्भव

पुनर्जागरण काल के पहले तक यूरोप मे समाज के प्रति मानवीय चिंतन धार्मिक एवं दार्शनिक विचारों से प्रभावित था लेकिन पुनर्जागरण काल से यूरोप मे तार्किक एवं वैज्ञानिक चिंतन का आरम्भ हुआ। उसके बाद यूरोप में अनेक वैज्ञानिक अविष्कार हुए जिसका मुख्य कारण सामाजिक, प्राकृतिक और भौतिक घटनाओं के प्रति तार्किक मानवीय चिंतन था। समाज के प्रति वैज्ञानिक चिंतन का परिणाम था कि समाजिक जीवन की वास्तविकताओं को समझनें के लिए तार्किक पद्धतियों का प्रयोग शुरू हुआ। और पहली बार समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करने वालें सामाजिक विज्ञान की आवश्कता महसूस हूई। सेन्टसाइमन वह पहले विद्वान थे जिन्होनें यह विचार रखा कि फ्रांस की क्रांति और इग्लैड़ के औद्यौगिक क्रांति से होने वाले सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उथल-पुथल से हमारें समाज का ढांचा इतना बदल चुका है कि इसका अध्ययन करने वालें एक नये सामाजिक विज्ञान की आवश्यकता है। क्योकि उस समय तक समाज वैज्ञानिकों के चिंतन का केन्द्र आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन तक ही सीमित रहता था। सेंटसाइमन से प्रभावित होकर फ्रांसीसी विद्वान आगस्ट कॉम्ट ने सर्वप्रथम ऐसे सामाजिक विज्ञान की रूप रेखा प्रस्तुत की जिसमें केवल सामाजिक घटनाओं का ही तार्किक, वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन किया जाए। वैज्ञानिक एवं तार्किक अध्ययन पद्धति पर आधारित इस नये विज्ञान को आगस्ट कॉम्ट ने सन् 1824 सामाजिक भौतिकी नाम से सम्बोधित किया। सन् 1838 में कॉम्ट नें इस विज्ञान को सामाजिक भौतिकी की जगह समाजशास्त्र के नाम से सम्बोधित किया। कॉम्ट ने स्पष्ट किया कि यूरोप में पुनर्जागरण के बाद जो सामाजिक दशाएं पैदा हुई उन्होनें सामाजिक चिंतन के लिए समाजशास्त्र को ही सबसे महत्वपूर्ण विज्ञान के रूप मे विकसित किया।

1.1.4. समाजशास्त्र के उदय की सामाजिक परिस्थितियाँ

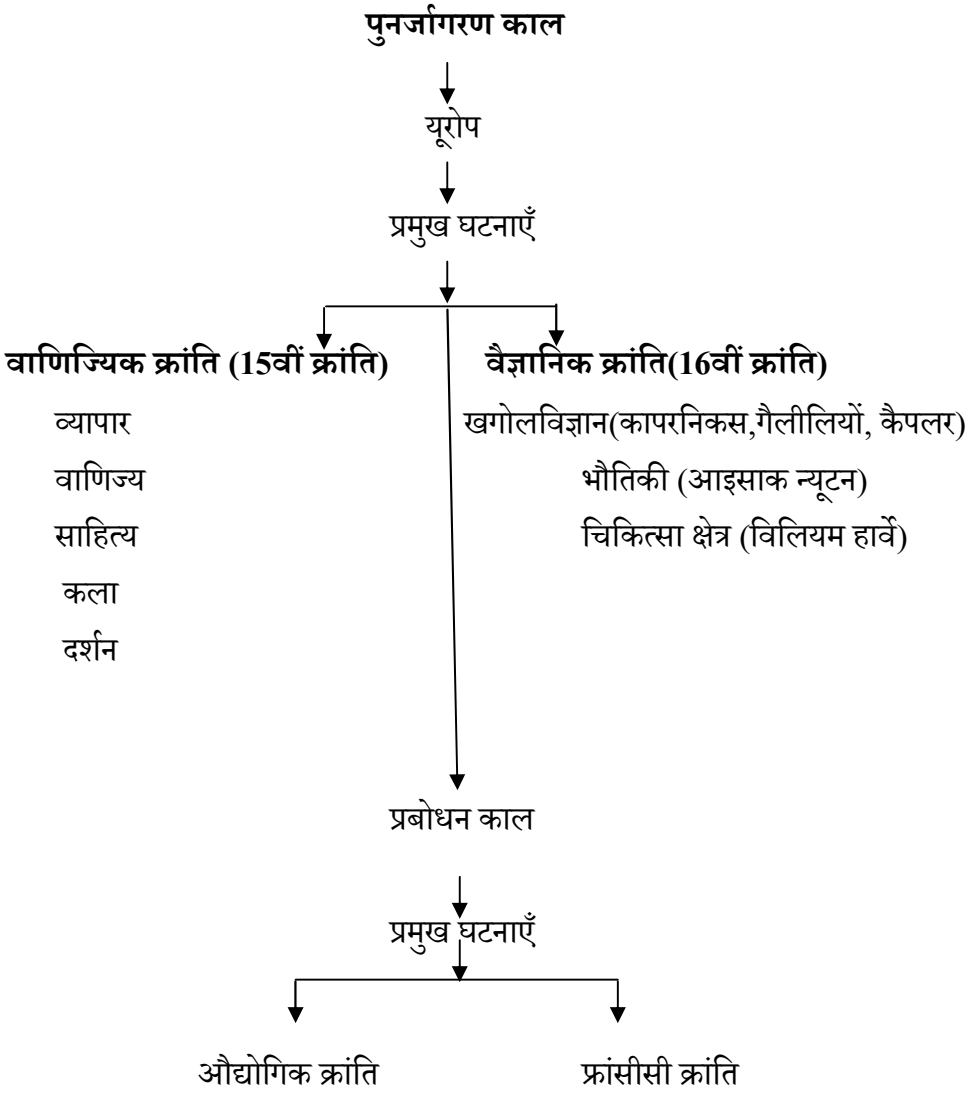

15वीं, 16वीं शताब्दीं से यूरोप मे वाणिज्यिक क्रांति एवं वैज्ञानिक क्रांति होती है जो 18 वी शताब्दी तक चलती है जिसनें यूरोप मे मानवीय चिंतन की दिशा ही बदल दी। और वहाँ व्याप्त परम्परावादिता, अंधविश्वास, अतार्किकता, रूढवादिता को चुनौती दीं। जिन्हें सयुक्त रूप से पुनर्जागरण कहा गया। पुनर्जागरण की यह घटना 16 वीं शताब्दी से लेकर 17 वीं शताब्दी के अन्त तक चलती है। जिसे पुनर्जागरण काल कहा गया। पुनर्जागरण काल ही 18वीं शताब्दी मे यूरोप मे प्रबोधन काल का आधार बना जिसमे प्रमुख रूप से इग्लैड की औद्योगिक क्रांति एवं फ्रांसीसी क्रांति की घटनाए हुई। जो समाज के लिए वैज्ञानिक मानवीय चिंतन का आधार बनी। इस लिए समाजशास्त्र के उद्भव के कारण को विस्तृत समझनें के लिए पुनर्जागरण काल एवं प्रबोधन काल की घटनाओं को समझना आश्यक होगा।

1.1.5. पुनर्जागरण काल

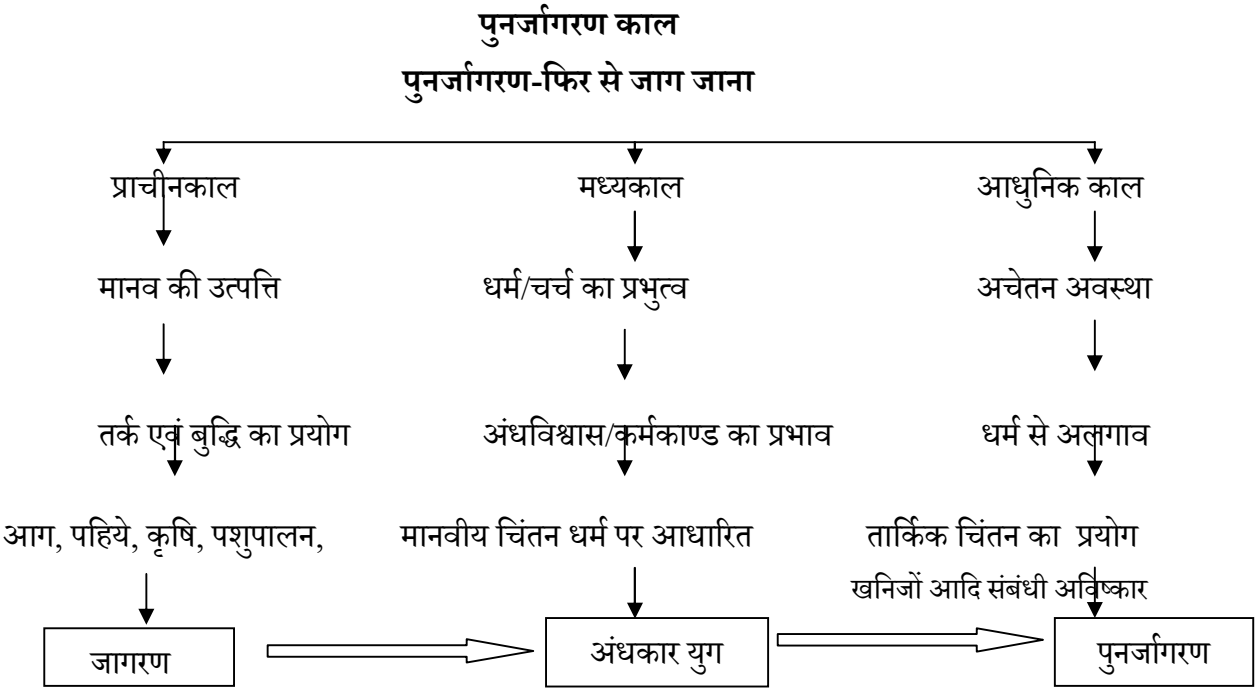

पुनर्जागरण का शाब्दिक आशय फिर से जागना है। विचारों की इस नई चेतना ने मध्यकालीन यूरोपीय समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं रूढिवादिता को चुनौतीं दी।और व्यापार, वाणिज्य, कला, साहित्य, संगीत, विज्ञान में एक स्वतंत्र चिंतन को जन्म दिया। जों तार्किकता एवं वैज्ञानिकता पर आधारित थी।

पुनर्जागरण सबसे पहले इटली से आरम्भ हुआ। और वहा से स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, इंग्लैण्ड और जर्मनी में फैला। यूरोप मे 1340 से 17वीं शताब्दी तक दो क्रांतियां हुईं। पहला वाणिज्यिक क्रांति दूसरा वैज्ञानिक क्रांति इन्हीं दोनो क्रांतिओं के काल को सयुक्त रूप से पुनर्जागरण काल कहा जाता है। जिसने यूरोप में तार्किकता का सृजन किया।

1.1.6. वाणिज्यिक क्रांति

क्रांति किसी भी वस्तु, घटना या परिस्थिति में होने वाला अमूल-चूल बदलाव है। वाणिज्यिक क्रांति का अभिप्राय उस अमूल-चूल एवं व्यापक बदलाव से है, जो मध्यकालीन यूरोपीय समाज की अर्थव्यस्था में आया, जिससे वहा के व्यापार एवं वाणिज्य का तेजी से विस्तार हुआ। वास्तव मे यह क्रांति यूरोप के कुछ देशों द्वारा अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता को बढानें के लिए किये गयें प्रयास का परिणाम थी। इसमे प्रमुख रूप से स्पेन, पुर्तगाल, हालैण्ड और इंग्लैंड थे। यूरोप में वाणिज्यिक क्रांति का काल 14वीं शताब्दी से

18वीं शताब्दी के मध्य तक माना गया। इस क्रांति को स्पष्ट रूप से समझनें के लिए इसके पीछें के कारण को समझना आवश्यक होगा।

वाणिज्यिक क्रांति के कारण

1- व्यापारिक वर्ग का उदय - यूरोप में सामंतवाद का पतन तथा धर्मयुद्ध का दौर चल रहा था। मार्कोपोलो ने पूर्वी देशों की यात्रा की जिसकें विवरणों से यूरोपवासियों को पूर्वी देशों की वस्तुओं के विषय में जानकारी प्राप्त हुई इसका प्रभाव यह हुआ कि पूर्वी देशों की भोग-विलास की वस्तुओं एवं मसालों की मॉग यूरोप में तेजी से बढनें लगी। जिससें यूरोप मे एक नवीन व्यापारिक वर्ग का उदय हुआ। प्रारंभ में इटली के उत्तरी शहर वेनिस तथा जेनेवा इस तरह से व्यापारिक क्रेन्द थे। मसालों, रेशम आदि के व्यापार से इन व्यापारियों को अत्यधिक लाभ हुआ।

2- तुर्कों का कुस्तुनतुनिया पर अधिकार - धर्म युद्धों के पश्चात् यूरोपीय व्यापार को उस समय भारी क्षति हुई जब कुस्तुनतुनिया पर अधिकार कर लिया। और यूरोप के उस व्यापारिक मार्ग को बन्द कर दिया जिसकें माध्यम से वें भारत सहित पूर्वी देशों से व्यापार करते थे।

3- समुद्री यात्राएं और भौगोलिक खोजें- यूरोप वासी पूर्वी देशों के मसालों, कपडो एवं भोग-विलास के वस्तुओं के आदी हो चुके थे। स्थल व्यापारिक मार्ग के बन्द हो जाने के कारण वें नवीन समुद्री मार्गो के खोज की ओर प्ररित हुए। इटलीवासी क्रिस्टोफर कोलम्बस स्पेन के राजा के संरक्षण में भारत की खोज पर निकला था । किंतु वह उत्तरी अमेरिका जा पहुचा इस तरह अचानक ही अमेरिका जैसे देश की खोज हुई। अमेरिका के इस संयोगमय खोज से स्पेन को बहुत लाभ हुआ। 1498 में पुर्तगाल के यात्री वास्कोडिगामा ने समुद्री मार्ग से भारत की खोज की। जिससे यूरोप का भारत से व्यापार का नया मार्ग खुला।

इन भौगोलिक खोजें ने यूरोप के व्यापारिक क्षेत्र में व्यापक बदलाव लाये। और यूरोपीय व्यापार में इटली के एकाधिकार को समाप्त किया। जिससे पुर्तगाल, स्पेन, हालैंण्ड, इग्लैण्ड, फ्रांस को व्यापार में व्यापक लाभ मिला।

4- बैंकिंग व्यवस्था एवं कंपनियों का विकास- बैंकिग व्यवस्था का विकास वाणिज्यिक क्रांति का प्रमुख पहलू था जिससे यूरोप में व्यापारिक ढांचा मजबूत हुआ। और वहां आधुनिक बाजार प्रणाली विकसित हुई जिससे वहां व्यापार करना सरल हो गया। सोनें एवं चॉदी के सिक्को के स्थान पर कागज मुद्रा का चलन हो गया। जिसके फलस्वरूप 16वीं शताब्दी यूरोप मे कंपनियों का उद्भव हुआ। अनेक कम्पनियां ऐसी थी जो संयुक्त पूँजी के माध्यम से विकसित हुई थी। जिसमें कुछ कंपनियों को सरकार द्वारा किसी विशेष क्षेत्र में व्यापार का एकाधिकार प्राप्त था। जिन्हे चाटर्ड कम्पनियां कहा गया। ब्रिटिश ईस्ट इण्डियां कम्पनी इसी प्रकार की कम्पनी थी।

1.1.7. वैज्ञानिक क्रांति

पुनर्जागरण काल की दूसरी प्रमुख घटना वैज्ञानिक क्रांति थी। जिसकी शुरूवात लगभग 15वीं शताब्दी हुई, जब यूरोप मे समद्री यात्रियो के लिए दिशाओं एवं मानचित्रों की सटीक जानकारी की आश्यकता हुई तो इनका तार्किक एवं वैज्ञानिक तरीकों से निर्माण किया गया। यही से वैज्ञानिक क्रांति की शुरूवात मानी जाती है। मध्यकालीन यूरोप में मानवीय चिंतन का क्रेन्द धर्म था प्राकृतिक, भौतिक, भौगोलिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि जैसे सभी पहलुओं का चिंतन धार्मिक अंधविश्वासो एवं रूढिवादिता पर आधारित था लेकिन 16वीं शताब्दी आते-आते यूरोप मे नवीन बौद्विक चेतना का उदय हुआ जिसमे मानवीय चिंतन की दिशा ही बदल दी। धार्मिक चिंतन का स्थान तार्किक चिंतन ने ले लिया गणित, खगोलशास्त्र, भौतिकी, चिकित्सा आदि क्षेत्रों मे नवीन तार्किक चिंतन एवं अनुसंधान शुरू हुए। जिसके परिणाम स्वरूप विभिन्न वैज्ञानिक अविष्कार हुए। मानवीय चिंतन में इसी क्रांतिकारी बदलाव को वैज्ञानिक क्रांति के नाम से जाना गया। वैज्ञानिक क्रांति को विस्तार पूर्वक समझनें के लिए समकालीन वैज्ञानिक घटनाओं एवं चिंतनों को समझना आवश्यक होगा।

भौतिकी एवं खगोलशास्त्र- निरीक्षण, परीक्षण एवं प्रयोगात्मक पद्वतियों पर आधारित भौतिक वैज्ञानिक एवं खगोलशास्त्रीयों के विचारों से वैज्ञानिक चिंतन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। जिसने मनुष्य और प्रकृति के बीच नये चिंतन को जन्म दिया इन विचारकों मे प्रमुख रूप से कापरनिकस, गैलीलियो, केपलर तथा न्यूटन आदि थे

1. कापरनिकस- कापरनिकस के सिद्धन्त ने उस आधार को ही धराशायी कर दिया जिस पर पुराना विश्व खडा था। यह आम धारणा था कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य तथा अन्य नक्षत्र आदि उसके चारों ओर घूमते है, पृथ्वी सृष्टि का क्रेन्द है के मत को कापरनिकस ने अस्वीकार किया और बताया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती हैं।

2. गैलीलियों- गैलीलियो ने नक्षत्रशास्त्र मे विशेष योगदान दिया, इन्होनें दुरबीन का निर्माण किया। उसकी मदद से सिद्ध किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर घुमने के साथ-साथ सूर्य की परिक्रमा करती है।

3. केपलर- केपलर ने गणितीय आधार पर कापरनिकस के सिद्धांत को पुष्ट किया था। इन्होंने अपने सिद्धांत मे बताया कि पृथ्वी और दुसरे नक्षत्र जो सूर्य के चारो ओर परिक्रमा करते है उनका मार्ग वृत्ताकार न होकर अण्डाकार है

चिकित्सा क्षेत्र - चिकित्सा में जॉच पडताल के लिए मृत मानव शरीर की स्वीकृत दे दी गयी। जिससे डाक्टरों एवं चिकित्सकों ने शरीर की रचना का प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण किया। विलियम हार्वे ने शरीर के रक्त परिसंचरण की खोज की।

मानवीय सावयव (शरीर) के तार्किक अध्ययन का प्रभाव सामाजिक चिंतन पर भी पडा जिसमे कॉम्ट, स्पेन्सर, दुर्खीम के विचार प्रमुख थे।

1.1.8. पुनर्जागरण का सामाजिक चिंतन पर प्रभाव

1. पुनर्जागरण ने धार्मिक अंधविश्वास एवं पारलौकिक चिंतन के स्थान पर तार्किक एवं वैज्ञानिक चिंतन को प्रधानता दी। जिससे मानव बुद्धि को चिंतन की स्वतंत्रता प्राप्त हुई, परिणाम स्वरूप विभिन्न वैज्ञानिक अविष्कार हुए।
2. धार्मिक रूढिवादिता के विरोध के कारण यूरोप के लोगों के जीवन पर धर्म का नियंत्रण कमजोर हुआ जिससे धर्मनिरपेक्ष चिंतन की शुरूवात हुई।
3. मानवतावादी एवं भौतिकतावादी चिंतन को प्रोत्साहन मिला जो इस बात पर बल देता था कि मानव से अद्भुत कुछ भी नही। मानव एक महान चमत्कार है। अपनी चिंतन शाक्ति बुद्धि के कारण वह समस्त प्राणियों मे श्रेष्ठ है।
4. पुनर्जागरण में समाज के प्रति नये दृष्टिकोण को जन्म दिया जो प्रकृतिक घटनाओं के साथ सामाजिक घटनाओं का भी निरीक्षण, परीक्षण जैसी तार्किक एवं वैज्ञानिक पद्वतियों के माध्यम से अध्ययन पर बल दिया। इस तरह से पुनर्जागरण ने मानवीय चिंतन को अंधविश्वासों तथा रूढिवादी परम्पराओं से मुक्त कर तर्क एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्थापना की इससे मानव बुद्धि को ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में असीमित अवसर प्राप्त हुए।

1.1.9. प्रबोधन काल

यूरोप में प्रबोधन पुनर्जागरण के बाद की बौद्धिक चिंतन की अवस्था है। जिसमें पुनर्जागरण काल में विकसित हुई वैज्ञानिक चेतना ने, तर्क एवं अन्वेषण की प्रकृति ने परिपक्वता प्राप्त कर ली। वैज्ञानिक चिंतन की इस परिपक्व अवस्था को प्रबोधन कहा गया। यूरोप में 17वीं शताब्दीं के अन्तिम दशक से लेकर 18वीं शताब्दी के अन्तिम दशक की अवधि जिसमें मानवीय चिंतन मे क्रांतिकारी बौद्धिक परिवर्तन हुए, को प्रबोधन काल या ज्ञानोदय काल कहा गया। इसका आधार पुनर्जागरण, धर्म सुधार आंदोलन वा वाणिज्यिक क्रांति तैयार किया था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रबोधन पुनर्जागरण की विकसित एवं परिपक्व अवस्था है।

प्रबोधन कालीन चिंतकों इस बात बल दिया कि भौतिक, प्राकृतिक एवं सामाजिक घटनाओं के पीछे किसी न किसी व्यवस्थित अपरिवर्तनशील और प्राकृतिक नियम का हाथ है। जिसकी सत्यता को निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग जैसी वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से परखा जा सकता है। इस तरह से कार्य-कारण संबंध का अध्ययन प्रबोधन कालीन चिंतन का केंदी्रय तत्व था।

प्रबोधन काल की प्रमुख घटनाएँ

पुनर्जागरण काल में सामाजिक एवं भौतिक घटनाओं के प्रति जिस तार्किक चिंतन की शुरूवात हुई वह प्रबोधन काल में अपनी परिणति तक पहुचीं। प्रबोधन काल की प्रमुख घटनाऐं औद्योगिक क्रांति एवं फ्रांसीसी क्रांति थी। जिन्होनें सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, जीवन में व्यापक परिवर्तन लाए।

1. फ्रांसीसी क्रांति - फ्रांसीसी क्रांति विश्व की उन महानतम घटनाओं में से एक है। जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व के लोगों का चिंतन बदल गया। फ्रांसीसी क्रांति ने पूरी दुनिया के समाज को स्तंवत्रता, समानता, बन्धुत्व जैसे सामाजिक मूल्य दिए। यह मूल रूप से एक सामाजिक क्रांति जिससे न केवल सामाजिक चिंतन में बदलाव आया बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था बदल गयी।

2. इंलैण्ड के औद्योगिक क्रांति - 19वीं शताब्दी के सामाजिक चिंतन को प्रभावित करने में यूरोप की औद्योगिक क्रांति का बडा योगदान था। औद्योगिक क्रांति ऐसी दशा है जिसमें कृषि उत्पादन और कुटीर उद्योगों के स्थान पर बड़ी-बड़ी मशीनों के माध्यम से उद्योग लगाये गये। और काफी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन किया जाने लगा। जिसके फलस्वरूप समाज की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन आए। यह क्रांति मनुष्य की आर्थिक एवं भौतिक जीवन में अमूल-चूल परिवर्तन लाने वाली क्रांति थी।

प्रबोधन का प्रभाव

1. प्रबोधन काल में स्वतंत्रता, समानता बन्धुत्व जैसे सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों का उदय हुआ। जिसका प्रभाव पूरे विश्व के समाज पर पड़ा।
2. पूँजीवादी व्यवस्था का उद्भव हुआ, जिससें यूरोपीय समाज कें पुराने वर्ग ध्वस्त हो गये और नये वर्गों ने जन्म लिया।
3. वैज्ञानिक सिद्धांत एवं तकनीक के सम्मिलन ने औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया।
4. इस युग में सामन्तवादी यूरोप के परम्परागत चिंतन मे क्रांतिकारी परिवर्तन आया इससे यर्थाथ की नयी दृष्टि और उसकें चिंतन के नये तरीकों ने जन्म लिया।
5. यूरोपीय समाज में धर्म (चर्च, पादरी) या राजा की कही बात को अन्तिम सत्य माननें की प्रवृति समाप्त होने लगी। जिसके फलस्वरूप राजतंत्र की समाप्त हुई और गणतंत्र या प्रजातंत्र का आगमन हुआ।

1.1.10. प्रबोधन युगीन चिंतन तथा पुनर्जागरण में अंतर

ज्ञान का आधार - पुनर्जागरण का बल ज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक था। जबकि प्रबोधन युगीन चिंतन का मानना था कि ज्ञान वही है जिसका परीक्षण किया जा सके और जो व्यवहारिक जीवन के उपयोग में लाया

जा सके। इस तरह प्रबोधन कालीन चिंतन का बल सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-साथ व्यवहारिक पक्ष पर भी समान रूप से था।

ज्ञान प्राप्ति के आधार - पुनर्जागरण कालीन वैज्ञानिक अन्वेषण निजी प्रयास का प्रतिफल था। वही प्रबोधन कालीन वैज्ञानिक अन्वेषण सामूहिक प्रयास का परिणाम था।

पुनर्जागरण के समय यूरोपीय समाज का मध्यवर्ग इस बात पर बल देता था कि अतीत से प्राप्त ही श्रेष्ठ है। जिसके कारण वे ग्रीक एवं लैटिन साहित्य पर अधिक बल देते थें। वही प्रबोधन कालीन मध्यम वर्ग ने राजतंत्र की निरंकुशता एवं चर्च के आडंबर के खिलाफ आवाल उठाई और तर्क के माध्यम से सामाजिक घटनाओं को समझनें पर बल दिया।

18वीं शताब्दी मे फ्रांसीसी क्रांति एवं औद्योगिक क्रांति ने फ्रांसीसी सामाजिक संरचना में व्यापक परिवर्तन लाए जहां कोई भी सामाजिक व्यवस्था स्थायित्व को प्राप्त नही कर पा रही थी। समाज अनेकों समस्याओं का सामना कर रहा था।लेकिन इस समय तक यूरोप में यह माना जाने लगा था कि प्रत्येक सामाजिक घटना कुछ निश्चित सामाजिक नियमों का परिणाम होती है। इन नियमों का वैज्ञानिक आधार पर विवेचना किया जा सकता है। इसी से प्रभावित होकर आगस्ट कॉम्ट ने सेंटसाइमन के साथ मिलकर इस बात पर बल दिया कि सम्पूर्ण सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र सामाजिक विज्ञान की आवश्यकता है। फलस्वरूप आगस्ट कॉम्ट नें समाजशास्त्र के रूप में एक नये सामाजिक विज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत की।

1.1.11. सारांश

इस इकाई में आप ने पढा कि किस प्रकार सामाजिक परिस्थितियाँ मानवीय चिंतन को प्रभावित करती है। आपने देखा कि कैसे पुनर्जागरण की घटनाओं ने मानवीय चिंतन में तार्किकता का समावेश किया। जो 17वीं तथा 18वीं शताब्दी के प्रबोधन काल में परिपक्वता को प्राप्त किया। आगस्ट कॉम्ट ने फ्रांस की सामाजिक परिस्थितियों के प्रभावित होकर समाज का तार्किक एवं वैज्ञानिक चिंतन करने वाले विशेष विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र को स्थापित किया।

1.1.12. शब्दावली

पुनर्जागरण- पुनर्जागरण का शाब्दिक आशय 'फिर से जागना' है मध्यकालीन यूरोपीय समाज जो धार्मिक अंधविश्वास, रूढिवादिता, अतार्किकता से ग्रसित था में तार्किकता रूपी नयी चेतना का उदय पुनर्जागरण कहलाता है।

प्रबोधन - 17वीं/18वीं शताब्दी के बीच का वह काल जिसमें यूरोप में वैज्ञानिक चेंतना प्रबल हुई और यह माना जाने लगा कि प्रकृतिक घटनाओं के साथ सामाजिक घटनाओं का तार्किक एवं वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। फ्रांसीसी क्रांति ऐसी ही चेतना का परिणाम है।

सामंतवादी - मध्यकालीन यूरोप में कृषि क्षेत्रों मे भूस्वामित्व की प्रणाली जिसमें, मजदूर भूस्वामियों की सेवा करते थे। इसके बदले भूस्वामी मजदूर को अपनी जमीन पर खेती करने तथा रहने की अनुमति देते थे।

चाटर्ड कंपनियाँ - 17वीं शताब्दी में यूरोप की वें कंपनियां जिन्हें सरकार की ओर से किसी विशेष क्षेत्र में व्यापार के एकाधिकार की गांरटी मिली हुई थी। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी इसी प्रकार कंपनी थी।

1.1.13. बोध प्रश्न

1.1.13.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. समाजशास्त्र के उद्भव की सामाजिक परिस्थितियों का विस्तृत रूप से विवेचना कीजिए?
2. पुनर्जागरण से आप क्या समझते हैं? पुनर्जागरण के कारणों तथा प्रभावो का वर्णन कीजिए।
3. पुनर्जारण काल की प्रमुख घटनाओं को विस्तार पूर्वक समझाइये।

1.1.13.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पुनर्जागरण क्या है?
2. वैज्ञानिक क्रांति पर टिप्पणी लिखिए।
3. प्रबोधन क्या है?
4. वाणिज्यिक क्रांति पर प्रकाश डालिए।

1.1.13.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ होता है।
   (क) फिर से जागना
   (ख) वैज्ञानिक प्रगति
   (ग) सांस्कृतिक प्रगति
   (घ) धार्मिक प्रगति
2. वैज्ञानिक क्रांति में योगदान दिया था।
   (क) कापरनिकस
   (ख) कैपलर
   (ग) हार्बे
   (घ) उपर्युक्त सभी

3. पुनर्जागरण काल की प्रमुख घटनाएँ थी।

(क) वाणिज्यिक क्रांति

(ख) फ्रांसीसी क्रांति

(ग) वैज्ञानिक क्रांति

(घ) क एवं ग दोनों

4. समाजशास्त्र का उद्भव किस शताब्दी में हुआ था?

(क) 18वीं शताब्दी

(ख) 19वीं शताब्दी

(ग) 20वीं शताब्दी

(घ) 17वीं शताब्दी

5. समाजशास्त्र का उद्भव किस सन् में हुआ था?

(क) 1838

(ख) 1839

(ग) 1828

(घ) 1848

1.1.13.4. प्रश्नोत्तर

1. (क)
2. (घ)
3. (घ)
4. (ख)
5. (क)

1.1.14. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

2. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2014). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.

4. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. (2007). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-2 : फ्रांस की क्रांति

इकाई की रूपरेखा

1.2.1. उद्देश्य

1.2.2. प्रस्तावना

1.2.3. फ्रांस की क्रांति

1.2.4. फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व फ्रांस की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

1.2.5. फ्रांसीसी क्रांति एवं बौद्धिक चिंतन

1.2.6. फ्रांसीसी क्रांति की प्रमुख

1.2.7. फ्रांसीसी क्रांति के कारण

1.2.8. फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव

1.2.9. सारांश

1.2.10. शब्दावली

1.2.11. बोध प्रश्न

1.2.12. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.2.1. उद्देश्य

इस इकाई में फ्रांसीसी क्रांति का गहनता के साथ अध्यन किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप के द्वारा संभव होगा:

1. फ्रांसीसी क्रांति तथा उसके पृष्ठभूमि की व्याख्या करना।
2. फ्रांसीसी क्रांति तथा समकालीन बौद्धिक चिंतन के बीच के संबंधों की विवेचन करना।
3. फ्रांसीसी क्रांति के प्रमुख घटनाओं का वर्णन करना।
4. फ्रांसीसी क्रांति के कारणों और प्रभावों की विवेचना करना।

1.2.2. प्रस्तावना

यूरोपीय समाज में पुर्नजागरण काल के बाद मानवीय चिंतन में तार्किता का समावेश होना लगा था। 18वीं शताब्दी तक फ्रांस में इसकी (तार्किता) परिपक्वता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगी। जब मान्टेस्क्यू, वाल्टेयर, रूसों जैसे विचारकों ने फ्रांसीसी समाज में व्याप्त निरंकुश राजतंत्र, शोषणकारी सामंतवाद तथा धर्माधिकारियों के अंधविश्वासों एवं आडंबरों का कड़ा विरोध शुरू किया। फ्रांस के समाज पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। जिससे शोषित, प्रताड़ित जनता का असंतोष चरम पर पहुच गया। जिसकी प्ररिणति फ्रांसीसी क्रांति के रूप में हुई। इस क्रांति ने फ्रांस के सामाजिक, आर्थिक,राजनीतिक व्यवस्था में अमूल-चूल बदलाव लाने के साथ, फ्रांस में स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व जैसे नवीन तार्किक मूल्यों के स्थापना की। बाद जिसकी प्रभाव सम्पूर्ण मानवीय समाज पर पडा।

इस इकाई में फ्रांस की क्रांति के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी।

1.2.3. फ्रांस की क्रांति

1789 में हुई फ्रांसीसी क्रांति एक वैचारिक क्रांति थी। जिसनें यूरोप के साथ-साथ पूरे विश्व के समाज में स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व जैसे तार्किक विचारधारा के स्थापित किया। इस क्रांति का अध्ययन करने वाले अनेक सामाजिक विचारकों का मानना है कि दुनिया की किसी दूसरी घटना ने विभिन्न देशो में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संरचना को इतना प्रभावित नही किया जितना की फ्रांस की क्रांति ने। फ्रांस की यह क्रांति विश्व की उन प्रमुख घटनाओं में से है। जिसने पूरे विश्व में लोगों के चिंतन के आधार को ही बदल दिया। यह चिंतन राज्य और समाज को नवीन सिद्धांतों पर पुनर्गठित किया जिसमें जनता के आंकाक्षाओं और सामाजिक मूल्यों को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। फ्रांस की क्रांति को समझने के लिए उन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक दशाओं को समझना आवश्यक होगा जिसकी पृष्ठभूमि में फ्रांसीसी क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ।

1.2.4. फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व फ्रांस की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

1. सामाजिक स्थिति - फ्रांसीसी क्रांति का प्रमुख कारण सामाजिक असमानता थी। जिसका कोई तार्किक आधार नही था। फ्रांस की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था सामंतवादी व्यवस्था थी, जिसमें सामन्तों को सभी तरह के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विशेषाधिकार मिले हुए थे। जब कि साधारण जनता को वे सुविधाएं भी उपलब्ध नही थी। जिनसे वे अपनी सामान्य आवश्यकताओं को भी पूरा कर पाते। इस तरह सामंतवादी सम्पत्ति समूहों एवं विशेषाधिकारों के आधार पर फ्रांसीसी समाज निम्नलिखित तीन वर्गों में बटा था।

क. प्रथम सम्पत्ति समूह या धर्माधिकारी वर्ग- इस वर्ग में चर्च के धर्माधिकारी आते थे जिन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। यह वर्ग धनी तथा शक्तिशाली था ये राज्य द्वारा लगाये गये सभी प्रकार के करों से

मुक्त थे। और बहुत ही वैभवशाली जीवन बिताते थे। वास्तविकता में धार्मिक जीवन के बजाय राजनीतिक जीवन में इनकी रूचि अधिक थी। इस तरह इनका जीवन सांसारिक लोगो के समान था इनका नैतिक स्तर निम्न था और योग्यता साधारण थी।

ख. सामंत वर्ग- फ्रांसीसी समाज में विशेषाधिकार प्राप्त दूसरा वर्ग (इस्टेट) सामन्तो का था। चर्च के पदाधिकारियों के समान ये भी करों से मुक्त थे उच्च पदों पर इनका अधिकार था। प्रथम धनी भूस्वामी सामंत थे जो बडी-बडी जगीरों के स्वामी थे। ये बडी शान-शौकत की जिंदगी बसर करते थे और फिजूल खर्ची इनकी पहचान थी। ये खुद कोई काम नही करते थे इनकी तुलना भारत के सामन्ती जमीदारों से की जा सकती है।

ग. साधारण जनता - फ्रांस की शेष बहुसंख्यक जनता तृतीय श्रेणी में थी जो कुल आबादी का 99 प्रतिशत थी। इसमें किसान, व्यापारी, कारीगर, तथा अन्य श्रमिक वर्ग के लोग आते थे। यह वर्ग विशेषाधिकारों से वंचित था राज्य के सामस्त करों का भार इसी वर्ग पर था। ये पूरे समाज के लिए अन्न उपजाते थे, परंतु स्वयं भूखो मरते थे। सरकार द्वारा कोई संरक्षण न होने से वे बड़ी कठिनाई से जीवन गुजारते थे। राजा अन्य दो वर्गो धर्माधिकारी तथा सामन्तों को खुश करने के लिए इस तीसरे वर्ग का शोषण करता था। किसानो के मुकाबले मध्यम वर्ग की दशा काफी बेहतर थी बुर्जुआ कहलाने वाले इस वर्ग में व्यापारी, बैंकर, वकील आदि शामिल थे ये लोग भी तीसरे वर्ग के अर्न्तगत आते थे।

2. राजनीतिक स्थिति - फ्रांस में राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली थी जहां राजा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। राजा को यह शक्ति दैवीय आधिकार से प्राप्त था जहां राजा का दावा था कि वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, ईश्वर द्वारा प्रदत्त अधिकारों के माध्यम से वह शासन करता है, ईश्वर को छोड़कर वह अन्य किसी के प्रति उत्तरदायी नही था। फ्रांस पर लगभग 200 वर्षो तक इसी निरंकुश बोर्बन वंश का शासन था जहां आम जनता को किसी प्रकार का व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त नही था उसका काम केवल तरह-तरह से राजा तथा नोबल वर्ग की सेवा करना था। राजा का आदेश ही कानून था लुई 14वाँ कहता था 'मै ही राज्य हूँ' उसकी प्रजा उसके पूरे नियंत्रण में थी वह किसी को भी बन्दी बना सकता था। और किसी की भी सम्पत्ति जब्त कर सकता था। सामान्य जनता की अभिव्यक्ति पर उसका नियंत्रण था। 1974 में लुई 16वाँ फ्रांस का राजा बना जो एकदम कमजोर और प्रभावहीन शासक था।

3. आर्थिक स्थिति - फ्रांस की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। राज्य का व्यय उसकी आय से बहुत अधिक था। लुई 16वें को यह आर्थिक दिवालियापन पूर्ववर्ती राजाओं से प्राप्त हुआ था। लुई 16वें से पहले फ्रांस के राजाओं ने कई लडाईयां लड़ी जिससे आर्थिक रूप से फ्रांस को काफी नुकसान हुआ। लुई 15वाँ राज्य की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के बजाय महाजनों से ऋण लेकर काम चलाने लगा। फ्रांस उस समय कितने गहरे संकट से गुजर रहा था इसकी व्याख्या लुई 15वें के मशहूर कथन 'मेरे बाद प्रलय' से स्पष्ट हो जाता है। सामंतवर्ग अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए जनता का निर्दयता से खून चूसते थे। उस समय एक कहावत प्रचलित थी 'सामंत युद्व करते थे, पादरी पूजा करते थे और जनता कर देती थी' इस प्रकार

जो वर्ग सबसे अधिक कर दे सकते थे वही कर मुक्त थे वहीं जो आर्थिक रूप से कमजोर थे उनसे क्रूरता पूर्वक कर वसूला जाता था।

1.2.5. फ्रांसीसी क्रांति एवं बौद्धिक चिंतन

18वीं शताब्दी में फ्रांस में पुरानी रूढिवादी व्यवस्था विरूद्ध वैचारिक तार्किक चिंतन का प्रारम्भ हुआ। इसका कारण यह था कि समकालीन दार्शनिकों एवं चिन्तको का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण था। जिससे उन्होनें ने प्रत्येक परम्परा, विश्वास और रूढि को तर्क की कसौटी पर कसना शुरू किया। जिसके कारण सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक चिंतन में नये प्रतिमान स्थापित हुएं, जिनमें प्रमुख रूप से शक्ति का पृथक्करण, धार्मिक सहिष्णुता, जीवन जीने की स्वतंत्रता, वैयक्तिक स्वतंत्रता, सम्पति का अधिकार तथा समानता और बन्धुत्व जैसे तार्किक मूल्य प्रमुख थे। जिन्होनें ने फ्रांसीसी नागरिकों के चिंतन में व्यापक बदलाव लाए, चिंतन में इन्हीं बदलाव के फलस्वरूप फ्रांसीसी समाज में परिवर्तन शुरू हुए। जिसका चरम 14 जुलाई 1789 में फ्रांसीसी क्रांति के रूप में सामने आया।

इस तरह से देखा जाय तो फ्रांसीसी क्रांति और समकालीन बौद्धिक चिंतन के बीच गहरा संबंध था। जिसको स्पष्ट रूप से समझनें के लिए आवश्यक है कि उन सामाजिक चिंतकों के विचारों को समझा जाय जिनका प्रभाव फ्रासीसी क्रांन्ति पर वृहद रूप से पड़ा जिनमें प्रमुख रूप से मान्टेस्क्यू, वाल्टेयर, लॉक, रूसो आदि प्रमुख थे।

1. मान्टेस्क्यू - फ्रांस के निरकुंश राजतंत्र के आलोचना की शुरूआत मान्टेस्क्यू ने किया । इनकी पुस्तक 'दा स्प्रिट ऑफ लॉज' का फ्रांस के विचार धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिसमें इन्होनें ने शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत देते हुए कहा कि विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की शक्तियों का एकीकरण नही होना चाहिए। इन तीनो शक्तियों का नियंत्रण एवं नियमन भिन्न-भिन्न संस्थाओं के माध्यम से किया जाना चाहिए।

2. वाल्टेयर - वाल्टेयर फ्रासं का एक महान विचारक था। वह बौद्धिक स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक था। इसने चर्च की असहिष्णुता तथा पाखंड का कड़ा विरोध करते हुए धार्मिक सहिष्णुता का समर्थन किया। साथ ही वाल्टेयर ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का विचार रखते हुए कहा कि नागरिकों को बोलने की आजादी होनी चाहिए। वाल्टेयर के विचारों का फ्रांस की जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिससे जनता में चर्च के प्रति अंधविश्वास दूर हुआ।

3. रूसो - रूसों स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व जैसे क्रांतिकारी विचारों का प्रणेता था। इन्होनें अपनी पुस्तक 'दा सोशल कान्ट्रैक्ट' में कहा कि - 'मनुष्य स्वतंत्र हुआ था किंतु व सदैव बन्धनों मे बंधा रहता है' रूसो के इन विचारों ने फ्रांस के निंरकुश राजतंत्र की जड़े खोद दी, जिससे वह भरभरा कर गिर गया और नष्ट हो गया।

4. जॉन लाक - यह एक अंग्रेज विचारक था। जिसके व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सम्पत्ति अर्जन की स्वतंत्रता जैसे विचारों ने फ्रांसीसी क्रांति पर अपना प्रभाव ड़ाला। यह सीमित संप्रभुता सिद्धांत का समर्थक था, जिसमें मनुष्य अपने प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा कर सकें।

1.2.6. फ्रांसीसी क्रांति की प्रमुख

फ्रांसीसी क्रांति अचानक घटने वाली कोई घटना नही है। इसकी शुरूवात कई दशकों पहले ही हो गयी थी। कई छोटी-छोटी घटनाओं ने मिलकर 14 जुलाई, 1789 में होने वाली फ्रांसीसी क्रांति को जन्म दिया। जिनमें प्रमुख फ्रांसीसी घटनाएँ निम्नलिखित है।

1. राष्ट्रीय सभा का निर्माण- इस्टेट जनरल फ्रांस में नागरिकों की एक प्रतिनिधि संस्था थी। जिसमें तीनों सम्पत्ति समूहों के लोगो को प्रतिनिधित्व प्राप्त था। 1789 में इस्टेट जनरल ने सदस्यों की कुल संख्या 1200 थी, जिसमें 600 से अधिक तृतीय सम्पत्ति समूह के सदस्य थे। इस्टेट जनरल की 1789 की बैठक में यह तय किया गया कि तीनो वर्गो की पृथक-पृथक बैठक करकें फ्रांस की समस्या पर विचार किया जायेगा। लेकिन तृतीय सम्पत्ति समूह (वर्ग) इसके लिए तैयार नही था। उनका मानना था कि अगर पृथक-पृथक बैठक होगी तो राष्ट्रीय सभा में उनकी दोगुनी सख्या का कोई अर्थ नही रह जायेगा। और वें सदन में कमजोर हो जायेगें। तृतीय वर्ग को बाद में कुछ पादरी प्रतिनिधित्वों का भी समर्थन मिलने लगता है। जून 1789 में तृतीय वर्ग ने अन्य वर्गो को एक साथ बैठक करने का आमंत्रण दिया। लेकिन दोनो वर्गो के प्रतिनिधियों के सभा में ना आने पर अपने आप को एक मात्र प्रतिनिधि सदन के रूप में घोषित कर दिया। और अपना नाम बदलकर राष्ट्रीय सभा कर दिया। जनता की जागरूकता और इच्छा के सामने लुई 16वॉ को छुकना पड़ा तथा उसने से तृतीय सदन को ही राष्ट्रीय सभा के रूप में मान्यता दे दी। इस तरह से तृतीय वर्ग द्वारा राष्ट्रीय सभा की घोषणा फ्रांस की क्रांति का मार्ग प्रशस्त करती है।

2. टेनिस कोर्ट की सपथ- तीसरे सम्पत्ति समूह द्वारा राष्ट्रीय सभा की घोषणा राजतंत्र के लिए एक सीधी चुनौती थी। 20 जून 1789 को जब तीसरें वर्ग के सदस्य सभा भवन में जाने लगें तो सैनिकों ने उन्हें रोक दिया तो तृतीय वर्ग के सदस्यों ने बेली को अपना सभापति चुनकर टेनिस कोर्ट के भवन में बैठक की। जिसमें फ्रांस के लिए एक नया संविधान बनाने का शपथ लिया गया। टेनिस कोर्ट का यह संकल्प फ्रांस की क्रांति का वास्तविक आरंभ था।

3. वेस्टाइल पर आक्रमण- जब फ्रांस की जनता को लगने लगा कि राजा से उनकी आशा का केन्द्र बन चुके राष्ट्रीय सभा को संकट है तो वें अपने षड़यत्रं का केन्द्र बन चुके वेस्टाइल कारागार पर 14 जुलाई 1789 को आक्रमण कर दिया और कारागार की सुरक्षा में लगे सैनिकों की हत्या करकें उसपर अधिकार कर लिया और बहुत से कैदियो को रिहा कर दिया। इस तरह वेस्टाइल कारागार के पतन के साथ राजा की निरंकुशता का

भी अंत हो गया। कारागार के पतन की यह घटना फ्रांसीसी समाज ही नही अपितु पूरी विश्व को प्रभावित किया।

4. राष्ट्रीय संविधान सभा की घोषणाएँ- कुलीन और पादरी वर्ग के कुछ लोगो को भी सदस्यता देकर राष्ट्रीय सभा का नाम बदलकर राष्ट्रीय संविधान सभा कर दिया गया। जिसका प्रमुख उद्देश्य सविंधान का निर्माण था। राष्ट्रीय संविधान सभा ने सर्वप्रथम सामन्ती विशेषाधिकारों को समाप्त कर के फ्रांस के नागरिकों के लिए मानव अधिकारों की घोषण की। जिसके अर्न्तगत मनुष्य की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, धार्मिक स्वतंत्रता आदि को सम्मिलित किया गया। साथ ही साथ जनता को सम्प्रभु माना गया और जनता को मत देकर प्रशासक चुनने का अधिकार दिया गया।

संविधान सभा का प्रमुख उद्देश्य सविधान का निर्माण था। जिसका प्रारम्भ 1789 से हुआ। इसके अर्न्तगत कार्यपालिका, विधायिका, तथा न्यायपालिका का निर्माण तथा उनकी शक्तिओं का पृथक्करण किया गया। सविंधान को स्वीकार करके निंरकुश राजतंत्र का अंत किया गया। राष्ट्रीय कन्वेशंन ने राजा लुई 16वाँ को देशद्रोही घोषित कर दिया। तथा 21 जनवरी 1793 को राजा को मृत्युदंड दे दिया गया।

1.2.7. फ्रांसीसी क्रांति के कारण

यह वैज्ञानिक सत्य है कि हर घटना के पीछे कोई न कोई कारण आवश्य होता है। यह बात फ्रांसीसी क्रांति के लिए भी पूर्णतया सत्य है। फ्रांसीसी क्रांति की यह घटना अचानक नही घटित हुई, इसकी पृष्ठभूमि में फ्रांस में दीर्घकाल से ऐसी दशाए बनी जिन्हानें ने प्रत्यक्ष रूप से फ्रांसीसी क्रांति में योगदान दिया। 18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी समाज में गहरा अंसतोष व्याप्त था। जनता राजा के निरंकुश और भ्रष्ट व्यवहार से त्रस्त थी। सामन्तों के विशेषाधिकार एवं अत्याचार से जनता प्रताड़ित थी। इन सब के कारण फ्रांस की जनता में व्याप्त अंसतोष का चरम फ्रांसीसी क्रांति के रूप में सामने आया। फ्रांस के इस क्रांति के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

1. राजनीतिक कारण - फ्रांस में बूर्बो वंश द्वारा शासित निंरकुश राजतंत्र था। लुई 14वें के शासन काल में राजतंत्र की निंरकुशता चरम पर पहुच गयी। लुई 14वॉ कहता था कि ‘‘मै ही राज्य हूँ’’ यह सदैव युद्ध में व्यस्त रहा जिसके कारण इसके शासन काल में फ्रांस को बहुत आर्थिक क्षति हुई। इसके बाद लुई 15वॉ फ्रांस का शासक बना जो अत्यन्त निष्क्रिय, अयोग्य एवं विलासी था। जिसका कथन ‘‘मेरे बाद प्रलय’’ अत्यन्त प्रचलित हुआ जिससे स्पष्ट होता है कि इसको फ्रांस की स्थिति के बारे पूर्व आभास था। लुई 15वॉ के बाद लुई 16वॉ सिंहासन पर बैठा उस समय फ्रांस के राजतंत्र की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो चुकी थी। इसने स्थिति में सुधार करने के बजाय ऋण लेकर शासन चलाना आरम्भ कर दिया जिसके कारण फ्रांस में अराजकता तेजी से बढने लगी। प्रशासन व्यवस्था में उच्च पदो पर उन लोगों को नियुक्ति किये जाने लगा जिनमें कोई व्यक्तिगत योग्यता और कुशलता नही थी। इस समय प्रशासन व्यवस्था अत्यन्त पक्षपात पूर्ण हो गया। सामान्य

जनता न्याय से वंचित होने लगी। लुई 16वाँ की पत्नी अपने खर्चीले एवं विलासी पूर्ण जीवन के लिए कुख्याति थी। एक बार फ्रांस की भूखी जनता उसके महल के सामने एकट्ठी होकर भोजन की मांग की तो रानी एनत्वानेत कहा कि ‘‘यदि तुम्हारें पास ब्रेड नही है तो केक खा लो’’ रानी का प्रशासन में आवश्कता से अधिक हस्ताक्षेप राजतंत्र के लिए घातक साबित हुआ।

2. सामाजिक कारण - फ्रांस की क्रांति का प्रमुख कारण फ्रांस में व्याप्त सामाजिक असामनता थी। फ्रांस में यह सामाजिक असामनता उच्च वर्गो(पादरी, सामंत) को प्राप्त विशेषाधिकारों के कारण उत्पन्न हुई थी। उस समय फ्रांस में तीन वर्ग थे धर्माधिकारी, सामंत, और साधारण जनता। धर्माधिकारी और सामंत उच्च वर्ग के अर्न्तगत आते थे। राज्य के उच्च पदो पर इन्हीं का अधिकार था। ये फ्रांस की आबादी का मांत्र दो प्रतिशत थी। ज्यादातर कृषि भूमि के मालिक यही थे। ये भोग विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। तीसरा वर्ग फ्रांस की बहुसंख्यक जनता का था जो कुल आबादी का 99 प्रतिशत थी। जिसके अर्न्तगत व्यापारी, शिक्षक, कृषक, श्रमिक आदि आते थे। राज्य के समस्त करों का भार इसी वर्ग पर था। इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। धर्माधिकारियों एवं सामन्तो के अत्याचारों से मुक्ति के लिए यह वर्ग क्रांति का प्रबल समर्थक बन गया।

3. आर्थिक कारण - लुई 16वाँ के शासनकाल तक फ्रांस की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी थी।राज्य दिवालिया होने के कगार पर था लेकिन धर्माधिकारी एवं सामंत वर्ग आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के बावजूद भी कर नही देता था। राज्य के राजस्व को भरने के लिए सामान्य वर्ग से तरह-तरह के कर वसूले जाते थे। इस प्रकार ‘कर प्रणाली’ में व्याप्त असमानता फ्रांसीसी क्रांति का प्रमुख कारण बनी। साथ ही साथ फ्रांस की आर्थिक दुर्यव्यवस्था के लिए राजा, धर्माधिकारी और सामान्त वर्ग का अपव्यय एवं विलासिता पूर्ण जीवन शैली भी जिम्मेदार थी।

लुई14वें एवं 15 वें के शासन काल में फ्रासं ने कई युद्ध लडे जिसके कारण फ्रांस की आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर हो गयी और राजकोश रिक्त हो गया। इस तरह फ्रासं की दयनीय आर्थिक स्थिति और इसकी क्षतिपूर्ति के लिए तृतीय वर्ग पर आवश्कता से अधिक कर का भार, शोषण एवं प्रताड़ना फ्रांसीसी क्रांति का कारण बनी।

4. धार्मिक कारण - धर्माधिकारियों के भ्रष्ट आचरण और उनके विलासिता पूर्ण जीवनशैली के कारण फ्रांस की साधारण जनता का इनपर से विश्वास लगातार कम हो रह था। वही धर्म के नाम पर इनके द्वारा किये जाने वाले शोषण एवं अत्याचार के कारण साधारण जनता का इस वर्ग के प्रति बढता असंतोष फ्रांस के क्रांति के प्रमुख कारणो मे एक थी।

5. वैचारिक कारण- वैचारिक कारक फ्रांस की क्रांति की एक प्रमुख विशेषता थी। समकालीन चिंतकों के तार्किक एवं वैज्ञानिक विचारों ने ना केवल फ्रांसीसी जनता को जागरूक किया बल्कि उन्हें क्रांति के लिए प्रेरित भी किया। इन विचारकों में प्रमुख रूप से मान्टेस्क्यू, रूसो, वाल्टेयर आदि थे। इनके क्रान्किारी विचारों में राजा के निरंकुशता, चर्च के अंधविश्वासों के प्रति जनता को एक जुट किया और स्वतंत्रता, समानता,

बन्धुत्व जैसे नये विचारों से सामान्य जनता को परिचित कराया। जिसकी प्राप्ति के लिए जनता क्रांति की ओर प्ररित हुई।

1.2.8. फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव

फ्रांस की क्रांति एक युगान्तकारी घटना थी। जिसका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा। इस क्रांति ने न केवल लोगो के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, जीवन को प्रभावित किया बल्कि लोगेा को चिंतन का एक नया दृष्टिकोण भी दिया। जिससे नये सामाजिक एवं मानव मूल्यों की स्थापना हुई। फ्रांसीसी क्रांति के प्रभाव को निम्नलिखित रूपों में प्रमुख रूप से देखा जा सकता है।

1. निंरकुश राजतंत्र की समाप्ति- फ्रांस की क्रांति ने उस निरंकुश राजतंत्र का अंत कर दिया जहा राजा को दैवीय अधिकार प्राप्त था। उसका आदेश ईश्वर का आदेश माना जाता था। और उसकी इच्छा ही कानून था।

2. सामंतवाद का अंत- फ्रांसीसी समाज में सामंतवाद का विकास मध्यकाल में ही हो गया था। सामंतवर्ग को कई प्रकार के विशेषाधिकार प्राप्त थे। प्रशासनिक व्यवस्था में ये उच्च पदो पर आसीन थे। ऐं कृषि भूमि के स्वामी थे। साधारण जनता का शोषण करके विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। क्रांति के फलस्वरूप इनके विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया गया।

3. गणतंत्र की स्थापना- फ्रांस की क्रांति के बाद निरंकुश राजतंत्र का पतन हुआ और गणतंत्र की स्थापना हुई। जहॉ जनता प्रभुता सम्पन्न थी। जनता के मत से सरकार का गठन होता था। और उसकी इच्छा के अनुसार कानून का निर्माण किया जाता था।

4. राष्ट्रवाद का उदय- क्रांति के बाद फ्रांस में राष्ट्रीयता की भावना का तेजी से विकास हुआ जहा राष्ट्रहित को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। फ्रांस से राष्ट्रवाद का विकास यूरोप और विश्व के अन्य देशो में तेजी से हुआ।

5. मानवीय अधिकारों की प्राप्ति- फ्रांस की क्रांति की यह प्रमुख देन थी। जिसके फलस्वरूप मनुष्य को नवीन मानव मूल्यो की प्राप्ति हुई। जिससे उसे गरिमा एवं प्रतिष्ठा पूर्ण जीवन जीने का अधिकार मिला। जिसमें स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व आदि प्रमुख थे।

- स्वतंत्रता का आशय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, सम्पत्ति प्राप्ति की स्वतंत्रता से है।
- समानता का अर्थ फ्रांस में व्याप्त विशेषाधिकारों की समाप्ति के साथ, कानून के समक्ष समानता और अवसर की समानता से है। इस तरह देखा जाय तो फ्रांस की क्रांति एक सामाजिक क्रांति थी। जिसने समानता के आधार पर समाज का पुर्नगठन किया।
- भातृत्व का आशय सौहार्द्रपूर्ण मानवीय जीवन से है जो इस बात पर बल देता है कि मनुष्य का जीवन सुख एवं शान्ति पर आधारित हो।

6. धर्मनिरपेक्षता की स्थापना - फ्रांस की क्रांति ने चर्च के विशेषाधिकारों को समाप्त करके नागरिको को धर्म के नाम पर किये जा रहे अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति कर दिया। तथा धर्म के प्रति एक नये दृष्टिकोण को विकसित किया जो धार्मिक स्वतंत्रता पर आधारित थी। यह इस बात बल देती थी कि लोगो को विशेष धर्म अथवा सम्प्रदाय को मानने के लिए बाध्य नही किया जा सकता।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि फ्रांसीसी क्रांति ने उस नवीन बौद्धिक चेतना का जन्म दिया। जिससे फ्रांस ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व में स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, धर्मनिरपेक्षता जैसे तार्किक मूल्यों की स्थापना हुई। जिसके फलस्वरूप फ्रांस की क्रांति से उत्पन्न सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं का चिन्तकों द्वारा तार्किक अध्ययन शुरू हुआ।

1.2.9. सारांश

इस इकाई के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि फ्रांस की क्रांति से जहॉ फ्रांस की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, व्यवस्था बदल गयी। वही स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व, जैसे तार्किक वैचारिक मूल्यों ने मानवीय चिंतन को प्रभावित किया। वास्तव में देखा जाय तो फ्रांस की क्रांति सामाजिक एवं वैचारिक क्रांति का मिश्रण थी।

1.2.10. शब्दावली

1. सामंतवाद - मध्यकालीन यूरोपीय समाज में सामंतवादी व्यवस्था प्रचलित थी जहा कृषि भूमि अर्थव्यवस्था का केंद्रीय तत्व था। इस व्यवस्था में सामान्य रूप से तीन वर्ग थे। सामंत, किसान, मजदूर जिसमें सामंत भूमि का मालिक होता था। फ्रांस में इन्हें विशेषाधिकार प्राप्त था। ये भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे।

2. जनरल स्टेट - जनरज स्टेट फ्रांस में पादरियों, सामन्तों, और जनसाधारण के प्रतिनिधियों की सभा थी। फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था में सभी महत्वपूर्ण निर्णय 'जनरल स्टेट' द्वारा ही लिया जाता था।

3. शक्ति पृथक्करण सिद्धांत - फ्रांसीसी विचारक मांटेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'स्प्रिट ऑफ लॉ' में यह सिद्धांत दिया। जिसका आशय शासन व्यवस्था में कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यवस्थापिका के शक्तियों के विभाजन से है। जहां इस बात पर बल दिया जाता है कि इन शक्तियों का किसी एक व्यक्ति अथवा संस्था में केंद्रीयकरण न होने पाये।

4. स्वतंत्रता - किसी भी व्यक्ति का वह मौलिक अधिकार जो व्यक्ति को जन्म से प्राप्त हो जाता है जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, जीवन जीने की स्वतंत्रता, सम्पत्ति की स्वतंत्रता आदि

1.2.11. बोध प्रश्न

1.2.11.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. फ्रांस की क्रांति को समझाते हुए उसके प्रमुख कारणों की व्याख्या कीजिए?
2. फ्रांस की क्रांति के कारणों एवं प्रभावों की विवेचना कीजिए?
3. फ्रांस की क्रांति पर बौद्धिक चिंतन के प्रभावों को स्पष्ट कीजिए?
4. विश्व पर फ्रांसीसी क्रांति के प्रभावों की समीक्षा कीजिए?
5. फ्रांस की क्रांति से संबंधित प्रमुख घटनाओं की विवेचना कीजिए?

1.2.11.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. फ्रांस की क्रांति पर वाल्टेयर के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए?
2. वेस्टील के पतन पर टिप्पणी लिखिए?
3. फ्रांसीसी क्रांति के सामाजिक कारणों का उल्लेख कीजिए?
4. ''स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व'' पर टिप्पणी लिखिए?
5. ''मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है, परंतु सदैव बंधनों में जकड़ा रहता है'' इस कथन को स्पष्ट कीजिए?

1.2.11.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. फ्रांस की क्रांति किस सन् में हुई थी?

   (अ) 1769

   (ब) 1779

   (स) 1789

   (द) 1759

2. फ्रांस की क्रांति के समय वहां का राजा कौन था?

   (अ) लुई 16वाँ

   (ब) लुई 14वाँ

   (स) लुई 15वाँ

   (द) लुई 17वाँ

3. स्वतंत्रता, समानता, बन्धुत्व किस क्रांति से संबंधित हैं?

   (अ) फ्रांस की क्रांति

   (ब) अमेरिका की क्रांति

   (स) इंग्लैंड की क्रांति

   (द) उपर्युक्त सभी

4. समाजशास्त्र की उत्पत्ति में किस क्रांति का प्रमुख योगदान है?

(अ) फ्रांस की क्रांति

(ब) अमेरिका की क्रांति

(स) इंग्लैंड की क्रांति

(द) उपर्युक्त सभी

5. टेनिस कोर्ट की शपथ का सम्बन्ध किस क्रांति से है?

(अ) फ्रांस की क्रांति

(ब) अमेरिका की क्रांति

(स) इंग्लैंड की क्रांति

(द) उपर्युक्त सभी

1.2.11.4. प्रश्नोत्तर

1. (स)
2. (अ)
3. (अ)
4. (अ)
5. (अ)

1.2.12. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, के.जी. (2005). *समाजशास्त्रीय चिंतन के आधार*. नई दिल्ली: साहित्य भवन प्रकाशन.
2. वर्मा, आर.एस. (2012). *इतिहास*. आगरा: एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस.
3. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-3 : इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति

इकाई की रूपरेखा

1.3.1. उद्देश्य
1.3.2. प्रस्तावना
1.3.3. औद्योगिक क्रांति
1.3.4. औद्योगिक क्रांति के कारण
1.3.5. औद्योगिक क्रांति का प्रभाव
1.3.6. औद्योगिक क्रांति के नकारात्मक पहलू
1.3.7. सारांश
1.3.8. प्रमुख शब्दावली
1.3.9. बोध प्रश्न
1.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1.3.1. उद्देश्य

इस इकाई में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्यात आपके द्वारा संभव होगा:

1. औद्योगिक क्रांति की व्याख्या करना।
2. इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के पृष्ठभूमि को समझना ।
3. औद्योगिक क्रांति के प्रमुख कारणों का विस्तार पूर्वक विवेचना करना।
4. औद्योगिक क्रांति के सकारात्मक एवं नकारात्मक पहलुओं को समझना और उसकी समीक्षा करना।

1.3.2. प्रस्तावना

इंग्लैंड में व्यापार एवं वाणिज्य का विकास होने के बाद 18वीं शताब्दी में यात्रिक आविष्कार के कारण उत्पादन व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे। जहां लघु एवं कुटीर उद्योगो का स्थान बडे-बडे कारखाने ले रहे थे। वस्तुओं के उत्पादन में व्यापक वृद्धि हो रही थी। साथ ही साथ यातायात एवं संचार के साधनों, व्यापारिक संगठनों का तेजी से विकास हो रहा था। उत्पादन व्यवस्था एवं आर्थिक व्यवस्था में होने वाले इस क्रांतिकारी परिवर्तन को ही औद्योगिक क्रांति कहा गया। जिसने इंग्लैंड की आर्थिक व्यवस्था ही नही अपितु सामाजिक व्यवस्था को भी पूरी तरह से बदल दिया। बाद में जिसका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ा।

औद्योगिक क्रांति क्या है?, इस क्रांति के कारण कौन से है? इस क्रांति के प्रभाव क्या हुए ? इस अध्याय में हम इन्हीं तथ्यों पर विचार करेंगें।

1.3.3. औद्योगिक क्रांति

18 वीं शताब्दी में इंग्लैंड में उत्पादन विधियों तथा यान्त्रिक अविष्कारों के कारण वस्तु उत्पादन, यातायात एवं संचार के साधनों में जो व्यापक परिवर्तन हुएं उन्होनें सम्पूर्ण उत्पादन व्यवस्था को ही बदल दिया। जिसके फलस्वरूप लघु एवं कुटीर उद्योगों के स्थान पर बडें कारखाने स्थापित होने लगे। वाष्प यंत्रों द्वारा संचालित इन कारखानों के माध्यम से कम लागत पर अधिक उत्पादन होने लगा। जिसके कारण सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था में व्यापक बदलाव आने लगे। बदलाव की यह प्रक्रिया अत्यधिक तीव्र और बड़े पैमाने पर हुई। इसी कारण इतिहासकार अर्नाल्ड टायनवी अपनी पुस्तक '18 वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति' में इन परिवर्तनों के लिए सर्वप्रथम 'औद्योगिक क्रांति' शब्द का प्रयोग किया।

औद्योगिक क्रांति सुनियोजित और एकाएक घटना वाली घटना नही बल्कि कई क्रमिक घटनाओं का व्यापक परिणाम थी। जिसने इंग्लैंड ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व के मानवीय समाज को प्रभावित किया। देखा जाय तो इसकी शुरूवात वैज्ञानिक क्रांति एवं मशीनीकरण के बाद ही हो गयी थी। लेकिन कुछ विचारकों का मानना है कि औपचारिक रूप से इंग्लैंड में सन् 1760 से 1830 के बीच औद्योगिक क्रांति की घटना प्रभावी रूप से घटी। प्रारम्भिक अवस्था में औद्योगिक क्रांति का सर्वाधिक प्रभाव वस्त्र एवं खनन उद्योग पर पड़ा जिसके लिए इग्लैंड में सर्वाधिक अनुकूल दशाएं मौजूद थी।

1.3.4. औद्योगिक क्रांति के कारण

औद्योगिक क्रांति को समझने के लिए यह जानना अति आवश्यक है कि यह क्रांति इग्लैंड में ही क्यों हुई। जबकि उस समय यूरोप में अन्य शक्तिशाली देश भी मौजूद थे। ऐसा इस लिए हुआ क्योंकि औद्योगिक क्रांति के लिए जिन साधनों की आवश्यकता थी वें सभी इग्लैंड में उपस्थित थे अन्य जगहों पर नही। 18वीं शताब्दी में ही इंग्लैंड में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण हो गया था जिसके कारण औद्योगिक क्रांति हुई। अतः इग्लैंड में इस क्रांति के सबसे पहले होने की निम्नलिखित प्रमुख कारण थे।

सामाजिक कारण

1. दास प्रथा का अंत - औद्योगिक क्रांति के साथ इंग्लैंड में दास प्रथा समाप्त कर दी गयी थी। यूरोप में इंग्लैंड ही पहला देश था जिसने दास प्रथा और श्रेणी प्रथा को समाप्त कर दिया था।

2. व्यक्तिगत स्वतंत्रता - इंग्लैंड में अन्य यूरोपीय देशो की अपेक्षा विचार अभिव्यक्ति, कार्य करने और व्यापार करने की स्वतंत्रता अधिक थी। सरकार किसी व्यक्ति के आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप नही करती थी।

शिल्पकारों को कार्य करने, प्रयोग करने की स्वतंत्रता थी। इसके कारण ही शिल्पकारों ने मशीनों का आविष्कार किया।

3. जनसंख्या में वृद्धि -18वीं शताब्दी में इंग्लैंड की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप वहां अधिक उत्पादन के लिए कृषि एवं उद्योग पर दबाव बढ रहा था वही उद्योगो के लिए प्रर्याप्त श्रमिक आसानी से मिल जा रहे थे। इस तरह जनसंख्या में वृद्धि भी इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के प्रमुख कारणो में से एक थी।

आर्थिक कारण

1. वित्तीय संस्थाओं का विकास - गुलामी प्रथा तथा गिल्ड समाप्त हो जाने से व्यापारी और कारीगर स्वतंत्र हो गये। व्यापारियों के पास पूँजी थी तथा उन्हें बाजारों की मांगों का ज्ञान था। अतः व्यापारी संयुक्त व्यापारिक कम्पनियों का निर्माण करकें व्यापार करना शुरू कर दिए। इंग्लैंड में बैंक जैसी वित्तीय संस्थाओं का विकास हो चुका था। जबकि अन्य यूरोपीय देशों में इसका अभाव था। 18 वीं शताब्दी के मध्य तक लंदन के बैंक ही अधिकांश व्यापारियों और उद्योगपतियों की वित्तीय व्यवस्था के मुख्य केंद्र थे।

2. पूँजी की उपलब्धता - इंग्लैंड में इस समय तक बडी मात्रा में पूँजी उपलब्ध हो गयी थी। इस पूँजी को उत्पादन के विस्तार तथा कारखानों के निर्माण में लगाया गया। बैंकिग प्रणाली स्थापित की गयी। इंग्लैंड को भारत जैसे औपनिवेशिक देशो से अपरिमित पूँजी प्राप्त हो रही थी। जो औद्योगिक क्रांति का सहायक बनी।

3. व्यापार में वृद्धि - इस काल तक इंग्लैंड के व्यापार में अभूत-पूर्व वृद्धि हो गयी थी। इसका प्रमुख कारण उसके औपनिवेशिक देश थे, जैसे भारत, अमेरिका आदि जहां उसे विस्तृत बाजार प्राप्त हो गया था। उसके द्वारा निर्मित माल की मांग यहा सदैव बनी रहती थी।

4. आर्थिक विचारों में परिवर्तन -इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के पहले वैचारिक क्रांति हुई थी। एडम स्मिथ जैसे अर्थशास्त्रियों ने उन्मुक्त व्यापार का समर्थन किया था। जिसका प्रभाव इंग्लैंड के व्यापारिक दृष्टिकोण पर भी पड़ा जो औद्योगिक क्रांति का प्रमुख कारण बनी।

5. कारखाना प्रणाली का विकास - इंग्लैंड में कारखाना प्रणाली का विकास औद्योगिक क्रांति के पहले हो चुका था। कारीगर घर से दूर एक स्थान पर श्रम करने के लिए एकत्रित होते थे और किसी विशेष कार्य को करते थे। मशीनीकरण के बाद हजारों की संख्या में श्रमिक कारखानों में कार्य करने के लिए आने लगे। इस तरह इंग्लैंड में पहले से प्रचलित कारखाना प्रणाली औद्योगिक क्रांति का प्रमुख कारण बनी।

राजनीतिक कारण

1. राजनैतिक स्थायित्व - अन्य देशो के अपेक्षा इंग्लैंड में राजनैतिक स्थायित्व अधिक था। जिसके कारण वहां आर्थिक विकास एवं व्यापार के लिए अनुकुल वातावरण बना जो औद्योगिक क्रांति का कारण बनी।

2. औपनिवेशिक सामाज्य - इंग्लैंड के पास विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य था, जिनसे वह व्यापक मात्रा में कच्चें माल प्राप्त करता था। और तैयार माल को उन्हीं के बाजारों में बेचता था। जिससे इंग्लैंड को व्यापार में

अत्याधिक लाभ प्राप्त होता था। इस तरह औपनिवेशिक साम्राज्य इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के लिए वरदान सिद्ध हुई।

भौगोलिक कारण

इंग्लैंड में लोहे और कोयलें की खाने पास-पास थी। इससे उद्योगों के विकास में सहायता मिली कोयले की सहायता से लोहें की मशीनों तथा औजारों का निर्माण होता था। इसके अतिरिक्त इंग्लैंड के चारों ओर समुद्र था। जिससे उसे आसानी से व्यापार के लिए बंदरगाह उपलब्ध हो जाते थे। इस तरह अनुकूल भौगोलिक वातावरण इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का सहायक बनी।

वैज्ञानिक आविष्कार

1. वस्त्र उद्योग - इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का प्रांरम्भ वस्त्र उद्योग से हुआ। जिसमें प्रमुख आविष्कार निम्नलिखित है।

1. जान के 1733 ई. में फ्लाइंग शटल नामक यंत्र बनाया जिसकी सहायता से कपड़ा बुनने की गति दोगुनी हो गयी।
2. 1765 ई. जेम्स हारग्रीब्स ने स्पनिंग जेनी नामक यंत्र का आविष्कार किया। जिसकी सहायता से बडी मात्रा में सूत काटा जाने लगा।
3. 1784 ई. में एंडमंड़ कार्टराइट ने पावर लूम का आविष्कार किया जो जल शक्ति से चलता था। इससे वस्त्रों की बुनाई का कार्य शीघ्रता से होने लगा।
4. 1785 ई. वस्त्रों की छापने के लिए रोलर प्रणाली का आविष्कार हुआ जिससे कपड़ों की प्रिन्टिग का काम तेजी और अच्छा होने लगा।

2. वाष्प शक्ति का प्रयोग - जेम्सवाट जिस वाष्प शक्ति का अविष्कार किया। उससे इंग्लैंड को ऊर्जा का एक नया स्त्रोत प्राप्त हो गया। इस ऊर्जा की सहायता से इंजन बनाये गये जिसका प्रयोग सूती कारखानों में, खानों से पानी निकालनें में, छपाई करने में होने लगा।

3. यातायात एवं संचार साधनों का विकास - कच्चें माल तथा निर्मित माल के यातायात के लिए परिवहन प्रणाली का विकास किया गया। इंग्लैंड में तारकोल का प्रयोग करकें हजारों मीटर सड़कों का निर्माण किया गया। यातायात एवं परिवहन के लिए कई नहरों का निर्माण किया गया। साथ ही साथ इंग्लैंड में संचार के साधनों का तेजी से विकास हुआ। टेलीग्राफ प्रणाली का आविष्कार मोर्स नामक व्यक्ति ने किया जिससे विचारों एवं सूचना के आदान-प्रदान में तेजी आयी। उसके बाद डाक व्यवस्था का प्रांरम्भ किया गया । 19वीं शताब्दी के अन्त तक इंग्लैंड में टेलीफोन का आविष्कार किया जा चुका था।

1. बिजली के आविष्कार ने शक्ति के एक नये स्त्रोत को जन्म दिया। जिससे कारखानें संचालित होने लगी।

4. लौह उद्योग - हेनरी कोर्ट ने लोहा गलाकर ढालनें और उसकी छड़े, चादरें आदि बनाने की विधि का आविष्कार किया।

1. अब्राहम डर्बी ने लोहें को पिघलानें व साफ करनें के लिए कोयलें का प्रयोग करना आरंम्भ किया।
2. 1814 ई. में जार्ज स्टीफेंसन ने रेल इंजन बनाया था।
3. 1815 ई. में खानों के भीतर काम करने वाले मजदूरों की सुविधा के लिए हम्फ्रेंडेवी ने सेफ्टी लैंम्प का आविष्कार किया।

1.3.5. औद्योगिक क्रांति का प्रभाव

औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप में सामन्तवादी व्यवस्था विद्यमान थी। समाज में प्रमुख रूप से तीन वर्ग थे। सामन्त, किसान, मजदूर भूमि अर्थव्यवस्था का आधार था जिसका प्रयोग प्रमुख रूप से कृषि में किया जाता था। कृषि आधारित तत्व ही जीवन-यापन, उद्योग एवं व्यापार के केंद्र थे। औद्योगिक क्रांति के बाद इंग्लैड के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन हुए। अर्नाल्ड टायनवी ने लिखा है 'औद्योगिक क्रांति कोई आकस्मिक घटना नही थी अपितु विकास की निरन्तर प्रक्रिया थी' यह इंग्लैंड से आरम्भ हुई धीरे-धीरे सारे यूरोप में फैल गयी। इसने मनुष्य को असीमित शक्ति प्रदान किया जिसका प्रभाव मानवीय समाज के सभी पहलुओं पर पड़ा।

औद्योगिक क्रांति का सामाजिक प्रभाव

1. शहरीकरण - औद्योगिक क्रांति के बाद जिन क्षेत्रों में कारखाने लगे वहाँ नगरों का विकास भी शुरू हुआ। क्योंकि जहां कारखानें लगें वहां कर्मचारी, व्यवसायी, मजदूर आदि आकर रहने लगे। यातायात एवं संचार के साधनों, व्यापार आदि का तेजी से विकास हुआ। इस तरह इंग्लैंड में आधुनिक शहरीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। एक तरह से देखा जाय तो औद्योगिकीकरण और नगरीकरण साथ-साथ चलने वाली प्रक्रिया है। इंग्लैंड में बर्मिघम, लीड्स, शेफील्ड़, मैनेस्टर आदि विशाल औद्योगिक नगरों का विकास हुआ।

2. जनसंख्या में वृद्धि - औद्योगिक क्रांति के बाद इंग्लैंड की आय, चिकित्सा, सुविधाओं एवं कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई। जिसके फलस्वरूप इंग्लैंड की जनसंख्या में भी तीव्र वृद्धि देखी गयी। नगरों में मानवीय सुविधाओं की अधिक उपलब्धता के कारण जनसंख्या का गांव से नगरों की ओर तेजी से पलायन हुआ।

3. परिवारिक जीवन पर प्रभाव - औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप नगरों में बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना हुई। काम की तलाश में ग्रामों से बड़ी संख्या में लेाग नगरों में आने लगे जिससे सयुक्त परिवार में विघटन शुरू हुआ। साथ ही साथ कारखानों में श्रमिक के रूप में महिला एवं बच्चों को रखने से परिवार का ताना-बाना बिखरने लगा। बच्चों के देखभाल तथा परिवारिक मूल्यों में तेजी से कमी आई।

4. मध्यम वर्ग का उदय - औद्योगिक क्रांति के बाद समाज में मध्यम वर्ग का उदय हुआ। सामन्तवादी समाज में सामान्य रूप से दो वर्ग थे अमीर और गरीब अमीर वर्ग के अर्न्तगत सामन्त और धर्माधिकारी आते थे वही गरीब वर्ग के अर्न्तगत कृषक एवं मजदूर आते थे। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के बाद ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिनमें उपर्युक्त दोनों वर्गो की विशेषताएं शामिल थी। इन्हें मध्यमवर्ग कहा गया जिसके अर्न्तगत व्यवसायी, कर्मचारी, शिक्षक आदि आते थे जनसंख्या में मध्यमवर्ग के व्यक्तियों की संख्या अधिक थी। अतः यह वर्ग समाज का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली अंग बन गया।

5. वर्ग समाज का उदय -औद्योगिक क्रांति के बाद सामाजिक संस्तरण के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। व्यक्ति की स्थिति और पद उसकें जन्म के आधार पर निर्धारित होने के बजाय उसके कार्य के सम्पादन, कुशलता, और उपलब्धि के आधार पर होने लगा। अर्थात प्रदत्त परिस्थिति के स्थान पर अर्जित परिस्थिति का महत्व बढ़ गया। सामाजिक संस्तरण बंद व्यवस्था के स्थान पर खुली व्यवस्था वाली हो गयी। परिणाम स्वरूप समाज में अनेक वर्गो का उदय हुआ। इस तरह वर्ग पर आधारित नये समाज का जन्म हुआ।

6. पूँजीवादी समाज का उदय- पूँजीवादी समाज औद्योगिक क्रांति की प्रमुख देन थी। जब वस्तुओं का उत्पादन बड़े-बड़े उद्योगों अथवा कारखानों के माध्यम से किया जाने लगा। तो उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर समाज में दों वर्ग बनें पूँजीपति और श्रमिक।

(क) पूँजीपति वर्ग - वाणिज्यिक क्रांति के बाद से ही व्यापारियों, को व्यवसाय में अत्याधिक लाभ हो रहा था। जिनहोनें मशीनीकरण के बाद अर्जित पूजी, मशीनों तथा उपकरणों की सहायता से बड़े-बड़े उद्योगों को स्थापित करके उसके स्वामी बन गये इन्हें पूँजीपति वर्ग कहा गया। पूंजीवादी समाज में उत्पादन के साधनों पर उन्हीं का अधिकार था।

(ख) सर्वहारा अथवा श्रमिक वर्ग - पूँजीवादी समाज में दूसरा वर्ग श्रमिक अथवा सर्वहारा वर्ग का था। यह वर्ग कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिकों का था। यह वर्ग अपने श्रम को पूंजीपतियों के हाथों बेचने को मजबूर था। 14 से 16 घंटे काम करने बाद भी इन्हें बहुत कम वेतन प्राप्त होता था।

औद्योगिक क्रांति का आर्थिक प्रभाव

1. आर्थिक समृद्धि- औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप वस्तुओं के निर्माण, व्यापार आदि से लाभ में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि इंग्लैंड विश्व का सबसे धनी देश बन गया। सस्तें और बड़े पैमाने पर वस्तुओं के उत्पादन का लाभ सामान्य एवं गरीब जनता को मिला। इससे उनके रहन-सहन का स्तर ऊंचा हुआ।

2. लोगों के जीवन स्तर में वृद्धि - औद्योगिक क्रांति के बाद वस्तुओं का अधिक मात्रा में उत्पादन होने लगा। व्यापार में उद्योगपतियों के साथ-साथ सामान्य जनता को भी लाभ हुआ । पर्याप्त रोजगार मिलने से व्यक्तिओं की आय में वृद्धि हुई । शहरीकरण प्रक्रिया तेज हुई जिससे लोगों के जीवन स्तर में तेजी से वृद्धि हुई।

3. इंग्लैंड की औद्योगिक सर्वोच्चता - औद्योगिक क्रांति के कारण इंग्लैंड की विश्व में औद्योगिक सर्वोच्चता स्थापित हो गयी। औपनिवेशिक देशों के साथ-साथ विश्व भर के बाजार इंग्लैंड द्वारा निर्मित वस्तुओं से पट गये।

4. रोजगार में वृद्धि - औद्योगिक क्रांति के बाद रोजगार के अवसरों में तेजी से वृद्धि हुई कारखानों में अधिकारी, कर्मचारी, श्रमिक की भारी मांग थी। साथ ही साथ यातायात एवं संचार के साधनों, व्यापारिक संगठनों, बैंकों आदि में रोजगार के असीमित अवसर निर्मित हुएं।

5. व्यापार के सहायक संस्थाओं का विकास - औद्योगिक क्रांति के बाद वस्तुओं का उत्पादन एवं व्यापार बढ़ने इसकी सहायक संस्थाओं में वृद्धि हुई । बैंक, बीमा कम्पनी, आदि जैसे व्यापारिक संगठनों का विकास हुआ। बैंकों ने पूंजी के एकीकरण एवं विनियोग में सहयोग दिया।

6. मजदूर संघों का जन्म - औद्योगिक क्रांति के बाद बड़े पैमाने पर उद्योगो का विकास हुआ जहा काफी संख्या में श्रमिक कार्य करते थे। जिनके हित कभी-कभी कारखाना मालिको से टकराते थे जिससे उन्होंनें सामूहिक रूप से कारखाना मालिको पर दबाव बनाने और अपनी मांगों को मनवाने के लिए मजदूर संघों का निर्माण किया। बाद में इन मजदूर संघों का महत्व ग्रेट ब्रिटेन के आर्थिक व राजनीतिक जीवन में इतना बढ़ गया कि 18 वीं शताब्दी के अंतिम दशक तक सरकार को इन पर प्रतिबंध लगाना पड़ा।

औद्योगिक क्रांति का राजनीतिक प्रभाव

1. साम्राज्यवाद का विकास - औद्योगिक क्रांति के कारण पूंजी का केंद्रीयकरण कुछ हाथों मे हो गया था। इसी वर्ग ने राज्य के संसाधनों पर अधिकार कर लिया। विशाल पैमाने पर उत्पादन होने के कारण उपनिवेशों की आवश्यकता कच्चामाल प्राप्त करने तथा निर्मित माल को बेचने के लिए बाजारों के रूप में हो रही थी। अतः अब अधिक से अधिक उपनिवेशों को प्राप्त करना औद्योगिक राष्ट्रों का उद्देश्य हो गया। इसके कारण औद्योगिक क्रांति के बाद एशिया एवं अफ्रीका के देशों में साम्राज्यवाद का विकास तेजी से हुआ।

2. प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास - औद्योगिक क्रांति से पहले ही इंग्लैंड में प्रजातांत्रिक मूल्यों का विकास हो चुका था। क्रांति के बाद इंग्लैंड ने जहां-जहां उपनिवेश स्थापित किये वहा भी प्रजातांत्रिक मूल्य विकसित होने लगे। नागरिकों को मत देने के अधिकार के साथ मौलिक अधिकार प्राप्त हुए। जिससे लोगों के साथ धर्म, प्रजाति, जाति, या जन्म के आधार पर भेद-भाव समाप्त होने लगा । प्रदत्त परिस्थितियों के स्थान पर अर्जित परिस्थितियों का महत्व बढने लगा।

3. श्रमिकों द्वारा सत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न - औद्योगिक क्रांति के बाद श्रमिक अपने हितो को संरक्षित करने के लिए संगठित होने लगे जिससे उनमें राजनीतिक चेतना का उदय हुआ। बाद में श्रमिक वर्ग ने सत्ता

प्राप्त करने का भी प्रयत्न शुरू किया क्योंकि श्रमिकों को यह विश्वास हो गया कि जब तक सत्ता उनके हाथों मे नही होगी। तब तक उनकें हित संरक्षित नही हो पाएंगे। इंग्लैंड में चार्टिस्ट आंदोलन, फ्रांस में 1830 ई. से 1848 ई. तक श्रमिक आंदोलन, जर्मनी में श्रमिकों द्वारा पृथक दल का निर्माण इसी उद्देश्य प्राप्ति के लिए हुआ था।

4. सामाजवादी विचारधारा का जन्म - औद्योगिक क्रांति के बाद पूंजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच हितों का टकराव होने लगा। पूंजीपति वर्ग अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए श्रमिक वर्ग का शोषण करने लगा। जिसके कारण अनेक विचारक नवीन व्यवस्था स्थापित करने का विचार प्रस्तुत करने लगे, जिसमें श्रमिकों का शोषण न हो। इंग्लैंड में राबर्ट ओवेन ने सहकारिता आंदोलन आरम्भ किया इसके साथ-साथ समाजवादी और साम्यवादी विचारो का जन्म हुआ। इसी संदर्भ में कार्लमार्क्स ने भी अपना विचार रखा जिससे यूरोप ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व की राजनीति प्रभावित हुई।

सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रभाव

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप लोगों के रहन-सहन, खान-पान, धार्मिक विश्वास, कला, साहित्य एवं मनोरंजन आदि के साधनों में व्यापक परिवर्तन आया लोगो का प्राचीन परम्पराओं, प्रथाओं, रूढियों आदि से विश्वास घटने लगा

1.3.6. औद्योगिक क्रांति के नकारात्मक पहलू

औद्योगिक क्रांति मानवीय सभ्यता के लिए बरदान साबित हुई इसने सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, क्षेत्र में व्यापक एवं सकारात्मक परिवर्तन लाएंगे। जिससे मानवीय जीवन सुख-सुविधाओं से भर गया। साथ ही साथ औद्योगिक क्रांति के कुछ ऐसे प्रभाव भी दिखाई पड़े जिससे मानवीय जीवन के लिए दीर्घ कालीन समस्याएं उत्पन्न हो गयी।

1. कुटीर उद्योगो का पतन - औद्योगिक क्रांति के पहले गांव और नगरों में छोटे स्तर पर उद्योग चलते थे। जिन्हें कुटीर उद्योग अथवा लघु उद्योग कहा जाता था। यें उद्योग मुख्य रूप से मानवीय श्रम द्वारा संचालित होते थे। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हुएं जो मशीनो द्वारा संचालित होते थे। जहां कम खर्च एवं श्रम पर अधिक उत्पादन होता था इसलिए विश्व भर के बाजारों में कारखानों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की मांग अत्याधिक बढ़ गयी ये वस्तुएं सस्ती एवं अच्छी होती थी। वहीं कुटीर उद्योगों में अधिक श्रम एवं खर्च पर कम उत्पादन होता था। जिस कारण इन वस्तुओं के दाम अधिक होते थे। इस तरह कुटीर उद्योग कारखानों द्वारा उत्पादित सस्ती वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा नही कर सकें। व्यापार में इन्हें अत्याधिक क्षति होने के कारण धीरे-धीरे इनका पतन होने लगा।

2. बेरोजगारी की समस्या - औद्योगिक क्रांति के बाद स्थापित कारखानों में उत्पादन का ज्यादा तक कार्य मशीनों के माध्यम से किया जाता था। जहां श्रमिकों एवं कारीगरों की सीमित आवश्यकता पड़ती थी। इसीलिए कुटीर उद्योग के पतन के बाद वहां कार्य करने वाले कारीगर एवं श्रमिक बेरोजगार हो गये। इस तरह उद्योगो के विकास के साथ बेरोजगारी की समस्या भी उत्पन्न हुई।

3. गन्दी बस्तियों का विकास - औद्योगिक क्रांति के बाद औद्योगिकीकरण तथा शहरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। जिसके कारण इंग्लैंड में मानचेस्टर , लंकाशायर, शैफील्ड़, आदि जैसे बड़े-बड़े नगरों का विकास हुआ जहां गांवों से बडी संख्या में किसान एवं मजदूर रोजगार की तलाश में आकर रहने लगे। इनकें मकान छोटे-छोटे होते थे बस्तियों में सडक, नाली, पानी आदि जैसी सुविधाओं की कमी होती थी। बडे नगरों के आस-पास बसी इन बस्तियो को गन्दी बस्ती कहां जाता था। आधुनिक नगरों में गन्दी बस्ती का विकास प्रमुख समस्या के रूप में सामने आया है।

4. श्रमिकों की अमानवीय दशा - औद्योगिक क्रांति के बाद कुटीर उद्योगों का पतन हो गया। जिसके कारण कारीगर एवं श्रमिको के बीच बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो गयी। और वें अजीविका की खोज में नगरों की गंदी बस्तियों में आकर रहने लगे। कारखानों में यें 12 से 14 घंटें काम करते थे लेकिन इन्हें बेतन बहुत कम मिलता था। जिससे ये अपनी मूल-भूत आवश्यकताओं की पूर्ति भी नही कर पाते थे। और कुपोषण, भुखमरी, आदि जैसी अनेक प्रकार की बिमारियों के शिकार हो जाते थे।

5. प्रदूषण की समस्या - औद्योगिक क्रांति ने पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्या को जन्म दिया। औद्योगिक कारखानों, यातायात परिवहन के साधनों से निकलने वालें धुओं से वायु प्रदुषण की व्यापक समस्या उत्पन्न हुई। साथ ही साथ औद्योगिक कारखानों के अवशिष्ट पदार्थ नालों के माध्यम से नदियों मे मिलते थे जिनसे नदियों के प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई।

1.3.7. सारांश

औद्योगिक क्रांति नें औद्योगिकीकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। परिणाम स्वरूप इंग्लैंड की सामाजिक , आर्थिक , राजनीतिक व्यवस्था में कई सकारात्मक परिवर्तन हुएं जिससे वह न केवल समृद्धिशाली बना बल्कि उसे असीम शक्ति भी प्राप्त हुई। जिसकी सहायता से उसने ऐसे साम्राज्य की रचना की जिसका सूरज कभी अस्त नही होता था। इस तरह इस इकाई में औद्योगिक क्रांति, उसके कारणों और प्रभावों की विस्तृत चर्चा के साथ-साथ औद्योगिक क्रांति के कुछ नकारात्मक पहलुओं की जानकारी भी प्राप्त की गयी।

1.3.8. प्रमुख शब्दावली

1. औद्योगिकीकरण - औद्योगिकीकरण औद्योगिक क्रांति के बाद शुरू होने वाली प्रक्रिया है जिसकें अन्तर्गत उत्पादन व्यवस्था में कुटीर उद्योगों का स्थान बडे-बडे उद्योगों एवं कारखानों ने ले लिया है। जिसके कारण वस्तुओं के उत्पादन में व्यापक वृद्धि हुई।

2. साम्राज्यवाद - औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोपीय देशों को कच्चे माल प्राप्त करने तथा तैयार माल को बेचने के लिए बड़े बाजारों की आवश्यकता हुई। जिसके लिए उन्होंनें एशियाई एवं अफ्रीकी देशों में उपनिवेश स्थापित कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। साम्राज्य के विस्तार की ऐसी विचारधारा को साम्राज्यवाद कहा गया।

3. शहरीकरण - शहरीकरण औद्योगिकीकरण के साथ चलने वाली वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शहरों का निर्माण एवं विकास होता है। उद्योगों की स्थापना के साथ रोजगार की तलाश में गांवो से बड़ी संख्या में कारीगर एवं श्रमिक यहाँ के लिए पलायन करते है। शहर उत्पादन एवं व्यापार का केंद्र होते हैं।

1.3.9. बोध प्रश्न

1.3.9.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. औद्योगिक क्रांति से आप क्या समझतें है? उसके प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
2. औद्योगिक क्रांति की पृष्ठभूमि को समझातें हुए? उसके परिणाम पर प्रकाश डालिए।
3. औद्योगिक क्रांति से क्या तात्पर्य है? इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. औद्योगिक क्रांति से आप क्या समझतें है? उसके कारण एवं प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
5. औद्योगिक क्रांति के सामाजिक प्रभावों का विस्तार से चर्चा कीजिए।

1.3.9.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. औद्योगिक क्रांति क्या है?
2. औद्योगिक क्रांति का संक्षेप में व्याख्या कीजिए?
3. औद्योगिक क्रांति के प्रमुख कारणों को समझाइए?
4. औद्योगिक क्रांति के आर्थिक परिणाम पर टिप्पणी लिखिए?
5. औद्योगिक क्रांति के सामाजिक परिणाम पर प्रकाश डालिए?
6. औद्योगिक क्रांति ने किस प्रकार नये सामाजिक चिंतन को जन्म दिया?

1.3.9.3. अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. औद्योगिक क्रांति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किसनें किया है?

   अ. अर्नाल्ड टायनवी

ब. कॉम्ट

स. जे.एस. मिल

द. मैक्सबेबर

2. औद्योगिक क्रांति का प्रारम्भ किस देश से होता है?

अ. फ्रांस

ब. जर्मनी

स. इंग्लैंड

द. भारत

3. फ्लाइंग शटल नामक यंत्र किसने बनाया था?

अ. जेम्स हारग्रीब्ज

ब. रिचर्ड आर्कराइट

स. जान के

द. जेएस मिल

4. स्पिनिंग जेनी यंत्र का अविष्कार किसने किया था?

अ. रिचर्ड आर्कराइट

ब. टामस न्यूकोमैन

स. एंडमण्ड कार्टराइट

द . जेम्स हारग्रीब्ज

5. सेफ्टी लैंप का अविष्कार किस सन् में हुआ था?

अ. 1815

ब. 1790

स. 1784

द. 1760

1.3.9.4. प्रश्नोत्तर

1. अ
2. स
3. स
4. द
5. अ

1.3.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिन्हा, सी.वी. एवं सिन्हा, जया. (2004). *औद्योगिक समाज विज्ञान*. दिल्ली: मयूर पेपर वैक्स.
2. अग्रवाल, के.जी. (2005). *समाजशास्त्रीय चिंतन के आधार*. नई दिल्ली: साहित्य भवन प्रकाशन.
3. वर्मा, आर.एस. (2012). *इतिहास*. आगरा: एसबीपीडी पब्लिशिंग हाउस.
4. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

खंड-2 : समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध

इकाई-1: समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

2.1.1. उद्देश्य

2.1.2. प्रस्तावना

2.1.3. समाजशास्त्र की अवधारणा

2.1.4. मानवशास्त्र की अवधारणा

2.1.5. सामाजिक मानवशास्त्र की अवधारणा

2.1.6. समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र का संबंध

2.1.7. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में संबंध

2.1.8. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में अंतर

2.1.9. सारांश

2.1.10. बोध प्रश्न

2.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. समाजशास्त्र का मानवशास्त्र से संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।
3. समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र में संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।
4. समाजशास्त्र का मानवशास्त्र से अंतरस्पष्ट कर सकेंगे।

2.1.2. प्रस्तावना

समाजशास्त्र तथा सामाजिक विज्ञानों को न तो एक दूसरे पर निर्भर कहा जा सकता है और न ही एक दूसरे से पूर्णतया पृथक। सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से संबंध होने के कारण सभी विज्ञान एक दूसरे के पूरक है। समाज एक जटिल समग्रता है जिसके सभी पक्षों को किसी एक ही विज्ञान के द्वारा स्पष्ट नही किया जा सकता। वास्तविकता तो यह है कि समाजशास्त्र और अन्य सभी सामाजिक विज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ‘ सामाजिक दर्शन’ से प्रभावित है। सभी की विषय वस्तु सामाजिक ज्ञान है चाहे वह किसी भी भाग से सम्बन्धित क्यो न हो इतना अवश्य है कि इन सभी सामाजिक विज्ञानों में समाजशास्त्र की स्थिति

केंद्रीय है। इसका प्रमुख कारण यह है कि समाजशास्त्र ही एक ऐसा मात्र विज्ञान है जो संपूर्ण समाज का सामान्य चित्र प्रस्तुत करता है। जबकि अन्य सभी सामाजिक विज्ञान समाज के एक छोटे से भाग के अध्ययन में ही लगे हुए है समाज शास्त्र का कार्य पक्षपात पूर्ण रूप से तथ्यों की व्याख्या करना न होकर सभी सामाजिक विज्ञानों के एक दूसरे के समीप लाना है। इसलिए सभी सामाजिक विज्ञान एक दूसरे से पृथक होते हुए भी सामाजिक ज्ञान के विकास में उसी प्रकार सहायक होते है। जिस प्रकार श्रम विभाजन द्वारा विभिन्न कार्यो की भिन्न-भिन्न पद्धतियों से करने पर भी सभी व्यक्यिों का उद्देश्य किसी एक वस्तु का निर्माण करना होता है। यही कारण है न तो किसी सामाजिक विज्ञान की सीमा रेखा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है और न ही विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के बीच किसी स्पष्ट अंतरका उल्लेख किया जा सकता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि समाजशास्त्र व विशेष सामाजिक विज्ञानों को जिनमें समाजिक मानव शास्त्र, समाजिक मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र प्रमुख है एक ही परिवार का सदस्य माना जाना चाहिए। यद्वपि इनमें समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण स्थान है लेकिन सभी विज्ञानों में आदान-प्रदान का संबंध होने के कारण इनमें ऊच-नीच का प्रश्न नही उठता। समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र का आपस में बहुत ही घनिष्ट संबंध है।

मानवशास्त्र जहाँ मनुष्य के उद्विकास जहाँ से पशु से धीरे-धीरे मानव का विकास, सीधे खडे होने की क्षमता स्वतंत्रता पूर्वक घुमाये जा सकने वाले उनके दो हाथ, उसकी तीक्ष्ण और क्रेन्द्रित की जा सकने वाले दृष्टि से मनुष्य को पशु से भिन्न किया जहाँ प्राकृतिक तथा अन्य घटनाओं का निरीक्षण, परीक्षण व प्रयोग करना उसके लिए सम्भव हुआ। समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो सामाजिक संबंधों का व्यवस्थित अध्ययन करता है। दोनों शास्त्रों में घनिष्ट संबंध हमें यह बताता है कि एक के बिना दूसरे शास्त्र के अध्ययन की कल्पना असम्भव है।

2.1.3. समाजशास्त्र की अवधारणा

मनुष्य आदि काल से ही समाज में रहता रहा है, परन्तु उसनेसमाज और अपने स्वयं के अध्ययन में काफी देर से रूचि लेना प्रारम्भ किया। सबसे पहले मनुष्य ने प्राकृतिक घटनाओं का अध्ययन किया। अपने चारों ओर के पर्यावरण को समझने का प्रयत्न किया और अंत में स्वयं के अपने समाज के विषय में सोचना-विचारना शुरू किया। यही कारण है कि पहले प्राकृतिक विज्ञानों का विकास हुआ और उनके पश्चात समाजिक विज्ञानों का। सामाजिक विज्ञानों के विकास क्रम में भी समाजशास्त्र का एक विषय के रूप में विकास कॉफी बाद में हुआ। पिछली शताब्दी में इस नवीन विषय को अस्तित्व में आने का अवसर मिला। इस दृष्टि से समाजशास्त्र अन्य सामाजिक विज्ञानों की तुलना में एक नवीन विज्ञान है।

समाजशास्त्र समाज का ही विज्ञान या शास्त्र है। इसके द्वारा समाज या सामाजिक जीवन का अध्ययन किया जाता है। इस नवीन विज्ञान को जन्म देने का श्रेय फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान आगस्त कॉम्ट (August

Comte) का है। आपने सर्वप्रथम 1838 मे इस नवीन शास्त्र को समाजशास्त्र (Sociology) नाम दिया गया। इसी कारण आपको समाजशास्त्र का जनक (Father of sociology) कहा जाता है।

जब हम इस पर विचार करते है कि समाजशास्त्र क्या है तो हमें विभिन्न समाज शास्त्रियों के दृष्टिकोणों को समझना होगां।

अ) समाजशास्त्र समाज का अध्ययन है

अधिकांश विद्वान (जैसे ओडम, वार्ड, जिसबर्ट, गिडिग्स आदि) समाजशास्त्र को समाज के अध्ययन या समाज के विज्ञान के रूप में परिभाषित करते है यही दृष्टिकोण अधिकांश प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों का भी रहा है। जिन्होने समाज का समग्र के रूप में (अर्थात इसे एक संपूर्ण इकाई मानकर) अध्ययन करने पर बल दिया है।

1. **ओडम्** के अनुसार:-

   "समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज का अध्ययन करता है।"

2. **वार्ड** के अनुसार:-

   "समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।"

3. **जिसवर्ट** के अनुसार:-

   "समाजशास्त्र सामान्यता समाज के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जाता है।"

4. **गिडिग्स** के अनुसार:-

   "समाजशास्त्र समग्र रूप में समाज का क्रमबद्ध वर्णन तथा व्याख्या है।"

समाज के अध्ययन के रूप में दी गयी समाजशास्त्र की उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट हो जाता है कि केवल समाजशास्त्र का शाब्दिक अर्थ ही समाज का अध्ययन या समाज का विज्ञान नही है। बल्कि ओडम्, वार्ड, जिसवर्ट तथा गिडिग्स आदि विद्वानों ने इसकी परिभाषा देते समय भी समाज को इस विषय का मुख्य अध्ययन बिन्दु बताया है। समाज का अर्थ सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था जाल अथवा ताने-बाने से है। इससे किसी समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक अंत संबंधों की जटिलता का बोध होता है। अन्य शब्दों में जब सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था पनपती है तभी हम उसे समाज कहते है।"

ब) समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन है

कुछ विद्वानों (जैसे मैकाइवर तथा पेज, क्यूबर, रोज, सिमेल, ग्रीन आदि) ने समाजशास्त्र को सामाजिक संबंधों के क्रमबद्व अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है सामाजिक संबंधों से हमारा अभिप्राय दो अथवा दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों के संबंधों से है जिन्हें एक दूसरे का आभास है तथा जो एक दूसरे के लिए कुछ न कुछ कार्य कर रहे है वह जरूरी नही है कि संबंध मधुर तथा सहयोगात्मक ही हो ये संघर्षात्मक या तनावपूर्ण भी हो सकते है। समाज शास्त्री इन दोनों तरह के संबंधों का अध्ययन करते है। सामाजिक संबंध उस

परिस्थिति में पाये जाते है जिसमें कि दो या दो से अधिक व्यक्ति अथवा दो या अधिक समूह परस्पर अन्तः क्रिया में भाग ले। सामाजिक संबंध तीन प्रकार के हो सकते है।

1. व्यक्ति तथा व्यक्ति के बीच
2. व्यक्ति तथा समूह के बीच
3. एक समूह और दूसरे समूह के बीच

पति-पत्नी, भाई-बहन, पिता-पुत्र के संबंध पहली श्रेणी के उदाहरण है। छात्रों का अध्यापक के साथ संबंध दूसरी श्रेणी का उदाहरण है। एक टीम का दूसरी टीम अथवा राजनीतिक दल का दूसरी राजनीतिक दल से संबंध तीसरी श्रेणी का उदाहरण है इस दृष्टि से दी गयी प्रमुख परिभाषा निम्न प्रकार है।

1. मैकाइवर एवं पेज के अनुसार:-

"समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के विषय में है संबंधों के इस जाल को हम समाज कहते है।"

2. क्यूबर के अनुसार:-

"समाजशास्त्र को मानव संबंधों के वैज्ञानिक ज्ञान के ढाचे के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

3. रोज के अनुसार:-

"समाजशास्त्र मानव संबंधों का विज्ञान है।"

4. सिमेल के अनुसार:-

"समाजशास्त्र माननीय अंतरसंबंधों के स्वरूपों का विज्ञान है।"

5. ग्रीन के अनुसार:-

"समाजशास्त्र मनुष्य को उसके समस्त सामाजिक संबंधों के रूप में समन्वयय करने वाला और सामान्य अनुमान निकालने वाला विज्ञान है।"

सामाजिक संबंधों के अध्ययन के रूप में समाजशास्त्र को परिभाषित करने वाली उपर्युक्त परिभाषाओं से पता चल जाता है कि समाजशास्त्र की मुख्य विषय वस्तु व्यक्तियों में पाये जाने वाले सामाजिक संबंध है। इनकें आधार पर भी समाज का निर्माण होता है। मैकाइवर एवं पेज का इस सन्दर्भ में यह कथन उचित ही लगता है कि समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों की श्रृखला का अध्ययन करने वाला विषय है। ये सामाजिक संबंध विभिन्न प्रकार के हो सकते है। इनमें जटिलतायें भी हो सकती है और नवीन समाजिक परिवेश के अनुसार इनके विभिन्न रूप भी हो सकते है। सामाजिक संबंध छिछले अन्य जीवी अंतक्रियाओं वाले (जैसे विदेश में दो भारतीयों का एक दूसरे को अभिवादन करना) भी होते है और स्थायी अंतरक्रिया की प्रणालियों वाले (जैसे परिवार या घनिष्ट मैत्री) भी। सामाजिक संबंध में भाग ले रहे लोग मित्रवत भी हो सकते है और द्वेष पूर्ण भी। वे एक दूसरे के साथ सहकार भी कर सकते है अथवा एक दूसरे का संहार करने की कामना भी। अतः हम कह सकते है। कि समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों की जटिल व्यवस्था का क्रमबद्ध और व्यवस्थित तरीके से अध्ययन करने वाला सामाजिक विज्ञान है।

स) समाजिक जीवन घटनाओं व्यवहार एवं कार्यों का अध्ययन है।

कुछ विद्वानों (जैसे आगबर्न एवं निमकॉफ, बेनेट एवं ट्यूमिन, सोरोकिन आदि) ने समाजशास्त्र को सामाजिक जीवन व्यक्तियों के व्यवहार एवं उनके कार्यों तथा सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है।

1. आगबर्न एवं निमकॉफ के अनुसार:-

"समाजशास्त्र सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

2. बेनेट एवं ट्यूमिन के अनुसार:-

"समाजशास्त्र सामाजिक जीवन के ढाँचे एवं कार्यों का विज्ञान है।"

3. यंग के अनुसार:-

"समाजशास्त्र समूहों में मनुष्यों के व्यवहार का अध्ययन करता है।"

4. सोरोकिन के अनुसार:-

"समाजशास्त्र सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं के सामान्य स्वरूपों, प्रारूपों और विभिन्न प्रकार के अंतरसंबंधों का सामान्य विज्ञान है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से हमे पता चलता है कि समाजशास्त्र सामाजिक जीवन का वैज्ञानिक रूप से अध्ययन करता है कि मनुष्यों के व्यवहार के पीछे कोई न कोई कारण अवश्य छिपा रहता है।

द) समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का अध्ययन है

व्यक्ति समाज में अकेला नही रह सकता है बल्कि अन्य व्यक्तियों के साथ रहता है। वास्तव में व्यक्ति का जीवन विभिन्न सामाजिक समूहों का सदस्य होने के कारण ही संगठित जीवन है। इसी बात को आधार मानकर जॉनसन ने समाजशास्त्र की परिभाषा ही सामाजिक समूहों के अध्ययन के रूप में दी है।

जॉनसन के अनुसार:-

"समाजशास्त्र सामाजिक समूहों उनके आन्तरिक स्वरूपों या संगठन के स्वरूपों, उन प्रक्रियाओं जो उस संगठन को बनाए रखती है या परिवर्तित करती है और समूहो के बीच पाये जाने वाले संबंधों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।" जॉनसन की उपर्युक्त परिभाषा से हमे पता चलता है कि समाजशास्त्र सामाजिक समूहो इनमें पाये जाने वाले संगठनों तथा इनसे सम्बन्धित प्रक्रियाओं (जैसे समूह का निर्माण, समूह का विघटन अथवा समूह में परिवर्तन) का अध्ययन है। जैटलिन ने भी समाजशास्त्र को सामाजिक समूहों के अध्ययन के रूप में परिभाषित किया है जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी लक्ष्य या उद्देश्य को पाने के लिए एक दूसरे को प्रभावित करते है या अंतरक्रिया करते है और इसके परिणाम स्वरूप उनके मध्य सामाजिक संबंध स्थापित होते है तभी उन व्यक्तियों के संग्रह हो समूह कहा जा सकता है।

य) समाजशास्त्र अंत:क्रियाओं का अध्ययन:-

मानव एक सामाजिक प्राणी है वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर है ं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के दौरान उनमें परस्पर संबंध, सहयोग तथा अंतक्रियायें हो। व्यक्तियों की सामाजिक क्रियाओं एवं अंतक्रियाओं का अध्ययन समाजशास्त्र में किया जाता है। सभी क्रियायें सामाजिक नही होती है वही क्रियाये सामाजिक होती है जो अर्थपूर्ण होती है इस नाते वे अन्य व्यक्तियों द्वारा समझी जा सकती है। सामाजिक नियमों द्वारा प्रभावित होती है। और जिनका निर्धारण समाज अथवा समूह द्वारा किया जाता है। मैक्स वेवर , गिलिन, जिन्स वर्ग इत्यादि विद्वानो ने समाजशास्त्र की निम्नलिखत परिभाषाओं में इन्ही क्रियाओं एवं अंतक्रियाओं को आधार माना है।

1. बेबर के अनुसार:-

"समाजशास्त्र एक ऐसा विज्ञान है जो सामाजिक क्रियाओं का निर्वाचनात्मक अर्थ व्यक्त करने का प्रयत्न करता है तांकि इसकी गतिविधि तथा परिणामों की कारण सहित विवेचना की जा सके।"

2. गिलिन एवं गिलिन के अनुसार:-

"समाजशास्त्र को विस्तृत अर्थ में जीवित प्राणियों के एक दूसरे के संपर्क में आने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली अंतर्क्रियाओं का अध्ययन कहा जा सकता है।"

3. जिम्स वर्ग के अनुसार:-

"समाजशास्त्र मानवीय अंतर्क्रियाओं अंतर्संबंधों उनकी दशाओं और परिणामों का अध्ययन है।"

सामाजिक अर्न्तक्रिया दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच होने वाली अर्थपूर्ण क्रिया को कहते है। स्पष्ट है कि सामाजिक अंतक्रिया का विश्लेषण करते समय हम क्रिया के कर्ता और कर्म दोनों को सामने रखते हैं यह वह क्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह एक दूसरे को परस्पर रूप से प्रभावित करते है। डासन एवं गेटिस ने अंतर्क्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "सामाजिक अंतक्रिया वह प्रक्रिया होती है जिसके द्वारा मनुष्य एक दूसरे के मस्तिष्क में अंतः प्रवेश करते है"। इसे हमे शतरंज के खेल की स्थिति में समझ सकते है। जहाँ शतरंज के मोहरे के प्रत्येक चाल को खेलने वाले खिलाडी एक दूसरे का इरादा समझने का प्रयास करते हैं और एक दूसरे की चाल से प्रभावित होकर अपनी चाल का निर्धारण करते है। सामाजिक अंतक्रियाओं के प्रमुख स्तर इस प्रकार हैं- व्यक्ति की व्यक्ति से अंतक्रिया, व्यक्ति की समूह से अंतक्रिया, समूह की समूह से अंतक्रिया तथा समूह की व्यक्ति से अंतक्रिया।

प्रमुख विद्वानों द्वारा समाजशास्त्र की अवधारणा को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर परिभाषित किया गया है उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि समाजशास्त्र मुख्य रूप से समाज, सामाजिक संबंधों, सामाजिक जीवन, सामाजिक घटनाओं व्यक्तियों के व्यवहार एवं कार्यो, सामाजिक समूहो एवं सामाजिक अंतर्क्रियाओं का अध्ययन करने वाला विषय है। यह एक आधुनिक विज्ञान है। इसमें मानव व्यवहार के प्रतिमानों और नियमिताओं पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसमें व्यक्तियों उनके समूहों तथा श्रृष्टियों के बारे

में नियम श्रेणियों निर्धारित किये जाते है। वास्तव में समाज शास्त्रियों की रूचि उन सभी बातों के अध्ययन में है जो कि एक दूसरे के साथ अंतर्क्रिया के दौरान घटित होती है।

उदाहरणार्थ:- व्यक्ति किसी विशेष प्रकार का व्यवहार क्यो करते है? वे समूहो का निर्माण क्यों करते है? वे युद्ध अथवा संघर्ष क्यो करते है? वे पूजा क्यो करते है? वे विवाह क्यों करते है? वे वोट क्यो डालते है? ऐसे अनगिनत प्रश्नों का उत्तर इसी विषय में खोजने का प्रयास किया गया है। स्मेलसर ने उचित ही लिखा है कि "संक्षेप में समाजशास्त्र का सामाजिक संबंधों, संस्थाओं तथा समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

2.1.4. मानवशास्त्र की अवधारणा

मानवशास्त्र (Anthropology Greek word anthrotas meaning man and the noun ending logy meaning science.)) है। वास्तव में यह शाब्दिक है अत्यंत ही व्यापक और सामान्य है अधिक यथार्थ और स्पष्ट रूप में मानवशास्त्र को हम मानव और उसके कार्यो का अध्ययन कह सकते है। परन्तु यहां भी यह स्मरण करना होगा कि मानव और उसके कार्यो का अध्ययन केवल मात्र मानवशास्त्र द्वारा नही होता है। अन्य सामाजिक विज्ञान भी इनका अध्ययन करते है। परन्तु मानव जाति के जन्म से लेकर वर्तमान काल तक मानव और उसके कार्यो का जितना विस्तारित अध्ययन मानवशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत आता है उतना और किसी अन्य विज्ञान के क्षेत्र में नही यह तथ्य निम्न परिभाषाओ से स्पष्ट हो जायेगा:-

1. सर्व जैकब्स तथा स्टर्न के अनुसार:-

"मानवशास्त्र मनुष्य जाति के जन्म से लेकर वर्तमान काल तक मानव के शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास एवं व्यवहारों का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

2. हाबल के शब्दों में:-

"मानवशास्त्र मानव और उसके समस्त कार्यो का अध्ययन है। संपूर्ण अर्थ में यह मनुष्य की प्रजातियों एवं प्रथाओं का अध्ययन है।"

3. क्रोबर ने मानवशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार की है:-

"मानवशास्त्र मनुष्यों के समूहों, उनके व्यवहार और उत्पादन का विज्ञान है।"

इस प्रकार हम यह कह सकते है कि मानवशास्त्र सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर अब तक मानव जाति के समग्र रूप का वह विज्ञान है जो उसके शारीरिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक उद्भव एवं विकास का अध्ययन करता है।

मानव प्रकृति का ही अंश है। मानवशास्त्र में मानव का अध्ययन विश्व के एक अंग के रूप में ही किया जाता है। इस कारण मानवशास्त्र एक प्राकृतिक विज्ञान है। परन्तु जैसा हॉबल का कथन है। "मानवशास्त्र की

सर्वप्रथम विशेषता यह है कि प्राकृतिक विज्ञान के रूप में वह एक साथ शारीरिक तथा सामाजिक विज्ञान दोनों ही है। शारीरिक विज्ञान के रूप में मानवशास्त्र मानव जाति को पशु जगत का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग मानकर उसके उदभव तथा उदविकास, शरीर रचना आदि का अध्ययन करता है। साथ ही सामाजिक विज्ञान के रूप में मानवशास्त्र मानव के सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास एवं व्यवहार के विभिन्न पहलुओं का विवेचनात्क और तुलनात्मक अध्ययन करता है। मानव जीवन की समस्त विविधताओं से सम्बन्धित विज्ञान मानवशास्त्र की यह दोहरी प्रकृति स्वाभाविक ही है। क्यों कि मानव केवल पशु जगत का एक प्राणी मात्र ही नही है। अपितु यह सांस्कृतिक इतिहास और विविध सामाजिक गुणों से संयुक्त एक प्राणी भी है। अतः मानवशास्त्र शारीरिक या प्राणिशास्त्रीय और सामाजिक विज्ञान दोनों ही है। इसके अतिरिक्त मानव जीवन के प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक पक्ष पर बल देते हुए पेन्नीमैन ने मानवशास्त्र के विषय में लिखा है। "एक रूप में यह (मानव शास्त्र) प्राकृतिक इतिहास की एक शाखा है और इसके अंतर्गत जीव प्रकृति के क्षेत्र में मानव की उत्पत्ति और स्थिति का अध्ययन आता है। दूसरे रूप में मानवशास्त्र इतिहास का विज्ञान है।" अतः स्पष्ट है कि मानवशास्त्र शारीरिक तथा सामाजिक विज्ञान के अतिरिक्त एक इतिहास का भी विज्ञान है। इतिहासकार एक सामाजिक वैज्ञानिक हो सकता है। यदि वह सामाजिक परिवर्तन व क्रियाओं के सामान्य नियमों को ढूँढ निकालने में प्रयत्नशील है। न सामान्य नियमों को ढूढने में उसे नियमानुसार घटने वाली पिछली अनेक घटनाओं का सावधानी से विश्लेषण तथा वर्गीकरण करना होता है। मानव शास्त्री भी ऐतिहासिक तथा प्रागौतिहासिक युगो के मानव के शारीरिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास एवं व्यवहार से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों व घटनाओं का विश्लेषण तथा वर्गीकरण करते है और उनके आधार पर शारीरिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन या क्रियाओं के सामान्य नियमों को ढूढ निकालते है। इस प्रकार मानवशास्त्र इतिहास का विज्ञान है।

कुछ मानव शास्त्रियों जैसे सर्व , मैलिनोंवस्की, रेडकिल्फ ब्राउन आदि का मत है कि मानवशास्त्र केवल विज्ञान के रूप में ही अर्थ पूर्ण हों सकता है। इस विज्ञान के क्षेत्र में इतिहास का पूर्णतया वहिष्कार होना चाहिए। मानव शास्त्रियों का संपर्क केवल इन समाजों और मनुष्य के अध्ययन तक ही केन्द्रित होना चाहिए जिनका प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन किया जा सके। उक्त विद्वानों का मत है कि उस प्राचीन इतिहास, समाज या घटनाओं की छानबीन करना जिसके लिए कोई भी लिखित प्रमाण नही मिलतें, किसी भी अर्थ में किसी विज्ञान के लिए उचित नही है।

उपर्युक्त मत के विपरीत कुछ मानवशास्त्रियों के मतानुसार मानवशास्त्र केवल इतिहास है। ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों पर ही मानवशास्त्रियों का संपूर्ण अध्ययन आधारित होना चाहिए। परन्तु वास्तव में मानवशास्त्र की स्थिति इन दो विरोधी मतों के बीच की ही है। इसमें कोई संदेह नही कि ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों को समझे बिना वर्तमान को समझना कठिन है, परन्तु उन घटनओं तथा तथ्यों से वास्तविक अवलोकन के आधार पर पुनरीक्षण किये बिना कोई वैज्ञानिक परिणाम निकालना सम्भव नही। समाज और

संस्कृति एक निरन्तर प्रक्रिया है जो भूतकाल पर आधारित वर्तमान में क्रिया शील तथा भविष्य की ओर गतिशील है। मानवशास्त्र भूत तथा वर्तमान दोनों ही काल के मानव तथा उसकी संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन है। देश और काल की सीमाओं में अपने को बांधे बिना मानव जाति का संपूर्ण अध्ययन करना इस विज्ञान का उद्देश्य है।

2.1.5. सामाजिक मानवशास्त्र की अवधारणा

रेडक्लिफ ब्राउन ने सामाजिक मानवशास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है "सामाजिक मानवशास्त्र समाजशास्त्र की वह शाखा है जो आदिम समाजों का अध्ययन करती है।" आपके अनुसार समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्थाओं का एक अध्ययन है। परन्तु इसका संपर्क विशेष रूप से आदि समाजों से होता है। इससे पूर्व अपने एक लेख में रेडक्लिफ क्लिक ब्राउन ने ही सामाजिक मानवशास्त्र को एक दूसरी तरह से परिभाषित किया था। "सामाजिक मानवशास्त्र विविध प्रकार से समाजों की क्रमबद्ध तुलना द्वारा मानव समाज की प्रकृति के संबंध में खोज है।"

इवान्स प्रिटचार्ड ने यह भी लिखा है "सामाजिक मानवशास्त्र समाज शास्त्रीय अध्ययनों की एक शाखा मानी जा सकती है वह शाखा जो मुख्यतः अपने को आदिम समाजों के अध्ययन में लगाती है।"

सामाजिक मानवशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र की विवेचना करते हुए **इवान्स प्रिटचार्ड** ने (Evansprit Chardcience.) सामाजिक मानवशास्त्र के जिन लक्षणों या विशेषताओं का उल्लेख किया है। उनसे इस विज्ञान की प्रकृति तथा क्षेत्र को समझनें में पर्याप्त सहायता मिल सकती है। ये विशेषतायें निम्नलिखित है।

क) वैसे तो सामाजिक मानवशास्त्र सभी प्रकार के मानव समाजों का अध्ययन है। फिर भी वह प्रथमतः समाजों के अध्ययन में ही अधिक ध्यान केन्द्रित करता है। क्यो कि सीमित क्षेत्र तथा अल्प जनसंख्या के कारण इन समाजों के सामाजिक जीवन, सामाजिक संबंधों तथा संस्थाओं का विश्लेषण सुविधा पूर्वक किया जा सकता है। परंतु ध्यान रहे कि इन आदिम समाजों का अध्ययन करते हुए एक मानव शास्त्री वहां के लोगों की भाषा, कानून, धर्म, सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाओं आर्थिक संगठन आदि का अध्ययन करता है। ये वे ही सामान्य विषय तथा समस्यायें है जो सभ्य समाजों में भी पाये जाते है।

ख) सामाजिक मानवशास्त्र संस्थागत सामाजिक व्यवहारों व संबंधों तथा संस्थाओं का विज्ञान है। यह समाजों की जनसंख्या उनकी आर्थिक व्यवस्था उनकी वैधानिक तथा राजनैतिक संस्थाओं उनके परिवार तथा नातेदारी की व्यवस्था उनके धर्म आदि का अध्ययन सामान्य सामाजिक व्यवस्थाओं के रूप में करता है।

ग) सामाजिक मानवशास्त्र किसी न किसी सामाजिक संस्था संबंध और व्यवस्था के विषय में अध्ययन करता है। जो वास्तविक तथ्यो पर आधारित खोज होते है। इस कारण इस विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक फैलाव समस्त भू मण्डल पर होता है। चाहे वह समाज अफ्रीका का हो, चाहे अमेरिका, आस्ट्रेलिया, वर्मा, मलाया साइबेरिया, भारत वर्ष या ध्रुवीय क्षेत्र का हो। सामाजिक मानवशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत

आता है। केवल भौगोलिक फैलाव ही नही सामाजिक मानवशास्त्र का विषय फैलाव भी अधिक है। इसके अध्ययन विषयों के अंतर्गत राजनैतिक संस्थाओं, धार्मिक संस्थाओं, वैधानिक तथा अवैधानिक संस्थाओं, विवाह और साथ ही सामाजिक अनुकूलन और संपूर्ण सामाजिक संगठन या संरचना का अध्ययन आता है।

घ) सामाजिक मानवशास्त्र समाजों का अध्ययन है न कि संस्कृतियों का इस विज्ञान की प्रकृति, अध्ययन विषय तथा क्षेत्र की विवेचना में इस सत्य को निरन्तर ध्यान में रखना होगा। यही कारण है कि सामाजिक मानवशास्त्र के सभी लेखो तथा पुस्तकों में बहुत कुछ समाज शास्त्रीय झुकाव होता है। अर्थात उनमें प्रधानतया तथा सामाजिक संबंधों समाज के सदस्यों और सामाजिक समूहों में संबंधों तथा विभिन्न संस्थाओं के पारस्परिक संबंधों की विवेचना होती है। दूसरे शब्दों में सामाजिक मानवशास्त्र में सामाजिक संबंधों तथा सामाजिक संरचना के अध्ययन की प्रधानता होती है। यद्यपि समाज और संस्कृति के बीच कोई दृढ विभाजन रेखा खीचना न तो सरल है और न ही उचित। प्रत्येक सामाजिक जीवन में अनेक एक रूपतायें तथा नियम अवस्थायें होती है उसी के आधार पर सामाजिक व्यवस्था सम्भव होती है और समाज के विभिन्न अंगों में एक शृंखला उत्पन्न हो जाती है। यही सामाजिक संरचना होती है। उस समाज के सदस्यों को इस सामाजिक संरचना का ज्ञान नही भी हो सकता है। और अगर हो भी तो अस्पष्ट ज्ञान हो सकता है। सामाजिक मानवशास्त्र का कार्य इसी को स्पष्ट करना है। एक संपूर्ण सामाजिक संररचना में अनेक सहायक या उपसंरचनायें या व्यवस्थायें होती है और इन्ही हो हम नातेदारी व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, धामिक व्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था आदि के नाम से पुकारते है। इन व्यवस्थाओं के अंतर्गत सामाजिक क्रियायें विभिन्न संस्थाओं जैसे विवाह, संस्कार, धर्म आदि के चारों ओर संगठित होती है। सामाजिक मानवशास्त्र का संपर्क इन सभी से होता है।

2.1.6. समाजशास्त्र एवं सामाजिक मानवशास्त्र का संबंध

समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र का पारस्परिक संबंध इतना घनिष्ठ है किन्ही-किन्ही बातों में अंतरकरना बडा कठिन है। दोनों ही समाज का अध्ययन है और दोनों का अन्तिम लक्ष्य सामाजिक नियमों का प्रतिपादन करना है। पहले ही कहा जा चुका है मानव तथा उसका समाज सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा धार्मिक संस्थायें, व्यवस्था या आदिम संगठन अत्यंत सादे सरल व छोटे होते है। और इनका अध्ययन सामाजिक मानवशास्त्र का विशेष उद्देश्य है। इन अध्ययनों से प्राप्त ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर समाजशास्त्रियों को आधुनिक, जटिल व विशाल समाजों को समझने और उनके विश्लेषण और निरूपण में अत्यधिक सहायता मिलती है। दूसरी ओर समाज शास्त्रियों द्वारा आधुनिक समाजों की विभिनन समस्याओं से सम्बन्धित जो विशेष अध्ययन हुए है उनसे अधिक समाजों के अध्ययन के लिए सामाजिक मानव शास्त्रियों को अनेक नई उपकल्पनायें मिलती रहती है इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन दो विज्ञानों में अत्यधिक आदान-प्रदान का संबंध है। इन दो विज्ञानों के एक दूसरे के इतने निकट लाने के विषय में भी दुर्खीम का योगदान भी

विशेष उल्लेखनीय है। दुर्खीम ने अपने विस्तृत अध्ययन और प्रमाणों द्वारा एक नये रूप में समस्त सामजिक घटनाओं का सामाजिक कारण ढूढ निकाला और समाज को इन घटनाओं की व्याख्या में सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया है। अंग्रेज मानव शास्त्री, दुर्खीम की इन धारणाओं से अत्यंत प्रभावित प्रतीत होते है। जिनके सामाजिक मानव शास्त्री अनेक अध्ययनों में दुर्खीम की समाज शास्त्रीय उपकल्पनाओं केा काम में लाया गया है।

समाजशास्त्र तथा सामाजिक मानवशास्त्र में संबंध घनिष्ट होते हुए भी इन दो विज्ञानों में कुछ अंतरभी है। सामान्यतया सामाजिक मानवशास्त्र आदिम समाजों का अध्ययन करता है जबकि समाजशास्त्र का अध्ययन क्षेत्र आधुनिक सभ्य समाज है। दूसरा प्रमुख अंतरअध्ययन पद्वति का यह है। सामाजिक मानव शास्त्रियों की सर्वप्रथम पद्वति "अंश ग्रहण अवलोकन" पद्वति है और इसी कारण उन्हे जिस समाज का अध्ययन करना होता है उसमें जाकर वे वश जाते है और फिर तथ्यों का संग्रह करते है इसके विपरीत समाज शास्त्रियों अध्ययन में प्रलेखों तथा सांख्यिकीय पद्वति का प्रयोग होता है।

2.1.7. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में संबंध

मानवशास्त्र वह विज्ञान है जो आदिकालीन मानव की शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृति और उद्विकासीय सम्बन्धी विशेषताओं का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र और मानवशास्त्र एक दूसरे से इतने घनिष्ट रूप से संबंध है कि क्रोबर ने तो इन दोनों शास्त्रों को जुड़वा बहन तक कह दिया हे। बोआस का कथन है कि समाजशास्त्र का प्रमुख कार्य सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक क्रम के सिद्धांतों को स्पष्ट करना है ये सिद्वान्त मानव शास्त्री होने के साथ ही समाज शास्त्री भी है। इस आधार पर हाबेल ने तो यहां तक कह दिया है कि विस्तृत अर्थो में समाजशास्त्र और मानवशास्त्र विल्कुल एक समान है।

समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध

मानवशास्त्र और समाजशास्त्र का संबंध और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए मानवशास्त्र के तीन प्रमुख भागों से समाजशास्त्र का संबंध दिखाया जा सकता है। मानवशास्त्र का प्रथम भाग भौतिक मानवशास्त्र है जो मानव के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन करता है यह शास्त्र आदि मानव के शारीरिक लक्षणों का अध्ययन करता है। यह शा़स्त्र आदि मानव की उत्पत्ति एवं शारीरिक विशेषताओं का गूढ अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र इन सभी अध्ययनों का लाभ उठाता है। मानवशास्त्र का द्वितीय मुख्य भाग है प्रागैतिहासिक मानवशास्त्र जो कि प्रागैतिहासिक युग की संस्कृतियों, सभ्यताओं व कलाओं का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र प्राचीन सभ्यता संस्कृति आदि का अध्ययन करके उसके आधार पर वर्तमान सामाजिक ढांचे का विश्लेषण करता है। मानवशास्त्र का तीसरा भाग जो सम्भवतः समाजशास्त्र के अत्यधिक निकट है। वह सामाजिक मानवशास्त्र है सामाजिक मानवशास्त्र वास्तव में आदिम सामाजिक परिस्थितयों में मनुष्य के समाज व संस्कृति का अध्ययन करता है। अर्थात इस शास्त्र के अंतर्गत आदिम समाजों के सामाजिक जीवन

का अध्ययन किया जाता है। दूसरी ओर समाजशास्त्र सभ्य समाजों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करता है और इस रूप में दोनों ही विज्ञान एक दूसरे के अधिक निकट है। दोनों ही विज्ञान एक दूसरे की सहायता करते है उपर्युक्त आधार पर कीसिंग का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि "सामाजिक मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र के बीच का क्षेत्र घनिष्ट रूप से सम्बन्धि है दोनों प्रबल रूप से सामाजिक व्यवहार के वैज्ञानिक सामान्यीकरण से सम्बन्धित है।"

वर्तमान काल में आदिम कालीन समाज और सभ्य समाज में जैसे-जैसे परिवर्तन हो रहा है मानवशास्त्र और समाजशास्त्र भी एक दूसरे के अधिक समीप आते जा रहे है।

उदाहरण:-

आदि वासी समाजों में भी अब प्रौद्योगिकी का प्रभाव बढ रहा है। सामाजिक मूल्य बदल रहे है। तथा बडे-बडे समूहों का निर्माण हो रहा है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन नई प्रौद्योगिकी के अध्ययन ने समाजशास्त्र और मानवशास्त्र को एक दूसरे के अधिक निकट ला दिया है। भारतीय समाज का उदाहरण देते हुए बोटोमोर ने सामाजशास्त्र और मानवशास्त्र के संबंध को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि भारतीय समाज न तो औद्योगिक रूप से पूरी तरह विकसित है और न ही आदिम समाजों की भांति पूर्णतया पिछडा हुआ है इसके फलस्वरूप यहां की सामाजिक व्यवस्था ग्रामीण समुदाय, नातेदारी संबंधों, जजमानी व्यवस्था तथा परम्पराओं का अध्ययन मानवशास्त्र में किया जाता है और समाजशास्त्र में भी किया जाता है।

2.1.8. समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में अंतर

समाजशास्त्र मानवशास्त्र में कुछ अर्थों में भिन्न है-

1. दोनों विज्ञान क्षेत्र के दृष्टिकोण से एक दूसरे से भिन्न है मानवशास्त्र समाज के संपूर्ण जीवन और भौतिक पक्षो का अध्ययन करता है जबकि समाजशास्त्र केवल समकालीन सामाजिक ढाचे और सामाजिक प्रक्रियाओं के अध्ययन पर ही बल देता है।
2. समाजशास्त्र का संबंध वर्तमान जटिल और सभ्य समाज के अध्ययन से है जबकि मानवशास्त्र सरल और आदिम समाजों का अध्ययन करता है।
3. दोनों विज्ञानेां की पद्धतियां भी एक दूसरे से भिन्न है समाजशास्त्र में सामाजिक सर्वेक्षण सांख्यिकी और समाजमिति पद्वति का विशेष महत्व है जबकि मानव शास्त्रीय अध्ययन के लिए सहयोगी अवलोकन अर्थात अध्ययन किये जाने वाले समूह में स्वयं घुलमिलकर कार्य करना आवश्यक होता है।
4. समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है जबकि मानवशास्त्र एक व्यवहारिक सामाजिक विज्ञान है।

2.1.9. सारांश

इस इकाई में हमने समाजशास्त्र विषय का परिचय देते समय यह बताना उचित समझा कि समाजशास्त्र विषय को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ विद्वान (जैसे ओड्म वार्ड, जिसवर्ट और गिडिग्स) ने समाजशास्त्र को समाज का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना है जबकि कुछ विद्वान जैसे (मैकाइवर एवं पेज, क्यूबर, रोज, सिमेल, ग्रीन) आदि ने समाजशास्त्र को सामाजिक संबंधों का अध्ययन माना है। जबकि तीसरे दृष्टिकोण के विद्वान जैसे (आगबर्न तथा निमकॉफ, बनेर, एवं ट्यूमिन, यंग, सोरोकिन) ने समाजशास्त्र को सामाजिक जीवन, घटनाओं व्यवहार एवं कार्यो का अध्ययन माना है। चौथे दृष्टिकोण के विद्वान जैसे (हेरीएम जॉनसन, जैटलिन) ने समाजशास्त्र को सामाजिक समूहों का अध्ययन माना है। जबकि पांचवे विचार धारा के विद्वान जैसे (वेबर, गिलिन एवं गिलिन, जिन्स वर्ग) ने समाजशास्त्र को अंतरक्रियाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना है। दोनों शास्त्रों (समाजशास्त्र , मानव शास्त्र) में संबंधों को समझने के लिए समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र को विस्तार से वर्णित किया गया है। दोनों शास्त्रों में आपस में बहुत ही घनिष्ट संबंध है क्यो कि जहाँ मानवशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र मनुष्य के आदिम अवस्थाओं का अध्ययन करना उसका क्षेत्र है वही समाजशास्त्र अपने अध्ययन को आगे विकसित करने के लिए मानव के इतिहास तथा परिवर्ततन और धीरे-धीरे सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था के लिए व्यक्ति का व्यक्ति से संबंध तथा संबंधों में भी घनिष्ठता एवं तार्किकता का अध्ययन यह नवीन विज्ञान समाजशास्त्र के अंतगर्त किया जाता है। क्यो कि किसी भी घटना अथवा समस्या के इतिहास को समझे बिना हम वर्तमान में व्यवहार नही कर सकते या भविष्य का निर्माण करना कठिन होता है।

2.1.10. बोध प्रश्न

2.1.10.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वैचारिक विभिन्नताओं को देखते हुए समाजशास्त्र की परिभाषाओं का वर्णन कीजिए?
2. समाजशास्त्र का अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा समाजशास्त्र के विषय में विद्वानों के दृष्टिकोणों पर प्रकाश डालिए?
3. मानवशास्त्र को परिभाषित कीजिए, तथा मानवशास्त्र की प्रमुख विशेषताएं बताइये?

2.1.10.2. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है?

(क) हरबर्ट स्पेन्सर

(ख) आगस्त कॉम्ट

(ग) इमाइल दुर्खीम

(घ) मैक्स वेबर

2. समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का विज्ञान है " किसने कहा?

(क) एम. जॉनसन

(ख) आर. एम. मैकाइवर

(ग) एल. एम. वार्ड

(घ) सिमेल

3. समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र को जुडवा बहने तक कह दिया है?

(क) कॉम्ट

(ख) बार्न्स तथा बेकर

(ग) क्रोबर

(घ) वार्ड

4. "सामाजिक मानवशास्त्र समाजशास्त्र की वह शाखा है जो आदिम समाजों का अध्ययन करती है?

(क) इवान्स प्रिट चार्ड

(ख) रेड क्लिफ ब्राउन

(ग) पेन्नीमैन

(घ) दुर्खीम

2.1.10.3. प्रश्नोत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)

2.1.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

5. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

6. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

7. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2014). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.

8. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. (2007). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-2 : समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

2.2.1. उद्देश्य

2.2.2. प्रस्तावना

2.2.3. विभिन्न विचारकों द्वारा समाजशास्त्र से अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध पर मत

2.2.4. मनोविज्ञान की अवधारणाएँ

2.2.5. मनोविज्ञान के लक्ष्य

2.2.6. सामाजिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में संबंध

2.2.7. समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में संबंध

2.2.8. समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में अंतर

2.2.9. सारांश

2.2.10. बोध प्रश्न

2.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.2.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

1. समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध पर विद्वानों के मत को समझ सकेंगे।
2. मनोविज्ञान की अवधारणाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
3. सामाजिक मनोविज्ञान का समाजशास्त्र से संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।
4. समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के संबंध की विवेचना कर सकेंगे।
5. समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

2.2.2. प्रस्तावना

समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान का आपस में बहुत ही घनिष्ट संबंध है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत हम समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति के संबंध में अध्ययन से प्रारम्भ करते है। समाज क्या है अंतर उत्तर आता है, समाज सामाजिक संबंधों का जाल है। संबंध हम समाज में किसी से क्यों रखते है, तथा कैसे रखते है इसी क्यों, तथा कैसे को समझकर हम समाज तथा उससे निर्मित समाजशास्त्र को तथा साथ ही मनोविज्ञान से संबंध को समझने में सरलता होगी। व्यक्ति किसी से संबंध क्यो रखता है घ् मनुष्य अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति अकेले नही कर सकता। अतः अनगिनत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य एक दूसरे से संबंध रखते है। दूसरा है संबंध कैसे बनते है घ् हम जानते है कि हमारे संबंध सभी लोगों से एक जैसे नही होते है। हम किस व्यक्ति से किस प्रकार संबंध स्थापित करेगें यह हमारे सामाजिक मूल्यों पर निर्भर होता है। सामाजिक मूल्यों के अनुसार ही हम किसी स्त्री से मां का संबंध रखते है तो किसी से पत्नी का संबंध, किसी से बहन का संबंध होता है तो किसी से मित्रता का संबंध ।

इस प्रकार सामाजिक संबंधों का निर्माण इस बात पर निर्भर होता है कि हमारे सामाजिक मूल्य किस व्यक्ति से हमें कैसा संबंध स्थापित करने की अनुमति देता है। जब समाज में सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होता है तथा समाज में सामाजिक संबंधों की प्रकृति भी बदलने लगती है । मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। इसमें मन की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत इस तथ्य की व्याख्या की जाती है कि एक व्यक्ति के आचरण व व्यवहार दूसरे व्यक्ति से क्यो और किस प्रकार भिन्न होता है। अतः मनोविज्ञान में मानव समाज तथा मानव-आचरण का परिचय करना ही मनोविज्ञान के अध्ययन का मुख्य विषय है।

2.2.3. विभिन्न विचारकों द्वारा समाजशास्त्र से अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध पर मत

समाजशास्त्र की प्रकृति को समझने के लिए यह जानना अत्यधिक आवश्यक है कि दूसरे सामाजिक विज्ञानों की तुलना में समाजशास्त्र का स्थान क्या है। आज अनेक विद्वान समाजशास्त्र को केवल अन्य सामाजिक विज्ञानों का मिश्रण मान लेने की भूल करते है। जबकि कुछ विचारक का मत है कि समाजशास्त्र पूर्णतया एक स्वतंत्र विज्ञान है और इस प्रकार दूसरे सामाजिक विज्ञानों से इसका कोई प्रत्यक्ष संबंध नही है। ये दोनों धारणाएं भ्रांतिपूर्ण है। वास्तविकता यह है कि सामाजिक ज्ञान की सीमाएं इतनी विस्तृत है कि सभी सामाजिक विज्ञानों को इसमें से आवश्यक विषय वस्तु प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, मानवशास्त्र, और दर्शन सामाजिक जीवन के ही किसी न किसी पक्ष का अध्ययन करते है। इसी प्रकार समाज भी सामाजिक घटनाओं और मानव व्यवहारों के सामान्य दृष्टिकोण को लेकर अध्ययन करता है। इस आधार पर सभी सामाजिक विज्ञानों की अध्ययन वस्तु में कुछ न कुछ सामानता का होंना स्वाभाविक है। यदि विभिन्न सामाजिक विज्ञान समाज की विभिन्न दशाओं और घटनाओं का

अध्ययन अलग-अलग दृष्टिकोण को लेकर करते है तो इसका अर्थ यह नही है कि उनके बीच विभाजन की एक रेखा खींच दी जाय।

प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त समानता के बाद भी विभिन्न सामाजिक विज्ञानों को एक दूसरे के पूर्णतया समान क्यो नही माना जाता। वास्तव में इसका कारण 'विशेष सामाजिक विज्ञान' और 'सामान्य सामाजिक विज्ञान' की धारणा है। अर्थशास्त्र केवल आर्थिक क्रियाओं का अध्ययन करता है। जबकि राजनीति शास्त्र का कार्य केवल राज्य से संबंधित तथ्यों का अध्ययन करना है। यह दोनों विज्ञान समाज के एक विशेष भाग का ही अध्ययन करते है। इसलिए इन्हे 'विशेष सामाजिक विज्ञान' कहा जाता है। इसके विपरीत समाजशास्त्र समाज के किसी विशेष पहलू का अध्ययन न होकर सम्पूर्ण समाज की सामान्य दशाओं का अध्ययन है। इस प्रकार समाजशास्त्र की प्रकृति अन्य विशेष सामाजिक विज्ञानों से कुछ भिन्न हो जाना बहुत स्वाभाविक है। हमारे अध्ययन से संबंधित प्रमुख समस्या यह है कि समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों के बीच पाये जाने वाले संबंध की प्रकृति कैसी है? इस विषय पर समाज शास्त्रियों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए है। समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों के संबंध को समझनें से पहले इन विचारों को जान लेना आवश्यक होगा क्यो कि इन्ही के सन्दर्भ में समाजशास्त्र व अन्य सामाजिक विज्ञानों के पारस्परिक संबंध को उचित रूप से समझा जा सकता है।

1. आगस्त कॉम्ट के विचार

फ्रेच विद्वान आगस्त कॉम्ट ने समाजशास्त्र के अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ किसी भी प्रकार के संबंध को अस्वीकार किया है। आपने अन्य सामाजिक विज्ञानों के अस्तित्व को ही नही माना है। आपका कहना है कि समाज एक समग्रता है और इस कारण सामाजिक प्रघटनाओं को अलग-अलग भागों में विभाजित नही किया जा सकता। अतः एक ही विज्ञान के द्वारा उसका पूर्णतः में अध्ययन किया जाना चाहिए। इस कार्य को अकेला समाजशास्त्र ही कर सकता है। कोई भी अन्य सामाजिक विज्ञान समाज के किसी एक विशेष पहलू का अध्ययन करके समाज के संबंध में किसी वास्तविक निष्कर्ष पर नही पहुचा जा सकता क्यों कि समाजशास्त्र ही समाज का समग्र रूप में वैज्ञानिक अध्ययन करके सामाजिक जीवन और विभिन्न सामाजिक प्रघटनाओं के संबंध में प्रमाणित जानकारी करा सकता है।

2. स्पेन्सर के विचार

ब्रिट्रिश समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर समाज को एक स्वतंत्र विज्ञान नही मानकर विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का समन्वय मानते है। आपने समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने वाले सभी सामाजिक विज्ञानों जैसे अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान, इतिहास, आदि के अस्तित्व और महत्व को स्वीकार किया है। आपके अनुसार विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के परिणामों निष्कर्षो को समाजशास्त्र ही समाज के एक सामान्य सिद्धांत के रूप में समन्वित करता है।

3. वार्ड के विचार

अमेरिकन समाज शास्त्री वार्ड समाजशास्त्र को एक मात्र सामाजिक विज्ञान नही मानते (कॉम्ट की भांति) और न ही आप इसे अन्य सामाजिक विज्ञानों का समन्वय मात्र समझते है। (स्पेन्सर की भांति) आप समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानों के समान एक स्वतंत्र विज्ञान मानते है। इसे समानता का दर्जा प्रदान करते है। वार्ड की मान्यता है कि समाजशास्त्र विशेष सामाजिक विज्ञानों का समन्वय नही है। बल्कि उनसे मिलकर बना एक मिश्रण है। यह ठीक उसी प्रकार का मिश्रण है जिस प्रकार से कई रासायनिक पदार्थ मिलकर एक नये रसायन (मिश्रण) का निर्माण करते है। विभिन्न सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र की निर्मायक इकाइयां है।

4. गिडिंग्स के विचार

अमेरिकन समाज शास्त्री गिडिंग्स ने समाजशास्त्र को समाज का समग्र रूप में या सम्पूर्ण समान का अध्ययन करने वाला विज्ञान माना है आपने समाजशास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को कॉफी विशाल एवं विस्तृत माना है।

आपके अनुसार समाजशास्त्र न तो अन्य सामाजिक विज्ञानों का योग है और न ही समन्वय इसका तो एक अपना पृथक दृष्टिकोण है। अलग, विषय सामग्री एवं अध्ययन क्षेत्र है।

5. सोरोकिन के विचार

समाज शास्त्रीय सोरोकिन ने समाजशास्त्र को विशेष या स्वतंत्र विज्ञान नही मानकर एक समान विज्ञान माना है आपके अनुसार समाजशास्त्र जीवन की सामान्य घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान है इसके द्वारा सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है। अध्ययन सामग्री की दृष्टि से समाजशास्त्र अन्य विज्ञानों से सहायता प्राप्त करता है। साथ ही यह शास्त्र विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के बीच संबंध स्थापित करने और उन्हे पूर्णतः प्रदान करने में योग देता है। आपकी मान्यता है कि समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों के बीच घनिष्ट संबंध पाया जाता है। ये एक दूसरे से कॉफी कुछ लेते देते है। अतः ये परस्पर निर्भर रहते है।

विद्वानों के उपर्युक्त विचारों से स्पष्ट है कि समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों के बीच घनिष्ट संबंध है।

यह हमें **बार्न्स एवं बेकर** के इस कथन को ध्यान में रखना है।

"समाजशास्त्र ने तो अन्य सामाजिक विज्ञानों की गृहस्वामिनी है और न ही उनकी दासी, बल्कि केवल उनकी बहिन है।"

2.2.4. मनोविज्ञान की अवधारणाएँ

मनोविज्ञान क्या है? इसका क्या अर्थ है? इन प्रश्नों का उत्तर मनोवैज्ञनिको ने भिन्न-भिन्न समय में विभिन्न प्रकार से दिया है। साधारण अर्थो में मनोविज्ञान मन का विज्ञान या मानसिक क्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है। मनोविज्ञान वह विशेष विज्ञान है जो अपना अध्ययन बाहरी वातारण पर क्रेन्द्रित न करके व्यक्ति तथा उसके अन्तर्णगत पर क्रेन्द्रित करता है।

मनोविज्ञान के इतिहास की जडे हजारो वर्ष गहरी ही नही है। बल्कि ज्ञान के अनेक क्षेत्रों से संबंधित है। धर्म, जादू, दर्शन और विज्ञान सभी का मनोविज्ञान की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण योगदान है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी के दार्शनिकों के विचारों में अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याओं की विवेचना मिलती है। भारत वर्ष में मनोविज्ञान का अध्ययन प्रारम्भ से ही दर्शन शास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। पहले मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र का एक अंग माना जाता था। मनोविज्ञान एक विकसित होता हुआ विज्ञान है। समय के परिवर्तन के साथ - साथ मनोविज्ञान के स्वरूप में भी क्रमशः परिवर्तन होता गया और कुछ वर्ष पूर्व ही यह एक स्वतंत्र विषय के रूप में सामने आया । दार्शनिक अरस्तु के समय में मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र का एक अंग था। किंतु धीरे-धीरे यह दर्शन शास्त्र से अलग हो गया । जैसे कि रेबर्न महोदय ने कहां है ।

“आधुनिक काल में एक परिवर्तन हुआ मनोविज्ञानिक ने धीरे - धीरे अपने विज्ञान को दर्शन शास्त्र से पृथक कर लिया है।” मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र से किस प्रकार पृथक हुआ, उसके अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन किया तथा उसके वैज्ञानिक स्वरूप का आरम्भ और विकास किस प्रकार हुआ, यह क्रमशः दी जाने वाली परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है।

मनोविज्ञान के अर्थ में क्रमशः परिवर्तन

मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र से किस प्रकार पृथक हुआ और उसके अर्थ में किस प्रकार परिवर्तन हुआ, इसका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा रहा है।

1. आत्मा का विज्ञान

गैरिट के अनुसार ‘साइकोलॉजी’ शब्द की उत्पत्ति यूनॉनी भाषा के दो शब्दों से हुई है। साइकी जिसका अर्थ है आत्मा और लोगस जिसका अर्थ है - अध्ययन । इस प्रकार, प्राचीन काल में साइकोलॉजी या ‘मनोविज्ञान’ का अर्थ था - आत्मा का अध्ययन या आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना इसीलिए, इसको उस काल में “आत्मा का विज्ञान” माना जाता था।

अनेक यूनानी दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को ‘आत्मा का विज्ञान’ माना । इन दार्शनिकों में उल्लेखनीय है। प्लेटो, अरिस्टोटल और डेकार्टे । आत्मा क्या है एवं उसका रंग, रूप और आकार कैसा है? आत्मा की व्याख्या, उसके अस्तित्व एवं प्रमाणिकता का उत्तर न दे पाने के कारण सोलहवी शताब्दी में मनोविज्ञान का यह अर्थ अस्वीकार कर दिया गया ।

2. मस्तिष्क का विज्ञान

मध्य युग के दार्शनिकों ने मनोविज्ञान को 'मन या मस्तिष्क का विज्ञान' बताया । दूसरे शब्दों में, उन्होने, विशेष रूप से इटली के दार्शनिक पोम्पोनॉजी ने, मनोविज्ञान को मस्तिष्क का अध्ययन करने वाला विज्ञान कहा इसका मुख्य कारण था कि आत्मा के मानसिक और आध्यात्मिक पहलू, अध्ययन के पृथक विषय हो गये थे, पर कोई भी दार्शनिक मस्तिष्क की पृकति और स्वरूप को निश्चित नही कर सका। इसका परिणाम बताते हुए बी.एन. झा ने लिखा है "मस्तिष्क के स्वरूप के अनिश्चित रह जाने के कारण मनोविज्ञान ने मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में किसी प्रकार की प्रगति नही की । "

आधुनिक मनोविज्ञान मन के स्वरूप तथा प्रकृति का निर्धारण न कर सका मन शब्द के विषय में भी अनेक मतभेद है, अतः यह परिभाषा भी अस्वीकार की गयी।

3. चेतना का विज्ञान

सोलहवी शताब्दी में वाइव्स विलियम, जेम्स, विलियम वुण्ट, जेम्स सल्ली आदि विद्वानों ने मनोविज्ञान को 'चेतना का विज्ञान' बताया। उन्होंने कहा कि मनोविज्ञान, मनुष्य की चेतन क्रियाओं का अध्ययन करता है पर वे 'चेतना' शब्द के अर्थ के संबंध में एक मत न हो सके। दूसरे, 'चेतन मन' के अलावा 'अचेतन मन' और 'अर्ध चेतन मन' भी होते हैं। जो मनुष्य की क्रियाओं को प्रभावित करते है परिणामतः मनोविज्ञान का यह अर्थ सीमित होने के कारण सर्वमान्य न हो सका।

विलियम जेम्स मनोविज्ञान के चेतना के स्वरूप को स्वीकार करता है तथा उसने कहा है कि मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा यह है कि "वह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन एवं व्याख्या करता है।"

4. व्यवहार का विज्ञान

20 वीं शताब्दी के आरम्भ में मनोविज्ञान के अनेक अर्थ बताये गये, जिनमें सबसे अधिक मान्यता इस अर्थ को दी गयी "मनोविज्ञान, व्यवहार का विज्ञान है" दूसरे शब्दों में 'हम कह सकते है कि इस शताब्दी में मनोविज्ञान का व्यवहार का निश्चित विज्ञान माना जाता है।' इस संबंध में कुछ प्रमुख लेखकों के विचारों को निम्नांकित पंक्तियों में दर्शाया जा रहा है।

1. वाटसन - "मनोविज्ञान, व्यवहार का निश्चित विज्ञान है"।

2. वुडवर्थ - "मनोविज्ञान, वातावरण के सन्दर्भ में व्यक्ति की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।"

3. स्किनर - "मनोविज्ञान, जीवन की सभी प्रकार की परिस्थितियों में प्राणी की प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। प्रक्रियाओं अथवा व्यवहार का तात्पर्य है - प्राणी की सब प्रकार की गतिविधियां, समायोजनायें, क्रियायें एवं अभिव्यक्तियाँ।"

वाटसन ने मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान कहा उसने मनोविज्ञान को वस्तु परक बनाने के लिए उत्तेजक, प्राणी तथा अनुक्रिया पर बल दिया ।

5. मनोविज्ञान व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन है

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की परिभाषा प्राणी की क्रियाओं के अध्ययन के रूप में की है। जिसमें अनुभूति और व्यवहार सम्मिलित है। मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के अनुसार मनोविज्ञान वातावरण से संबंधित व्यक्ति की क्रियाओं का विज्ञान है।

यहाँ क्रिया शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है। जिसमें न केवल शारीरिक क्रियायें जैसे चलना और बोलना सम्मिलित है, बल्कि ज्ञानात्मक क्रियायें जैसे देखना, सुनना, स्मरण करना, विचार करना तथा संवेगात्मक क्रियायें जैसे हसना, रोना, प्रसन्न या दुःखी होना आदि भी सम्मिलित है। इस प्रकार मनोविज्ञान के अध्ययन के अन्तर्गत, शारीरिक, मानसिक क्रियाओ, चेतन और अचेतन क्रियाओं का समावेश हो जाता है। अतः जब मनोविज्ञान क्रियाओं का अध्ययन करता है तब इसमें अनुभूति और व्यवहार दोनों का समावेश होता है क्यो कि इसमें वाह्य प्रदर्शित क्रिया जो व्यवहार में दिखायी देती है और आन्तरिक क्रिया जो अनुभूति से संबंधित है दोनों का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति के व्यवहार और क्रियाओं का अध्ययन जिस वातावरण में वह रहता है उससे उसे अलग करके नही किया जा सकता। प्रत्येक प्राणी किसी न किसी वातावरण में रहता है। वातारण में प्राकृतिक तथा सामाजिक दोनों प्रकार के वातावरण आते हैं। वातावरण में विद्यमान जिन वस्तुओं के प्रभाव के फलस्वरूप प्राणी क्रिया करता है उसे उत्तेजक कहते है और जो कार्य वह करता है या व्यवहार प्रदर्शित करता है उसे प्रतिक्रिया कहते है।

इस प्रकार वातावरण की उत्तेजनाओं के फलस्वरूप व्यक्ति कुछ प्रतिक्रियायें करता है जो वातावरण के प्रति उसके समायोजन की दशा निर्धारित करती है। इन्ही बातों का अध्ययन मनोविज्ञान करता है।

मनोविज्ञान की विभिनन परिभाषाओं को क्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ के शब्दों में कहा जा सकता है कि "सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया फिर उसने अपने मन का त्याग किया उसके बाद उसने चेतना का त्याग किया। अब वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है। "

मनोविज्ञान की परिभाषाएँ

1. **क्रो व क्रो :-** "मनोविज्ञान, मानव व्यवहार और मानव संबंधों का अध्ययन है।"

2. गैरिसन व अन्य :- "मनोविज्ञान का संबंध प्रत्यक्ष मानव व्यवहार से है।"

3. डॉ. माथुर :- "मनोविज्ञान मनुष्यों और जानवरों के व्यवहार का निरीक्षण करता है और ऐसा करने में वह विज्ञान की विधियों को काम में लाता है।"

मनोविज्ञान की प्राचीन तथा आधुनिक परिभाषा का अध्ययन करने के उपरान्त हम यह कह सकते है जेम्स ड्रेवर तथा स्किनर की दी हुई परिभाषायें श्रेष्ठ एवं पूर्ण है सभी परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए आधुनिक मनोविज्ञान की परिभाषा निम्नांकित शब्दों में की जा सकती है। "मनोविज्ञान जीव के पर्यावरण से संबंध, अनुभव तथा व्यवहार का अध्ययन करने वाला एवं वस्तु परक या विधायक विज्ञान है"।

2.2.5. मनोविज्ञान के लक्ष्य

मनोविज्ञान के मुख्य 4 लक्ष्य है:-

1. व्यवहार का मापन एवं वर्णन
2. व्यवहार की भविष्यवाणी करना
3. व्यवहार को नियंत्रित एवं परिवर्धित करना
4. व्यवहार की विवेचना करना

मापन एवं वर्णन

मनोविज्ञान व्यवहार के मापन हेतु विश्वसनीय तथा वैध उपकरणों तथा परीक्षणों का प्रयोग करता है। विश्वसनीयता का अर्थ है कि परीक्षण की पुनरावृत्ति पर भिन्न-भिन्न परिणाम न प्राप्त हो तथा वैधता का अर्थ है कि हम जिन गुणों या क्षमताओं का मापन कर रहे हो उन्ही का मापन हो किसी अन्य का नही भविष्यवाणी।

व्यवहार की भविष्यवाणी मापन पर निर्भर करती है सामान्तया मनोवैज्ञानिक पूर्व मापन को ही भविष्य में होने वाले व्यवहार का आधार बनाते है। किसी परिस्थिति विशेष पर अमुख व्यक्ति द्वारा किए गये व्यवहारों के आधार पर भविष्य में उसी परिस्थिति में उस व्यक्ति के व्यवहारों की भविष्यवाणी की जाती है।

नियंत्रण एवं परिवर्धन

मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करके अपेक्षित दिशा में उन व्यवहारों में परिवर्तन करता है। अनुचित व्यवहारों को नियंत्रित करने के उपायों की खोज करता है। मनोवैज्ञानिक शोधों के आधार पर व्यवहार के उत्पन्न होने वाले कारणों या कारकों का पता लगाकर अनुचित व्यवहारों को नियंत्रित कर उन्हे उचित दिशा प्रदान करता है। व्यवहारों की भविष्यवाणी के साथ-साथ व्यवहार में परिवर्तन या परिवर्धन करता है। व्यवहार में परिवर्तन करना मनोवैज्ञानिक का एक प्रमुख उद्देश्य है। व्यवहार में परिवर्तन के लिए उचित वातावरण को निश्चित करता है। इस हेतु मनोवैज्ञानिकों ने अनेक विधियों का खोज किया जिससे व्यवहारों को परिवर्तित एवं परिमार्जित किया जा सके । साथ ही साथ मनोविज्ञान उचित सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का निर्धारण भी करता है।

विवेचना

मनोविज्ञान का अन्तिम लक्ष्य व्यवहारों की व्याख्या करना है इसके लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की खोज की जाती है। इस सिद्वान्तो के आधार पर व्यवहार सम्बन्धी प्राप्त ज्ञान अथवा तथ्य की व्याख्या की जाती है। मनोवैज्ञानिक मानव स्वभाव तथा विश्व की जटिल समस्याओं की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। जिसका आधार मानव व्यवहार है। इसके आधार पर समाज की ज्वलत समस्याओं का निदान होता है।

सामाजिक मनोविज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सामाजिक मनोविज्ञान समाज में मनुष्य के व्यवहार के अध्ययन से संबंधित एक नवीन विज्ञान है । इसकी परिभाषा करना आसान नही है। क्यो कि इसकी प्रकृति एवं विषय क्षेत्र को लेकर इसके जन्म से लेकर अब-तक कई परिवर्तन हो चुके है। सामाजिक मनोविज्ञान को संक्षेप में समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान के मध्य का एक सीमा प्रदेश माना जाता है। समाज शास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों दोनों ने ही समाज मनोविज्ञान पर अपने अलग-अगल विषयों के उपविभाग के रूप में दावा किया है। मोटे तौर पर समाज मनोविज्ञान को उस विषय के रूप में निरूपित किया जा सकता है जो व्यक्ति और उसके समाज या समाज में व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन से संबंधित है। समाजिक मनोविज्ञान विशेष कर की वह शाखा है जो व्यक्ति की प्रतिक्रियायें एवं उन संबंधों का जो सामाजिक परिस्थियों में व्यक्तियों के एक दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होते है, अध्ययन करती है इस प्रकार इसे समाज में व्यक्ति के व्यवहार का विज्ञान या सामाजिक उद्दीपन की परिस्थति से संबंधित व्यक्ति का व्यवहार भी निरूपित किया गया है। अनेक विद्वानों ने सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सामाजिक मनोविज्ञान को विस्तृत रूप से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी कुछ परिभाषाओं को समझने का प्रयास करें।

मर्फी ने 'एक्सपरिमेंटल सोश्यल साइकोलॉजी' में लिखा है कि "समाजिक मनोविज्ञान उस कार्य प्रणाली का अध्ययन करता है जिसमें कि व्यक्ति किसी सामाजिक समूह का सदस्य बनता है और उसमें कार्य सम्पादन करता है ।"

एल.एल. बर्नाड ने 'एन साइक्लोपेडिया ऑफ सोसल साइंसेज' में इसे परिभाषित करते हुए इसे लिखा है कि "सामाजिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में उन वैयक्तित्व प्रत्युत्तरों का अध्ययन है, जो सामाजिक अथवा सामूहिक परिस्थितियों से उत्पन्न उत्तेजनाओ से परिसीमित होते है, समाजशास्त्र अथवा सामूहिक मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में यह सामूहिक प्रत्युत्तरों अथवा समूहों या अन्य समुदायों के व्यवहार का अध्ययन करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक मनोविज्ञान की व्याख्या मूलतः एक ऐसे विज्ञान के रूप में की जाती है जो कि व्यक्ति के मनोविज्ञान का अध्ययन उस समय करे जबकि वह स्वयं को एक सामाजिक स्थिति में जाता है। व्यक्तिगत व्यवहार उस समय जबकि व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ प्रतिक्रिया करता है, उसकी अपनी पद्वति पर निर्भर होगा, किंतु सामाजिक पर्यावरण, सामाजिक पृष्ठ भूमि एवं सामाजिक स्थितियां भी बहुत बडी सीमा तक उसके व्यवहार को निर्धारित करेगे। इस प्रकार इस बात की विवेचना के लिए कि व्यक्ति एक सामाजिक स्थिति में किस प्रकार का व्यवहार अपनायेगा, सामाजिक मनोविज्ञान का अध्ययन आवश्यक है।

2.2.6. सामाजिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में संबंध

सामाजिक मनोविज्ञान का सामान्य मनोविज्ञान के बाद यदि किसी विषय से घनिष्ठ संबंध है तो वह समाजशास्त्र है। सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन के बहुत से तत्व समाजशास्त्र में निहित है। ये दोनों ही विज्ञान मूलतः समाज में व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन करते है।

समाजशास्त्र सामान्यतः मानव समाज उसकी, रचना (उसे निर्मित करने वाले निर्णायक अंग) तथा उसकी कार्य प्रणालियों, जिसमें प्रत्येक अंग सबके लिए योगदान देता है का अध्ययन करता है सभी समाज शास्त्री सामान्यता इस बात पर सहमत होते है कि समाजशास्त्र व्यक्ति एवं समूहों के मध्य सामाजिक संबंधों और उस सामाजिक पद्वति से जिसमें कि व्यक्ति रहते है से संबंधित है।

इस प्रकार समाजशास्त्र सामाजिक संरचना, परिवर्तन एवं सांस्कृतिक संरचना के मूल सिद्वान्तो और नियमों की खोज करता है।

बी कुप्पुस्वामी ने लिखा है कि "समाजशास्त्र में सामाजिक संगठन के विकास तथा सिद्वान्तो का अध्ययन और साधारण रूप से समूह के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है, जो समूह में व्यक्ति के व्यवहार से भिन्न होता है। इसका संबंध समूह की रचना तथा उसके संगठन से है। इसके अध्ययन की इकाई समूह है। इसमें समूहो की उत्पत्ति और उनके विकास का, समूह अपने को जिन साधनों से बनाये रखता है उनका और समूह अनने सदस्यों को किस तरह अनुशासन में रखता हैं और किस तरह उसका पालन करवाता है, इसका अध्ययन किया जाता है। इससे इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि समूह और सामाजिक संस्थायें कैसे बदलती है।"

यद्यपि "समाजिक मनोविज्ञान" का संबंध व्यक्ति से है और इस बात से है कि वह दूसरे व्यक्तियों और उनके समूह के साथ कैसा व्यवहार करता है इसका क्षेत्र अधिक सीमित है इसमें केवल उन्ही मनोवैज्ञानिक कारको का अध्ययन किया जाता है जिनके आधार पर समूह बनते है।

सामाजिक मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के संबंध का उल्लेख करते हुए मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि "जब हम व्यक्तियों के व्यवहार की प्रकृति, व्यक्ति की चेतना की संरचना का जिसकी अभिव्यक्ति सामाजिक संबंधों से होती है, अध्ययन करते है तो हम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते है जब हम केवल संबंधों का अध्ययन करते है तो समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाते है दोनों विज्ञान अबिभाज्य वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं से संबंध रखते है। व्यक्तियों को उनके एक दूसरे के संबंधों से अलग करके नही समझा जा सकता। संबंधों को संबंध की इकाईयों या पदों से अलग करके नही समझा जा सकता।

अतः हम यह कह सकते है कि "समाज शास्त्रीय एवं मानव - वैज्ञानिक सामाजिक अन्तक्रिया के ताने-बाने का अध्ययन करता है। और सामाजिक मनोवैज्ञानिक इस बात का अध्ययन करता है कि व्यक्ति का सामाजीकरण कैसे होता है वह सामाजिक ताने-बाने का उपयोग और उसकी अभिवयक्ति कैसे करता है अपने

अन्दर जिस परिवार और समूह में वह पला है, और रहता है उसकी अभिवृत्तियों एवं विचारों का निर्माण कैसे करता है और बदले में सामाजिक ताने-बाने पर न्यूनाधिक सक्रियता से अपनी छाप कैसे डालता है।

बोगाडर्स ने भी लिखा है कि मै इन परस्पर व्यापी विषयों के बारे में सोचने को बाध्य हूॅ कि वे ज्ञान के भिन्न क्षेत्र नही है लेकिन वे भिन्न उपागम व बल के द्योतक है। यद्यपि वास्तविका में हमने उनके स्थिर तत्यों को कुछ सीमित व सुविधा जनक तौर पर स्वीकार कर लिया है, कालेज सूचिपत्र में विभागों द्वारा पाठ्यक्रम विभाजन की भांति उनमें भी विभाजन वास्तविकता की अपेक्षा, स्वेच्छाचारी व प्रशासनिक उपयोगिता का है।

इस प्रकार समाजशास्त्र एवं सामाजिक मनोविज्ञान में अनेक समताएं है सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समाजशास्त्र सामाजिक अन्तक्रियाओं के प्रतिरूप से संबंधित है जब कि सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक अन्तक्रिया की प्रक्रिया से संबंधित है।

इन दोनों विज्ञानों में घनिष्ठ संबंध के बावजूद सामाजिक मनोविज्ञान और समाजशास्त्र दोनों का अपना पृथक अस्तित्व है और दोनों में कुछ आधार भूत अंतर पाये जाते हैं, जैसे:-

1. समाजशास्त्र का अध्ययन विषय समाज है जबकि सामाजिक मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र व्यक्ति का व्यवहार है।
2. दोनों विज्ञानों के दृष्टिकोणों में भी अंतर है सामाजिक मनोविज्ञान के दृष्टिकोण आधार भूत रूप में मनोवैज्ञानिक है, जबकि समाजशास्त्र का दृष्टिकोण मूलक सामाजिक है। जहां समाजशास्त्र में घटनाओं के सामाजिक पक्ष को विशेष रूप से उजागर करने का प्रयत्न किया जाता है वहां सामाजिक मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर विशेष बल दिया जाता है। सामाजिक मनोविज्ञान इस बात का अध्ययन करता है कि मानसिक प्रक्रियाओं पर सामाजिक परिस्थितियों पर क्या प्रभाव पडता है।
3. समाजशास्त्र का अध्ययन सामाजिक अध्ययन क्षेत्र मनोविज्ञान की तुलना में कहीं अधिक व्यापक है, क्यो कि समाजशास्त्र का संबंध जहां सभी प्रकार की सामाजिक घटनाओं से है वहां सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत कुछ व्यक्ति के उन्ही व्यवहारों तक सीमित है जिनका कोई मनोवैज्ञानिक आधार होता है।
4. अन्य प्रमुख अंतर पद्वति अंतर सम्बन्धी है, सामाजिक मनोविज्ञान में प्रयोगात्मक, निरीक्षात्मक और तुलात्मक पद्वति का प्रयोग होता है जबकि समाजशास्त्र में संख्यायिकी पद्वति, सामाजिक सर्वेक्षण पद्वति, केस अध्ययन पद्वति आदि का प्रयोग होता है।

2.2.7. समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में संबंध

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित है। समाजिक मनोविज्ञान ने तो समाजशास्त्र और मनोविज्ञान को और भी निकट ला लिया है। मनोविज्ञान को मस्तिष्क या मानसिक प्रक्रियाओं का विज्ञान माना गया है जिस प्रकार समाजशास्त्र का क्रेन्द्रीय विषय समाज और सामाजिक व्यवस्था है उसी प्रकार मनोविज्ञान का क्रेन्द्रीय विषय व्यक्तित्व है। मनोविज्ञान की रूचि व्यक्ति में है न कि उसकी सामाजिक परिस्थियों में यह शास्त्र मानसिक तत्वों जैसे ध्यान, कल्पना, स्नायुप्रणाली बुद्वि, भावना, स्मृति मस्तिष्क की स्वाभाविकता एवं विकृति आदि का अध्ययन करता है। इस शास्त्र के द्वारा मनुष्य के मानिसक विचारों एवं अनुभवों का अध्ययन एवं विशलेषण किया जाता है। मनोविज्ञान प्रमुखतः व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है। इसमें उन मानसिक प्रक्रियाओ जैसे संवेगो, प्रेरकों, चालाको प्रत्यक्ष बोध, बोधिकरण सीखना आदि का अध्ययन किया जाता है। जो व्यक्ति का एक निश्चित प्रकार से व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित करती है। व्यक्ति में ये मानसिक प्रक्रिया संगठित रूप से एक निश्चित प्रतिमान का निर्माण करती है। जिसे व्यक्तित्व कहते है। व्यक्तित्व व्यवस्था का अध्ययन करना मनोविज्ञान का प्रमुख कार्य है। समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन है इसमें सामाजिक संबंधों, सामाजिक प्रक्रियाओ, समूहो, संस्थाओं, परंपराओं, सामाजिक मूल्यों, सामाजिक संरचना, सामाजिक परिवर्तन आदि का अध्ययन किया जाता है। इन्ही से मिलकर सामाजिक परिस्थिति बनती है। समाजशास्त्र व्यक्ति के बजाय प्रमुखतः इसी सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन करता है।

मनोविज्ञान और समाजशास्त्र का संबंध व्यक्ति और समाज के संबंध के साथ जुडा हुआ है व्यक्ति और समाज के संबंध के बारे में तीन प्रकार के दृष्टिकोण या मत पाये जाते है।

1. प्रथम मत को मानने वाले समाज के बजाय व्यक्ति को ज्यादा महत्व एवं प्राथमिकता देते है। फ्रायड तथा जे. एस. मिल इस मत के बनाने वालों में प्रमुख है। इन्होने व्यक्तित्व, इच्छाओ, संवेगो एवं उद्देश्यो को सामाजिक संबंधों एवं संस्थाओं का आधार माना है। समाज के बजाय व्यक्ति को प्रधानता देने के कारण ही ये विद्वान मनोविज्ञान को प्रमुख विज्ञान और समाजशास्त्र को उसकी एक शाखा मात्र है।
2. द्वितीय मत को मानने वाले व्यक्ति के बजाय समाज को अधिक महत्व एवं प्राथमिकता देते है इस मत के समर्थकों में अगस्त कॉम्ट एवं दुर्खीम आदि प्रमुख है इन्होने समाज का आधार व्यक्ति को न मानकर उनके बीच होने वाली अन्त क्रियाओं को माना है। इन्होने व्यक्ति से पृथक समाज की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया है। वे तो व्यक्ति को समाज की देन मात्र मानते है । समाज को प्रधानता देने के कारण ही ये मनोविज्ञान के बजाय समाजशास्त्र को प्रमुख विज्ञान मानते है। इसके अनुसार मनोविज्ञान समाजशास्त्र की एक शाखा माना है।

3. तृतीय मत के मानने वाले न तो व्यक्ति को और न ही समाज की एक दूसरे की तुलना में अधिक महत्व और प्राथमिकता देते है इस मत से संबंधित विद्वान जैसे मैक्स बेबर, गिन्स वर्ग, डिल्थे, मैकाइबर, आदि व्यक्ति और समाज को एक दूसरे का पूरक मानते है। जब व्यक्ति और समाज दोनों का ही समान महत्व है अर्थात दोनों में से कोई भी कम या अधिक महत्वपूर्ण नही है तो व्यक्ति से संबंधित शास्त्र मनोविज्ञान और समाज से संबंधित शास्त्र समाजशास्त्र में से किसी को भी एक दूसरे की तुलना में अधिक महत्व और प्राथमिकता नही दी जा सकती। वास्तव में ये दोनों शास्त्र एक दूसरे से कॉफी कुछ ग्रहण करते है। आधुनिक अधिकांश समाज वैज्ञानिक इसी तीसरे मत से सहमत है।

व्यक्ति के मानसिक विचार और अनुभव जिसका मनोविज्ञान में अध्ययन किया जाता है इस दृष्टि से सामाजिक है कि इन पर सामाजिक पर्यावरण एवं व्यक्ति की अंतरक्रियाओं का प्रभाव पडता है साथ ही विभिन्न व्यक्तिओं की अन्तः क्रियाये और सामाजिक पर्यावरण जिनका समाजशास्त्र में अध्ययन किया जाता है, मानसिक प्रक्रियाओं का परिणाम या फल है अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि मानसिक प्रक्रियायें सामाजिक परिस्थितयों से और सामाजिक परिस्थितियां मानसिक प्रक्रियाओं से कॉफी प्रभावित होती है। अतः समाजशास्त्र और मनोविज्ञान दोनों एक दूसरे से न केवल सम्बनिधत बल्कि एक दूसरे के लिए आवश्यक भी है। इन दोनेा विज्ञानों का संबंध उस समय और भी घनिष्ट मालुम पडता है। जब हम सामाजिक मनोविज्ञान की अध्ययन वस्तु पर विचार करते है।

क्लाइन वर्ग ने लिखा है कि, "सामाजिक मनोविज्ञान को उस विज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो व्यक्ति के व्यवहार का अन्य व्यक्तियों से संबंधित होने के रूप में अध्ययन करता है। यह सामाजिक मनोविज्ञान सामूहिक परिस्थितयों में व्यक्ति से संबंधित है। सामाजिक मनोविज्ञान में व्यक्ति मनोविज्ञान की अध्ययन वस्तु और समाज (समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु) दोनों की व्याख्या की जाती है। मनोंविज्ञान व सामाजिक मनोविज्ञान का केंद्रीय विषय मनुष्य है जो समाज विशेष का सदस्य है। अतः मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र तीनो ही घनिष्ट रूप से संबंधित है।

व्यक्ति के मानसिक तत्वों या लक्षणों की अवहेलना करके सामाजिक संबंधों एवं सामाजिक परिस्थतियों की अवहेलना करके वैयक्तित्व लक्षणों एवं व्यक्तित्व के विकास को भी ठीक से नही जाना जा सकता। व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण तथा उसके अनुभव एवं व्यवहार के प्रतिमान का आधार केवल उसकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमताये तथा आवश्यकतायें ही नही हो होकर सामाजिक परिस्थितियां भी है। अन्य लेागों के साथ अन्त क्रिया करते हुए ही व्यक्ति बहुत कुछ सीखता है, अनुभव प्राप्त करता है और व्यवहार करता है समाज, सभ्यता और सांस्कृति के बीच ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण और विकास होता है इस प्रकार वैयक्तित्व भावनाओं, उद्यवेगों, प्रवृत्तियों तथा अन्य मानसिक लक्षणों का अध्ययन मनोविज्ञान सामाजिक संबंधों एवं परिस्थितियों का अध्ययन सामाज शास्त्र तथा सामाजिक परिस्थितियों के

बीच व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानो, अनुभवों एवं व्यक्ति का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान करता है। स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान, व मनोविज्ञान व समाजशास्त्र को जोडने का कार्य करता है।

2.2.8. समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान में अंतर

यद्यपि समाजशास्त्र और मनोविज्ञान एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित है, परंतु इन दोनों में निम्नलिखित भिन्नताएं भी पायी जाती है।

1. मनोविज्ञान का संबंध व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओ से है, व्यक्तित्व व्यवस्था से है जबकि समाजशास्त्र का संबंध समाज सामाजिक प्रक्रियाओ एवं सामाजिक व्यवस्था से है। मनोविज्ञान में एक ही व्यक्ति की विभिनन क्रियाओं के अन्त क्रियाओं का अध्ययन किया जाता हैं
2. मनोविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र समाजशास्त्र की तुलना से सीमित है। मनोविज्ञान व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है यह व्यक्ति के जीवन के मानसिक पहलू से संबंधित है। समाजशास्त्र सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करता है व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों , सामाजिक अन्त क्रियाओ और मोटे रूप से सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का अध्ययन करता है। इस प्रकार मनोविज्ञान एक विशेष सामाजिक विज्ञान है। जबकि समाजशास्त्र एक सामान्य सामाजिक विज्ञान है ।
3. मनोविज्ञान और समाजशास्त्र में अध्ययन वस्तु के अलावा दृष्टिकोण का भी अंतर है। व्यक्ति के मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के कारण मनोविज्ञान का दृष्टिकोण वैयक्तित्व है। सम्पूर्ण समाज का अध्ययन करने के कारण समाजशास्त्र का दृष्टिकोण वैयक्तित्व न होकर सामाजिक है। मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार को व्यक्तित्व कारको के आधार पर जबकि समाजशास्त्र में सामाजिक कारको के आधार पर समझने का प्रयत्न किया जाता है।
4. इन दोनेा शास्त्रों की अध्ययन पद्वतियों में भी भिन्नता पायी जाती है। मनोविज्ञान में प्रमुखतः मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं निरीक्षण तथा प्रयोगात्मक पद्वति का प्रयोग विशेषतः किया जाता है, समाजशास्त्र में व्यक्तित्व जीवन, अध्ययन पद्धति, ऐतिहासिक पद्वति, संरचनात्मक प्रकार्यात्मक पद्वति, समाज निति सांख्यिकी पद्वति आदि का प्रमुखतः प्रयोग किया जाता है।

2.2.9. सारांश

समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध के विषय में आप प्रथम इकाई में समाजशास्त्र तथा मानव शास्त्र में संबंध पर अध्ययन किया होगा। जिसमें समाजशास्त्र की परिभाषओं में मतैक्य के अभाव को देखते हुए विद्वानों के विचारों को पांच भागों में विभाजित करके समझाने का प्रयास किया गया है उसी प्रकार विद्वानों में समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध पर भी वैचारिक एकता के आभाव में विद्वानों के दृष्ठिकोण को पांच भागों में विभाजित किया गया है जिसमें कुछ विचारक समाजशास्त्र को दूसरे

सामाजिक विज्ञानों से संबंध को स्वीकार किया है जबकि कुछ विचारक समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान माना है। जिसमें समाजशास्त्र के जनक आगस्त कॉम्ट का नाम उल्लेखनीय है। जबकि विट्रिश समाज शास्त्रीय हरबर्ट स्पेन्सर ने समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र विज्ञान नही मानकर विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का समन्वयय माना है। तीसरे अमेरिकन समाज शास्त्रीय वार्ड ने समाजशास्त्र को विभिन्न सामाजिक विज्ञानों की निर्मायक इकाइयां माना है जबकि गिडिग्स ने समाजशास्त्र का अलग दृष्टिकोण एवं एक अलग विषय सामग्री तथा अध्ययन क्षेत्र माना है जब सोरोकिन ने समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के बीच संबंध को स्वीकार किया है। या बताया है कि ये एक दूसरे से कॉफी कुछ लेते देते है अन्त में हम **बार्न्स एवं बेकर** के इस कथन से संबंधों को और स्पष्ट कर सकते है।" समाजशास्त्र न तो अन्य सामाजिक विज्ञानों की गृहस्वामिनी है और न ही उनकी दासी, बल्कि केवल उनकी बहिन है"। अब हम समाजशास्त्र का मनोविज्ञान से संबंध पर दृष्टि डालते है समाजशास्त्र के अन्तर्गत हम सम्पूर्ण समाज को एक इकाई मानकर उसका अध्ययन करते है। तथा सामजिक व्यवस्था के लिए रीति-रिवाज, मूल्य, परंपरा, धर्म, काननू, को एक आवश्यक तत्व मानकर इनको पीढी दर पीढी हस्तान्तरित करने का प्रयास किया जाता है जिससे सामाजिक सुव्यवस्था मजबूत रहे वही मनोविज्ञान व्यक्ति के भावनाओं, संवेगों, अनुभूतियों तथा रूचियों का अध्ययन कर सामाजिक परिवर्तन को दिशा देता है तथा परंपराओं तथा कानूनों में आवश्यक संशोधन पर विद्वानों को चिंतन करने एवं सामाजिक व्यवस्था के लिए क्या उपयुक्त है इसके बारे में अध्ययन करता है।

2.2.10. बोध प्रश्न

2.2.10.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. समाजशास्त्र का मनोविज्ञान से अर्थ स्पष्ट कीजिए तथा दोनों में अंतर कीजिए?
2. समाजिक मनोविज्ञान एवं मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए दोनों में संबंध बताइए?
3. समाजशास्त्र का अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंध पर विद्वानों के मत को स्पष्ट कीजिए?
4. मनोविज्ञान के उद्भव कों स्पष्ट कीजिए?

2.2.10. 2. लघुउत्तरीय प्रश्न

1. मनोविज्ञान की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. सामाजिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में अंतर स्पष्ट कीजिए?
3. समाजशास्त्र का अर्थ सामाजिक विज्ञानों से संबंध पर कॉम्ट तथा स्पेन्सर के विचारों को व्यक्त कीजिए?
4. मनोविज्ञान मन का विज्ञान है, स्पष्ट कीजिए?

2.2.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सारस्वत, मालती. (2010). *शिक्षा मनोविज्ञान*. लखनऊ: आलोक प्रकाशन.
2. पाठक, पी. डी. (2010). *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
3. प्रकाश, ज्ञानानंद. (2002). *शिक्षा मनोविज्ञान*. नई दिल्ली: कान्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी.
4. लवनिया, एम.एम. (1987). *सामाजिक मनोविज्ञान*. नई दिल्ली: रिसर्च पब्लिकेशन.
9. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.
10. कृष्ण, गोपाल. (1983). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन.

इकाई-3 : समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

2.3.1. उद्देश्य
2.3.2. प्रस्तावना
2.3.3. अर्थशास्त्र के विकास का चरण
2.3.4. अर्थशास्त्र की विषय सामग्री
2.3.5. समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास
2.3.6. भारत में समाजशास्त्र का विकास
2.3.7. समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र से संबंध
2.3.8. समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में अंतर
2.3.9. सारांश
2.3.10. बोधप्रश्न
2.3.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

2.3.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

1. अर्थ शास्त्र के विषय के उत्पत्ति के बारे में समझ सकेंगे।
2. अर्थ शास्त्र विषय के विषय सामग्री को समझ सकेंगे।
3. समाजशास्त्र विषय की उत्पत्ति को संक्षेप में समझ सकेंगे।
4. समाजशास्त्र का अर्थ शास्त्र से संबंध एवं अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

2.3.2. प्रस्तावना

समाजशास्त्र समाज का अध्ययन करने वाला एक ऐसा विज्ञान है जो समाज का अध्ययन करता है। जिससे सामाजिक व्यवस्था तथा समाज का विकास, समय, काल, तथा परिस्थति के अनुसार तीव्र गति से हो। सामाजिक वयवस्था के लिए भारत वर्ष में आश्रम व्यवस्था, वर्णव्यवस्था, पुरूषार्थ, धर्म, कर्म, तथा पुर्नजन्म, जाति आदि पर विशेष ध्यान दिया गया । समाज के संगठन एवं विकास के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। लेकिन अर्थ का उपयोग व्यक्ति सही कार्यो के लिए एवं उत्पादन को बढाने में प्रयोग करे

इसका अध्ययन हम अर्थ शास्त्र विषय के अन्तर्गत करते है क्योंकि अर्थ शास्त्र धन का विज्ञान है। दोनो ही शास्त्रों में घनिष्ठ संबंध है। हम इस इकाई में समाजशास्त्र का अर्थ शास्त्र से संबंध पर संक्षिप्त विवेचना करेगें।

2.3.3. अर्थशास्त्र के विकास का चरण

प्रथम चरण :- आर्थिक विकास के प्रथम चरण को हम 'बर्बर युग' भी कह सकते है। इस युग का मानव जंगली दशा में एक स्थान से दूसरे स्थान में पेट भरने के लिए आता जाता रहता था। उस समय की सामाजिक व्यवस्था में भी आर्थिक समस्यायें थी। उस आदिम युग की आर्थिक समस्यायें वर्तमान के समान चक्रीय समस्या नही थी। पर उस युग में अपनी परम्पराओं व सुविधाओं के अनुसार इन समस्याओं को हल कर लिया जाता था। उस समय जो समाज का मुखिया होता था वह अपने कबीले की सुरक्षा तथा शक्ति व्यवस्था के लिए कबीले के सदस्यों से उन वस्तुओं व सेवाओ की मांग करता था जो व्यवस्था के लिए आवश्यक समझी जाती थी। आज वर्तमान समय की सरकारों का भी यही उद्देश्य है। भले ही प्राचीन व्यवस्था से वर्तमान व्यवस्था अधिक व्यवस्थित है।

द्वितीय चरण:- द्वितीय चरण में पहुँचने में मानव को अनेक संघर्षो का सामना करना पडा। अब मानव समाज शिक्षित व सभ्य हो चुका था। धर्म के प्रति लोगों में आस्थायें बढने लगी । इस युग में आर्थिक क्रियाओं का संबंध धर्म के साथ जोडा जाने लगा था। इस युग के विचारक धर्मनुसार आर्थिक आचरण को स्वीकार करने तथा धर्म की रक्षा के लिए अर्थ संग्रह को मान्यता देने लगे थे।

तृतीय चरण:- आर्थिक विकास के तृतीय चरण में प्रथम एवं द्वितीय चरण की अपेक्षा बडे भारी आर्थिक परिवर्तन देखने को मिलते है। तृतीय चरण में आर्थिक क्रियाओं का संबंध राजनीति शास्त्र के साथ जोडा जाने लगा था। यूनानी एवं रोमन दास समाजो का स्थान सामन्तवादी समाज ने लिया था। इस युग में नये राज्यों का जन्म व पुराने राज्यों का विकास होने लगा था। इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप अर्थ व्यस्था को राज्य की नीति के अनुरूप चलाने की व्यस्था की जाने लगी थी।

चतुर्थ चरण:- आर्थिक विकास के चतुर्थ चरण में अर्थशास्त्र ने धर्म तथा राजनीति से अपना संबंध विच्छेद कर लिया क्यो कि तब तक अर्थशास्त्र एक स्वत्रंत विषय के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। पन्द्रहवी शताब्दी के आस-पास के अनेक विद्वानों के द्वारा स्वतंत्र रूप में अर्थशास्त्र का चिंतन किया जाने लगा था ।

पंचम चरण:- अर्थशास्त्र के विकास के पांचवे चरण को हम वैज्ञानिक आर्थिक क्रियाओं के नाम से सम्बोधित कर सकते है। इस युग में डेस्कार्टे, काण्ट, लॉक आदि दार्शनिकों ने प्रकृति की जो सारगर्भित व्याख्या की थी उससे मानव समाज के व्यवहार पर नई छाप पडी। परिणाम स्वरूप अर्थशास्त्र को भी एक नयी दिशा मिलने लगी। दार्शनिकों के द्वारा उस समय जो नये विचार दिये जा रहे थे उन विचारों ने इस बात का संकेत दे दिया था कि आर्थिक व्यवहार का भी वैज्ञानिक आधार हो सकता है । इस बात का सूत्रपात्र प्रथम बार विलियम पैटी रिचर्ड कैण्टीलॉन तथा फ्रैरकोई क्वेने आदि ने किया था। इन सब प्रयत्नों व संघर्षो के बाद

1776 में एडमस्मिथ ने राष्ट्रों की सम्पत्ति के स्वभाव और कारणों की खोज नामक पुस्तक की रचना करके अर्थ शास्त्र को व्यवस्थित व वैज्ञानिक रूप प्रदान कर दिया।

2.3.4. अर्थशास्त्र की विषय सामग्री

राबिन्स:-

का मत है कि अर्थशास्त्र की विषय सामग्री के अन्तर्गत आर्थिक समस्या अर्थात मानव व्यवहार के चुनाव की समस्या का अध्ययन किया जाता है। स्पष्टतः राबिन्स ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र को बहुत व्यापक बना दिया है।

जे.के. मेहता:-

का मत है कि अर्थशास्त्र की विषय सामग्री वह मानव व्यवहार है जो उसके आवश्यकता विहीनता की स्थिति तक पहुंचाने में सहायक है।

1. उपभोग

उपभोग अर्थशास्त्र का प्रमुख विभाग है जिसके अन्तर्गत मानवीय आवश्यकताओं तथा उसकी संतुष्टि के लिए किये गये प्रयासों का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य की अनेक आवश्यकता होती है तथा उन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वह प्रयासरत रहता है और इस प्रक्रिया में विभिन्न वस्तुओं तथा सेवाओं का उपयोग करता है। उपयोग में केवल आवश्यकता की संतुष्टि निहित होती है। इस विभाग के अन्तर्गत उपभोक्ताओं की समस्या तथा उसके व्यवहार आवश्यकताओं की प्रकृति, उपयोगिता तथा उससे सम्बन्धित मांग तथा मांग का नियम, अनधिमान, वर्क, विश्लेषण आदि अनेक बातों का अध्ययन किया जाता है।

2. उत्पादन

उत्पादन अर्थशास्त्र का दूसरा प्रमुख विभाग है। उत्पादन का तात्पर्य उपयोगिता के सृजन से है। अर्थात व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति हेतु किसी वस्तु की उपयोगिता में वृद्धि करने का कार्य उत्पादन है। वस्तु को उपयोगिता में वृद्धि अनेक रीतियों द्वारा की जा सकती है। जैसे वस्तु का स्वरूप बदल कर, स्थान का परिवर्तन करके, उपयोग का समय बदलकर आदि। उत्पादन में हम इस बात का अध्ययन करते है कि धन (या वस्तु) का उत्पादन कैसे, किस प्रकार किन नियमों के अन्तर्गत तथा किन-2 साधनों के सहयोग से होता है और उत्पादनकर्ता को किन समस्याओं का सामना करना पडता है। इस विभाग के अन्तर्गत उत्पादन के विभिन्न साधनों, भूमि, श्रमपूंजी, साहस तथा संगठन की विशेषताओं व समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।

3. विनिमय

विनिमय से तात्पर्य उस लेन-देन से होता है जो स्वतंत्र, ऐच्छिक तथा वैधानिक हो जब दो व्यक्ति स्वेच्छा से किन्ही दो वस्तुओ या सेवाओं को आपस में अदला-बदली करते है तो यह कार्य विनिमय का कार्य कहलाता है। प्रारम्भ में विनिमय का कार्य वस्तुओं का आदान-प्रदान करके किया जाता था परन्तु मुद्रा के

आविष्कार ने वस्तु विनिमय प्रथा को लगभग समाप्त कर दिया। अब विनिमय का पूरा कार्य मुद्रा की सहायता से होने लगा है।

4. वितरण

किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिए उत्पादन के विभिन्न साधनों का सहयोग लिया जाता है तथा विभिन्न व्यक्ति मिलकर एक ही वस्तु का उत्पादन करते है। इस प्रकार के संयुक्त उत्पादन प्रणाली का उदाहरण फैक्ट्रियां या कारखाने है जहां बहुत से व्यक्ति या साधन मिलकर उत्पादन का कार्य करते है। अब यह प्रश्न उठता है कि संयुक्त रूप से प्राप्त उत्पादन या आय का बटंवारा किस प्रकार किया जाय। इस प्रकार साधनों के बीच बटवारें की समस्या जन्म लेती है। इस समस्या के समाधान के लिए वितरण विभाग का सहारा लिया जाता है वितरण में संयुक्त उत्पादन के सम्बन्धित नियमों सिद्वान्तो तथा समस्या का अध्ययन किया जाता है।

5. राजस्व एवं सार्वजनिक वित्त

राजस्व आधुनिक समय में सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग है इसके अन्तर्गत सार्वजनिक व्यय, सार्वजनिक ऋण बचत, घाटे की वित्त व्यवस्था, राजकोषीय नीति से सम्बन्धित समस्त बातो का अध्ययन किया जाता है।

2.3.5. समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

समाज शास्त्र मूल रूप से सामाजिक संबंधों और सामाजिक ढांचे का अध्ययन करने वाला विज्ञान है इस अर्थ में इसके आधुनिक स्वरूप का इतिहास भले ही अधिक पुराना न हो लेकिन इस मूल रूप का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है।

पश्चिमी समाजों में समाजशास्त्र

समाज शास्त्र के विकास की प्रथम अवस्था पश्चिमी समाज के क्रमबद्ध और सुनिश्चित अध्ययन में प्रथम स्थान यूनानी विचारको का है। आज से लगभग काफी वर्ष पहले सामाजिक संबंधों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। प्लेटों ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक और अरस्तू को पोल्टिक्स ने अनेक सामाजिक घटनाओं, प्रथाओं, स्त्रिओं की स्थिति, पारिवारिक संबंधों तथा सामाजिक संहिताओं का वर्णन किया था। इन विज्ञानों के विचारों में स्पष्टता का आभाव अवश्य था ये एक ओर समाज, समुदाय तथा राज्य में और दूसरी ओर दर्शन एवं विज्ञान में भेद नही कर पायें। इस समय समाज में धर्म और जादू टोने का विशेष प्रभाव था इसलिए उस समय सामजिक घटनाओं का अध्ययन मुख्यतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नही किया जा सका।

समाजशास्त्र के विकास की द्वितीय अवस्था

छठी शताब्दी से चौदहवी शताब्दी तक का काल समाज शास्त्र के विकास की द्वितीय अवस्था मानी जाती है इस काल में कॉफी लम्बे समय तक सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए धर्म और दर्शन का सहारा लिया जाता रहा है। तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध में सामाजिक घटनाओ को समझने में तर्क को भी

स्थान दिया जाने लगा इसी काल में समाज को परिवर्तनशील माना जाने लगा और साथ ही इस परिवर्तन के पीछे कुछ निश्चित नियम, सामजिक क्रियाओं एवं शक्तियां कार्य करती है।

समाजशास्त्र के विकास की तृतीय अवस्था

इस अवस्था का प्रारम्भ पन्द्रहवी शताब्दी से माना जाता है। इसी समय हाब्स, लाक तथा रूसों के द्वारा प्रतिपादित सामाजिक समझौते का सिद्वान्त आया। 17 वीं शताब्दी में जेम्स हेरिगटन का नाम प्रमुख रहा है। जिन्होने इतिहास की आर्थिक व्याख्या से सम्बन्धित एक व्यवस्थित सिद्वान्त का प्रतिपादन किया।

समाजशास्त्र के विकास की चतुर्थ अवस्था

19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्व में अधिकांश अर्थशास्त्रियों, दार्शिनिकों और इतिहास वेत्ताओं ने आर्थिक परिस्थियों पर ही सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित करके सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया। इन विद्वानों में एडम मूलर, मॉडरर, अरनाल्ड हसलर, न्युमन, स्टर्न फील्ड, रोसर, हिल्डे ब्रान्ड, लीप्ले का नाम प्रमुख है। आगस्त कॉम्ट ने 1838 में समाजशास्त्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया।

2.3.6. भारत में समाजशास्त्र का विकास

भारत में समाजशास्त्र नाम नया है। परन्तु इसकी नींव अति प्राचीन है। भारत के प्राचीन समाज शास्त्री है। मनु, याज्ञवल्वय, भृगु तथा चाणक्य आदि इन्होने समाज के विभिन्न पक्षों के संबंध में न केवल अपने विचारों को दिया बल्कि उन्हे एक ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत किया है। प्राचीन काल के ग्रंथों से पता चलता है कि उस समय की व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच सुन्दर समन्वय का एक उत्तम उदाहरण है। उस समय के चिंतक इस बात से परिचित थे कि केवल भौतिक एवं व्यक्ति वादिता के आधार पर व्यक्ति के जीवन को पूर्णतया प्रदान नही की जा सकती इसलिए उन्होने अध्यात्मवाद का सहारा लिया, धर्म के आधार पर व्यक्ति के आचारण को निश्चित करने का प्रयत्न किया। प्राचीन ग्रंथों का समाज शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन करने की दिशा में प्रो. विनय कुमार सरकार, प्रो. वृजेन्द्र नाथ शील, डॉ. भगवानदास एवं प्रो. केवल मोटवानी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2.3.7. समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र में संबंध

समाजशास्त्र का अर्थशास्त्र में संबंध आपस में बहुत ही घनिष्ट रहे है जिसके मूल में अगर हम जाये तो समाजशास्त्र अपनी प्रारम्भिक अवस्था की शुरूवात अर्थशास्त्र से ही की है। क्यों की प्रारम्भ में भारत में सन् 1921 में अर्थशास्त्र विभाग के अन्तर्गत समाजशास्त्र विषय को मान्यता दी गयी। तथा प्रथम भारतीय विद्वान डॉ. राधा कमल मुखर्जी को समाजशास्त्र का प्रो. नियुक्त किया गया। 1928 में मैसूर विश्व विद्यालय में भी मती इरावती कार्वे की अध्यक्षता में समाजशास्त्र विभाग सन् 1939 में स्थापित हुआ। समाजशास्त्र की स्थापना इन सभी विश्वविद्यालयों में एक पृथक विषय के रूप में न होकर इसे अर्थशास्त्र, मानव शास्त्र तथा

सामाजिक दर्शन के साथ ही जोडे रखा गया था। यही कारण है कि भारत में जिन विद्वानों ने समाजशास्त्रीय विचारधारा को लेकर आगे बढे तथा इसे समृद्व बनाने के व्यापक प्रयत्न किये वे मूल रूप से अर्थशास्त्रीय तथा मानव शास्त्रीय थे अतः समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र एक दूसरे से जुडे हुए है।

यदि हम अर्थशास्त्र की परिभाषा करे तो हम कह सकते है कि अर्थशास्त्र धन का विज्ञान है। प्रसिद्व अर्थशास्त्र प्रो. मार्शल ने अर्थ शास्त्र की परिभाषा करते हुए लिखा है 'अर्थ शास्त्र मनुष्य के जीवन की साधारण व्यापार सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन है अर्थशास्त्र यह मालूम करता है कि मनुष्य किस प्रकार धन कमाता है और किस प्रकार उसे खर्च करता है इस प्रकार यह एक ओर सम्पत्ति का अध्ययन है और दूसरी ओर अधिक महत्वपूर्ण है, मनुष्य के अध्ययन का एक भाग है,' इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं का समग्र रूप से अध्ययन करता है। इस रूप में दोनो विज्ञानों में घनिष्ट रूप से संबंध होना स्वाभाविक है। क्यों कि कोई भी आर्थिक संबंध सामाजिक संबंधों व दशाओं से अलग नही है उदाहरण यदि मांग के नियम को लिया जाए तो यह स्पष्ट होगा कि इस नियम के पीछे अनेक सामाजिक तथ्य कार्य करते है। जैसे किसी वस्तु की मांग इस बात पर आधारित होगी कि वह वस्तु विलासित, सूख कर या आवश्यकता, कौन से वर्ग में आती है, प्रथाओं व फैशन से उसका क्या संबंध है आदि इन सभी बातो का अध्ययन समाजशास्त्र करता है मैकाइवर ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'इस प्रकार आर्थिक घटनायें सदैव सामाजिक आवश्यकताओं और क्रियाओं के समस्त स्वरूपों द्वारा निश्चित होती है।' अर्थशास्त्र के अन्तर्गत मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं या आर्थिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है अर्थशास्त्र को वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन एवं वितरण का अध्ययन भी कहा गया है। इस शास्त्र के द्वारा धन के उत्पादन एवं वितरण और उपभोग के सम्बन्धित व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है धन आवश्यकताओं या ईच्छाओं की पूर्ति का प्रमुख साधन है समाजशास्त्र के अन्तर्गत मनुष्य की सामाजिक क्रियाओं या गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है यह शास्त्र प्रथा, परम्परा, रूढि, संस्था, संस्कृति, सामाजिक संबंधों के विभिन्न स्वरूपों, सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक संरचनाओं में विशेष रूप से रूचि रखता है। समाजशास्त्र समग्र रूप से मानवीय व्यवहार एवं समाज को समझने का प्रयास करता है।

समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र का पारस्परिक संबंध इस तथ्य से भी समझा जा सकता है कि एक ओर समाज की सभी परंपराएँ, प्रथाएँ, जनरीतियां, विश्वास और नैतिकतायें आर्थिक संबंधों की प्रकृति तथा आर्थिक व्यवस्था के स्वरूप का निर्धारण करती है तथा दूसरी ओर समाज की आर्थिक व्यवस्था, सामाजिक संगठन न्याय व्यवस्था और सामाजिक व्यवहारों की प्रकृति को प्रभावित करती है शायद ही ऐसा कोई समय मिले जहां आर्थिक दशायें सामाजिक दशाओं को और सामाजिक दशायें, आर्थिक दशाओं को प्रभावित न करती हो कभी कभी तो एक ही समस्या दोनो विज्ञान की समान समस्या प्रतीत होती है श्रम की दशायें

औद्योगिक उन्नति, श्रम कल्याण, ग्रामीण पुनः निर्माण तथा कितने ही इसी प्रकार के विषय है जिनके बारे में यह निर्णय करना लगभग असम्भव सा है इनका अध्ययन किस विज्ञान में किया जाना चाहिए।

किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था को समझने के लिए उसकी सामाजिक व्यवस्था या पद्वति का ज्ञान होना भी अति आवश्यक है। इस तथ्य कें महत्व पर बल देते हुए अर्थशास्त्री पी0 एच0 बिकस्टीड ने कहा है कि अर्थशास्त्र समाजशास्त्र की गृहस्वामिनी होनी चाहिए अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र का संबंध भी इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि अब बहुत से समाज शास्त्रीय अध्ययन आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए होनें लगे है। उदाहरण के लिए श्रम विभाजन, औद्योगिक संगठन व्यवसायिक गतिशीलता आदि इसी प्रकार के विषय है बेबर ने तो धर्म (एक सामाजिक तथ्य) और पूंजीवाद (एक आर्थिक तथ्य) के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करके समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के बीच की समस्त पृथकता को समाप्त कर दिया है। इसी प्रकार मार्क्स की विवेचना में सामाजिक और आर्थिक कारकों का एक सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। इस आधार पर बाटोमोर ने यह निष्कर्ष दिया है कि अब अधिक समय तक समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के घनिष्ट संबंध के बारे में कोई संदेह नही रहेगा..... अनेक अर्थशास्त्रियों ने समाजशास्त्र के सामान्य सिद्वान्तो को उपयोग में लाकर इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है। समाजशास्त्र में एक नयी शाखा का विकास हुआ है जिसे हम आर्थिक जीवन का समाजशास्त्र कहते है इससें भी समाज शास्त्र तथा अर्थशास्त्र का घनिष्ट संबंध स्पष्ट हो जाता है।

2.3.8. समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र में अंतर

उपर्युक्त विवरण से हमे यह नही समझ लेना चाहिए कि समाज शास्त्र और अर्थशास्त्र में किसी प्रकार कोई भेद या अंतर नही है। इन दोनो में निम्नलिखित अंतर पाये जाते है ।

1. समाजशास्त्र में सामाजिक संबंधों का जबकि अर्थशास्त्र में आर्थिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है।
2. समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन के सभी पक्षों का जबकि अर्थशास्त्र में मानव जीवन के केवल आर्थिक पक्षों का अध्ययन किया जाता है।
3. समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है जबकि अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण आर्थिक और तुलानात्मक दृष्टि से सीमित है।
4. समाजशास्त्र का दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय और कॉफी व्यापक है जबकि अर्थशास्त्र का दृष्टिकोण आर्थिक और तुलानात्मक दृष्टि से सीमित है।
5. समाजशास्त्र एक व्यवहारात्मक विज्ञान है अर्थात इसमें विभिन्न समूहो से सम्बन्धित व्यक्तियों की अर्न्तक्रियाओं के अध्ययन पर विशेष जोर दिया जाता है। अर्थशास्त्र एक व्यवहारात्मक विज्ञान नही है इसमें मनुष्य के आर्थिक व्यवहार के अध्ययन पर अभी तक ज्यादा ध्यान नही दिया गया है।

अबकुछ अर्थशास्त्रीय आर्थिक क्रियाओं का संस्थात्मक संदर्भ में अध्ययन करने में रूचि लेने लगे है।

6. समाजशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण में भी भिन्नता दिखायी देती है जहां एक समाज शास्त्रीय सभी सामाजिक घटनाओं या सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण सामाजिक कारकों में देखता है वही पर एक अर्थशास्त्रीय इसका विश्लेषण आर्थिक कारकों के सन्दर्भ में करता है।

2.3.9. सारांश

इस इकाई में आपने देखा कि भारत में समाजशास्त्र विषय का अध्ययन सबसे पहले अर्थशास्त्र विभाग के अन्तर्गत ही प्रारम्भ किया गया बाद में अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र दोनों का अध्ययन अलग-2 विभाग के अन्तर्गत किया जाने लगा। लेकिन अर्थशास्त्र का समाजशास्त्र से संबंध बहुत गहरा है क्यो कि बिना धन के किसी भी समाज के विकास की कल्पना नही की जा सकती तथा विकास धर्म, संस्कृति तथा मूल्य को लेकर आगे बढे इसके लिए संस्कृति युक्त समाज का होना अति आवश्यक है। इसलिए यहॉ अर्थशास्त्र की विषय सामग्री पर संक्षेप में चर्चा की गयी है क्यों कि उत्पादन उपभोग विनियम ये समाजशास्त्र की प्रकृति पर निर्भर करता है तथा कार्यो का वितरण समाज की शिक्षा, कला एवं विभिन्न क्षेत्रों में निपुणता को देखकर किया जाता है। राजस्व समाज को आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता, सार्वजनिक ऋण तथा सार्वजनिक आय का सही दिशा में व्यय करके समाज को आर्थिक रूप मनोवैज्ञानिक सुरक्षा प्रदान करता है। अतः समाज के लिए अर्थ भी नितान्त आवश्यक है।

2.3.10. बोधप्रश्न

2.3.10.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अर्थ शास्त्र के विकास क्रम को स्पष्ट कीजिए ?
2. अर्थ शास्त्र को परिभाषित करते हुए इसके विषय सामग्री पर प्रकाश डालिए ?
3. समाजशास्त्र का अर्थशास्त्र से संबंध स्पष्ट कीजिए तथा दोनो में अंतर बताइये ?
4. समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डालिए ?

2.3.10.2. लघुउत्तरीय प्रश्न

1. भारत में समाजशास्त्र के विकास एवं अध्ययन पर प्रकाश डालिए ?
2. समाजशास्त्र का अर्थशास्त्र से किन बिन्दुओं पर समानता है स्पष्ट कीजिए ?
3. अर्थशास्त्र के विकास क्रम में से किन्ही दो को स्पष्ट कीजिए ?
4. उपभोग तथा उत्पादन में संबंध स्पष्ट कीजए ?

2.3.11. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पन्त, जे.सी. (2000). *अर्थशास्त्र के सिद्धांत.* आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.
2. मिश्र, प्रकाश. जय. (2003). *अर्थशास्त्र.* वाराणसी: मिश्रा ट्रेडिग कार्पोरेशन.
3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2008) *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
4. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. अग्रवाल, भरत. (2002) *समाजशास्त्र की मूल अवधारणाएं.* दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
5. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.
6. कृष्ण, गोपाल. (1983). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल प्रकाशन

11. महाजन, धर्मवीर. एवं महाजन, कमलेश. (2015). *समाजशास्त्र.* दिल्ली: विवेक प्रकाशन

इकाई-4 समाजशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

2.4.1. उद्देश्य

2.4.2. प्रस्तावना

2.4.3. राजनीति विज्ञान के लिए समाजशास्त्र की उपयोगिता

2.4.4. समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में संबंध

2.4.5. समाजशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र में अंतर

2.4.6. सारांश

2.4.7. निष्कर्ष

2.4.8. अभ्यास प्रश्न

2.4.9. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.4.1. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- राजनीति विज्ञान के लिए समाज शास्त्र का महत्व समझ सकेगे।
- समाजशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के संबंध को स्पष्ट कर सकेगे।
- समाजशास्त्र तथा राजनीति में अंतर स्पष्ट कर सकेगे।
- सभी सामाजिक विज्ञान एक दूसरे के पूरक है।

2.4.2. प्रस्तावना

समाजशास्त्र एक ऐसा सामाजिक विज्ञान है जिसमें सम्पूर्ण समाज के संगठन एवं व्यवस्था पर गहराई से चिंतन एवं विचार-विमर्श करके सिद्धांतों का निर्माण किया जाता है। जिस समाज का जैसा चिंतन होगा उस समाज की सामाजिक संरचना का निर्माण उसी अनुरूप होता है। समाज शास्त्र तथा राजनीति शास्त्र दोनो का आपस में बहुत ही गहरा संबंध है। राजनीति शास्त्र के द्वारा जहां मानव जीवन के राजनीतिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है। वही समाज शास्त्र के अन्तर्गत उसी राजनीति व्यवहार से उत्पन्न क्रिया तथा समाजिक क्रिया का गहन अध्ययन किया जाता है।

2.4.3. राजनीतिशास्त्र के लिए समाज शास्त्र की उपयोगिता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, मनुष्य की इस सामाजिकता का अध्ययन करने वाली विधा को समाज शास्त्र की संज्ञा दी गयी है। समाज शास्त्र वह शास्त्र है जो समाज के संगठन , स्वरूप तथा जीवन का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। प्राचीन तथा अर्वाचीन सामाजिक व्यवस्था, परिवार, जाति, राज्य और विभिन्न मानव समुदायों का विकास कला, साहित्य, धर्म, भाषा और संस्कृति का अभ्युदय सामाजिक सुरक्षा और श्रम कल्याण सम्बन्धी विषय समाज शास्त्र के अध्ययन क्षेत्र में आते है।

1. **राजनीतिशास्त्र का चिंतक सामजिक तत्वों से प्रभावित होती है -** सामाज शास्त्र मानव जीवन के वंशीय, जातिगत धार्मिक और राजनीतिक पहलुओं की विवेचना करता है। इसीलिए राजनीतिक शास्त्र का विज्ञान समाजशास्त्र की उपेक्षा नही कर सकता। राज्य अथवा सरकार का समाजशास्त्र से पृथक कोई अस्तित्व नही है। समाजशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान के परस्पर घनिष्ठ संबंध को स्पष्ट करते हुए **गिडिग्स** ने तो यहां तक कह डाला है कि ''समाजशास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धांतों की शिक्षा दिये बिना यदि राज्य सम्बन्धी सिद्वान्तो का ज्ञान कराया जाये तो वह ऐसा ही होगा जैसा कि न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण के सिद्वान्तो को जाने बिना नक्षत्र-विद्या और उष्मगतिकीय विद्या के सिद्धांतों का अध्ययन करना''। समाजशास्त्र वह बताता है कि राज्य संस्था का विकास मानव की कुछ नैर्सगिक प्रवृत्तियों का परिणाम है। इन प्रवृत्तियों को बल मुख्यतः इन तत्वों से मिला है रक्त संबंध, धार्मिक विश्वासों की एकता, आर्थिक आवश्यकताएं तथा युद्व और विजय । समाज शास्त्र के अध्ययन से यह भी पता चलता है कि प्रारम्भ में राज्यो का स्वरूप अत्यन्त सरल था किंतु धीरे-धीरे उनके स्वरूप और कार्यक्षेत्रों में वृद्वि होती चली गयी। एड्म स्मिथ, हरबर्ट स्पेन्सर और कार्ल मार्क्स ने सामाजिक सरंचनाओ अपने अध्ययन का आधार बनाया था। आधुनिक युग में रिचर्ड टॉनी, मैक्स बेबर, लासबैल, और डेविड ईस्टन ने राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन के लिए समाजशास्त्र की विषय वस्तु का सफलता पूर्वक उपयोग किया है। उन्होने विस्तार पूर्वक समझाया है कि ''धर्म का पूजीवाद से क्या संबंध है''। मजदूर वर्ग राजनीति को किस प्रकार प्रभावित करता है। शक्ति का राजनीति से क्या संबंध है तथा समाज की सरंचना मतदान को किस प्रकार प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ शहरी मतदाताओं के आचरण को समझने के लिए हमें मुख्य रूप से इन बातो को जानना होगा - शहरीकरण से उत्पन्न समस्याए, शिक्षित बेराजगारी, श्रमिक संख्या में हो रही वृद्वि तथा पानी, बिजली, स्वास्थ्य व शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं। इसी प्रकार ग्रामीण राजनीति को जातीय और धार्मिक विभिन्नताओं तथा कृषि भूमि के स्वामित्व के संदर्भ में अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है।
2. **सामाजिक संतुलन लाने में समाज शास्त्र की भूमिका -** समाजशास्त्रियों ने जो निष्कर्ष निकाले है उनेक आधार पर सामाजिक संघर्षो को समझने में सहायता मिलती है। राज्य इस तरह की नीतियां निर्धारित कर सकता है। जिससे सामाजिक न्याय लाने में सहायता मिलें और समाज में सन्तुलन व

सामन्जस्य स्थापित हो सके। सभी देशों और विशेषकर भारत में जहां भिन्न-भिन्न धर्मो और जातियों के लोग निवास करते है राजनीतिज्ञों के सामने एक बडा प्रश्न राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना है। इस दृष्टि से समाजशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत आंकडे हमारा पर्याप्त मार्गदर्शन कर सकते है।

3. **राजनीति सामाजिक संगठन का निर्धारण करती है -** जातीय भाषायी और सामाजिक संस्थाओं का स्वरूप कुछ न कुछ सीमा तक राज्य द्वारा अवश्य निर्धारित हुआ है। हम सभी जानते है कि राज्य संस्था समूचे सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। आजकल तो राज्य का कार्य क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक हो गया है। विवाह सम्पति तथा पारिवारिक व्यवस्था जिनका समाजशास्त्र से बहुत निकट का संबंध है। राज्य द्वारा नियमित होने लगे है। उदाहरणार्थ , परिवार नियोजन और दहेज सम्बन्धी सरकारी नीतियों ने भारतीय परिवार और विवाह प्रथा को काफी सीमा तक प्रभावित किया है।

2.4.4. राजनीति शास्त्र और समाजशास्त्र का संबंध

समाजशास्त्र सम्पूर्ण समाज और सामाजिक व्यवस्था का शास्त्र है। यह व्यक्तियों के समूह के रूप में समाज तथा व्यक्ति के सभी प्रकार के संबंधों का अध्ययन करता है। राजनीति विज्ञान का अध्ययन विषय राज्य भी एवं समाज का ही एक अंग है और राज्य एक राजनीतिक संस्था होने के साथ-साथ सामाजिक संस्था भी है। विद्वान रेटजन हॉफर ने ठीक ही कहा है कि ‘‘राज्य आपने विकास के प्रारम्भिक चरणों में तो एक सामाजिक संस्था ही थी। ‘‘अतः राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। कैटलिन ने तो यहां तक कहा है कि ‘‘राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र अखण्ड है और वास्तव में एक ही तस्वीर के पहलू है। इन दोनो के संबंधों का अध्ययन निम्न रूपों में किया जा सकता है।

1. **समाजशास्त्र राजनीति के आधार के रूप में -** समाजशास्त्र सम्पूर्ण सामाजिक परिस्थियों और संबंधों का अध्ययन करता है और यह बताता है कि सामाजिक परिवर्तन तथा विकास के क्या नियम है । राजनीतिक सिद्धांतों और संगठनों का उदय सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर ही हुआ है। अतः राजनीति विज्ञान के उचित अध्ययन के लिए समाजशास्त्र का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। गिडिंग्स का मत है कि ‘‘समाजशास्त्र के प्राथमिक सिद्धांतों से अनभिज्ञ व्यक्ति को राजविज्ञान पढाना वैसा ही जैसा न्यूटन के गति सम्बन्धी नियमों से अपरिचत व्यक्ति को खगोल विद्या, उष्णता और यन्त्र विद्या से सम्बन्धित विज्ञान की शिक्षा देना। यही नही, वरन् समाजशास्त्र के अध्ययन ने राजनीति सिद्वान्त से सम्बन्धित ज्ञान को आधुनिक युग में पर्याप्त प्रभावित किया है। यही कारण है वार्नेस ने कहा है कि राजनीतिक सिद्वान्त तथा समाजशास्त्र के बारे में सर्वाधिक विशेष बात यह है कि राजनीतिक सिद्धांतों में गत चालीस वर्षो में जो भी परिवर्तन हुए है जो भी विकास दिशाए

दिखलायी गयी है उन सबकी ओर समाजशास्त्र ने ही संकित किया है। दोनो विज्ञानों का इतना निकट सम्पर्क है कि गार्नर के शब्दों में , ''राजनीति सामाजिकता में गढी हुई है।''

2. **राजनीति विज्ञान की समाजशास्त्र को देन** - राजनीति विज्ञान भी समाजशास्त्र को सहायता प्रदान करता है। समाजशास्त्र में राज्य की उत्पत्ति, संगठन, ध्येय और कार्या आदि का भी अध्ययन किया जाता है। और समाजशास्त्र राज्य सम्बन्धी यह विशिष्ट ज्ञान राजनीति विज्ञान से ही प्राप्त करता है। गेटल ने ठीक ही लिखा है कि राजनीति विज्ञान समाजशास्त्र को समाज की सामान्य रूपरेखा के तौर पर वे घटनाएं प्रदान करता है। जिनका संबंध राज्य के संगठन और कार्या से होता है। राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के पारस्परिक संबंध का एक प्रमाण यह है कि मौरिस गिन्सवर्ग, ऑगस्त काम्टे, लेस्टरवार्ड, विलियम ग्राहम, समनर आदि समाजशास्त्रियों ने राज्य की प्रकृति और उ्देश्यों में इतनी रूचि दिखायी है, मानो ये समाजशास्त्र की मुख्य समस्यायें हो।
3. **उद्भव के आधार पर संबंध** - प्रारम्भिक सामाजिक चिंतन का रूप मिश्रित था जहां सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, तत्वों का एक साथ अध्ययन किया जाता है लेकिन सामाजिक चितंन जैसे-जैसे विकसित एंव व्यस्थित होता गया वैसे - वैसे विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का उद्भव होता गया उद्भव की दृष्टि से राजनीति शास्त्र एक पुरातन सामाजिक विज्ञान है। वही समाज शास्त्र एक नवीन सामाजिक विज्ञान है। राजनीति शास्त्र के उद्भव का श्रेय यूनानी दार्शनिक अरस्तू को जाता है। जिनका चिंतन सामाजिक एवं राजनीति तत्वों पर आधारित था। अरस्तू के एक कथन का उल्लेख यहां अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जिसमें उन्होने कहा था मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह मनुष्य जो सामाजिक नही या तो पशु है या ईश्वर इस तरह अरस्तू का चिंतन समाज, राज्य , परिवार, शिक्षा पर आधारित रहा। वही जब भारत के प्राचीन सामाजिक चिंतन का अध्ययन करते है तो चाणक्य के चिंतन में सामाजिक एवं राजनीतिक तत्वों का सम्मिलित रूप दिखायी पडता है। चाणक्य जिन्हे कौटिल्य भी कहा जाता है ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में राज्य का सप्तांग सिद्वान्त दिया। वही उन्होने परिवार, विवाह, वर्ण, आश्रम, पुरूशार्थ, उत्तराधिकार, नारी, स्थिति, आदि जैसे सामाजिक तत्वों का भी अध्ययन किया।

इस तरह हम देखते है कि समाजशास्त्रीय चिंतन उतना ही पुराना है जितना की राजनीति चिंतन, प्रारम्भिक अस्था में मिश्रित ये भले ही राजनीति शास्त्र के औपचारिक उद्भव एवं समाज शास्त्र को औरपचारिक उद्भव में भारी अंतर हो। लेकिन इन दोनो सामाजिक विज्ञानों में विशिष्ट संबंध रहा है। समाजशास्त्र का औपचारिक उद्भव 1838 में हुआ। इससे पहले की अनौपचारिक समाजशास्त्रीय चिंतन कहीं न कही अन्य सामाजिक विज्ञानों पर निर्भर था। जिसमें राजनीति शास्त्र का प्रमुख स्थान है। इस तरह समाज शास्त्र का राजनीति शास्त्र से उद्भव एवं विकास के आधार पर घनिष्ठ संबंध है। 18 वीं शताब्दी तक राज्य एवं समाज में कोई भेद नही किया जाता था। इस कारण

समाजशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र एक ही विषय के अन्तर्गत आते थें। समाजशास्त्र के उद्भव के बाद राज्य एवं समाज में अंतर किया जाने लगा। राज्य का अध्ययन राजनीति शास्त्र करने लगा एवं समाज का अध्ययन समाजशास्त्र।

4. **अध्ययन वस्तु के आधार पर संबंध -** समाज शास्त्र समाज का अध्ययन करने वाला विज्ञान है समाज विभिन्न, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सांस्कृतिक इकाईयो से मिलकर बना है। इस तरह समाजशास्त्र समाज का व्यवस्थित अध्ययन करने के लिए समाजिक संबंधों एवं अन्तःक्रिया का अध्ययन करने के साथ साथ एक सीमा तक आर्थिक एवं राजनीतिक संबंधों का भी अध्ययन करता है। जो समाज के एक आवश्यक अंग है । वर्तमान समय में राजनीतिक समाज शास्त्र की एक इकाई के रूप में राजनीतिक संबंधों एवं अर्न्तक्रियाओं का अध्ययन करती है। वर्ग, संघर्ष, जनमत, प्रजातंत्र, शक्ति, सत्ता, नौकरशाही, वैश्वीकरण आदि जैसे तत्वों का अध्ययन वर्तमान समय में राजनीति शास्त्र एवं समाज शास्त्र दोनो में हो रहा है। गार्नर ने लिखा है राजनीति शास्त्र के बल एक प्रकार के मानव संबंधों जो राज्य से सम्बन्धित है का अध्ययन करता है जबकि समाज शास्त्र इस प्रकार के सामाजिक संबंधों का इस रूप में समाजशास्त्र के अध्ययन वस्तु राजनीति शास्त्र से व्यापक है।
5. **चिन्तको एवं सिद्वान्तो के आधार पर संबंध -** गिडिग्स ने लिखा है कि प्रत्येक राजनीति शास्त्रीं, समाजशास्त्री और प्रत्येक समाजशास्त्री, राजनीति शास्त्री होता है। आपके अनुसार समाजशास्त्र के प्राथमिक सिद्वान्तो से अपरिचित लोगो को राज्य के सिद्धांतों को पढना उसी प्रकार वेकार है जिस प्रकार ऐसे व्यक्तियों को ज्योतिस पढाना जिन्होने न्यूटन के सिद्धांतों को नही सीखा हो कहने का तात्पर्य यह है कि राजनीति शास्त्र के प्रारम्भिक सिद्धांतों को समझने के लिए समाजशास्त्रीय ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। ये दोनो शास्त्र एक दूसरे पर काफी निर्भर है।

2.4.5. समाजशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र में अंतर

राजनीति विज्ञान तथा समाजशास्त्र में घनिष्ठ संबंध होते हुए भी उनमें निम्नलिखित रूपों में विभिन्नताएं पायी जाती है।

क्षेत्र की दृष्टि से - दोनो विज्ञानों का क्षेत्र और समस्याएं समान नही है। समाजशास्त्र का क्षेत्र राजनीतिक से कहीं अधिक व्यापक है। राजनीति विज्ञान व्यक्ति के राजनीतिक जीवन तथा राज्य और शासन जैसी संस्थाओं का ही अध्ययन करता है। लेकिन समाजशास्त्र मनुष्य के सारे कार्य उसके व्यापार के साथ देखता है और परिवार धर्म तथा व्यापार संघ आदि सभी सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करता है। इसी आधार पर गिलक्राइस्ट ने समाजशास्त्र को विस्तृत किंतु राजनीतिशास्त्र को विशिष्ट शास्त्र माना है।

अध्ययन सामग्री की दृष्टि से - राजनीति विज्ञान का संबंध केवल संगठित समुदाओं और व्यक्तियों से ही है जबकि समाजशास्त्र संगठित और असंगठित दोनो प्रकार के समुदायों और व्यक्तियों से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त राजनीति विज्ञान मानव की केवल चेतन कार्यप्रणाली का अध्ययन करता है जबकि समाजशास्त्र मनुष्य की अचेतन कार्यविधि का ही अध्ययन करता है।

उद्देश्य की दृष्टि से - समाजशास्त्र एक वर्णनात्मक विज्ञान है किंतु राजनीति विज्ञान एक आदर्शपरक विज्ञान ही है। समाजशास्त्र केवल इस बात का अध्ययन करता है कि क्या हो चुका है और क्या हो रहा है। ''भविष्य में क्या होना चाहिए'' इस बात से समाजशास्त्र कोई संबंध नही रखता है लेकिन राजनीति विज्ञान क्या होना चाहिए इस बात से भी संबंध रखता है और इसका उद्देश्य एक आदर्श अवस्था की प्राप्ति है।

2.4.6. सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम सारांश रूप में कह सकते है कि समाजशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र का आपस में बहुत ही घनिष्ट संबंध है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धो तथा व्यवस्थायों का अध्ययन किया जाता है। वही राजनीति शास्त्र सामाजिक प्राणियों में सामाजिक व्यवहार करने के सुव्यवस्थित तरीके तथा जागरूक स्थिति में मनुष्य के अधिकार तथा कर्तव्य से परिचित भी कराता है। तथा समय, परिस्थिति एवं आवश्यकतानुसार समाज में धर्म, कानून, परम्परा तथा प्रचार के द्वारा कैसे परिवर्तन होना चाहिए इस बिन्दु पर विचार भी राज्य तथा सरकारे करती है जिससे सामाजिक व्यवस्था सुदृढ तथा मजबूत होती है।

2.4.7. निष्कर्ष

सभी सामाजिक विज्ञान एक दूसरे के पूरक है। उपर्युक्त प्रथम इकाई से लेकर चतुर्थ इकाई तक अगर हम मूल्यांकन करे तो कुछ मौलिक अंतर होते हुए भी सभी सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र से किसी न किसी रूप में कुछ लेने और कुछ देने के बीच सम्बन्धित है। यही कारण है समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानो द्वारा सम्मिलित रूप में अनेक सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो से जुडे होने के कारण सभी समाजिक विज्ञान एक दूसरे के पूरक है। समाज एक जटिल समग्रता है। जिसके सभी पक्षों को एक विज्ञान द्वारा स्पष्ट नही किया जा सकता है। समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सामजिक दर्शन से प्रभावित है। सभी सामाजिक विज्ञानों की अध्ययन वस्तु सामाजिक ज्ञान है चाहे वह किसी पक्ष से सम्बन्धित क्यो न हो।

इतना जरूर है कि सभी सामाजिक विज्ञानों में समाजशास्त्र की स्थिति मुख्य है। इसका मुख्य कारण यह है कि समाजशास्त्र ही एक मात्र ऐसा विज्ञान है जो सम्पूर्ण समाज का सामान्य चित्र प्रस्तुत करता है। जबकि दूसरे सामाजिक विज्ञान समाज के एक छोटे से भाग के अध्ययन में लगे है। समाजशास्त्र का कार्य

पक्षपात रूप से तथ्यों से की व्याख्या करना नही है। बल्कि सभी सामाजिक विज्ञानों को एक दूसरे के समीप लाना है। यही कारण है कि सभी सामाजिक विज्ञान एक दूसरे से पृथक होते हुए भी सामाजिक ज्ञान के विकास में उसी प्रकार सहायक होते है जिस प्रकार श्रम विभाजन द्वारा विभिन्न कार्यो को अलग-अलग पद्वतियों से करने पर भी सभी व्यक्तियों का उद्देश्य किसी एक वस्तु का निर्माण करना ही होता है। इसी सन्दर्भ में भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति राधा कृष्णन ने भी कहा है कि ''समाजशास्त्र व विशेष सामाजिक विज्ञानो का जिसमें अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, सामजिक मानव शास्त्र तथा सामाजिक मनोविज्ञान प्रमुख है। एक ही परिवार का सदस्य माना जाना चाहिए।

2.4.8. अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राजनीति शास्त्र के लिए समाजशास्त्र की उपयोगिता स्पष्ट कीजिए ?
2. राजनीति शास्त्र से समाज शास्त्र का संबंध स्पष्ट कीजिए ?
3. राजनीति शास्त्र का समाज शास्त्र से अंतर स्पष्ट कीजिए ?

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. सामाजिक संतुलन लाने में समाजशास्त्र की उपयोगिता बताइए ?
2. उद्भव एवं अध्ययन वस्तु के आधार पर समाजशास्त्र का राजनीति शास्त्र से संबंध बताइए ?
3. सभी सामाजिक विज्ञान एक दूसरे के पूरक है ? स्पष्ट कीजिए ?

2.4.9. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जैन, पुखराज. (1999). *राजनीति विज्ञान के सिद्धांत*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन्स.
2. अरोडा, डी. एन. एवं आनंद, आर. के. एवं खन्ना, बी. एन. (2004). *राजनीति विज्ञान*. आगरा. साहित्य भवन पब्लिशर्स .
3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2008) *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
4. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

खंड-3 समाजशास्त्र का इतिहास एवं विकास

इकाई-1: यूरोप में समाजशास्त्र का उद्भव

इकाई की रूपरेखा

3.1.1. उद्देश्य

3.1.2. प्रस्तावना

3.1.3. समाजशास्त्र के उदय की पृष्ठभूमि

3.1.4. समाजशास्त्र के उदय के कारक

3.1.4.1.सामाजिक वातावरण

3.1.4.2. फ्रांसीसी क्रांति

3.1.4.3. औद्योगिक क्रांति

3.1.4.4. वैज्ञानिक क्रांति

3.1.4.5. वाणिज्यिक क्रांति

3.1.5. समाजशास्त्र के उदय की बौद्धिक परंपरा (यूरोपीय)

3.1.6. समाजशास्त्र के उद्भव में ब्रिटिश समाजशास्त्रियों का योगदान

3.1.7. सारांश

3.1.8. शब्दावली

3.1.9. बोध प्रश्न

3.1.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

3.1.1. उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई में यूरोपीय बौद्धिक चिंतन के द्वारा समाजशास्त्र के उदय एवं उसके व्यवस्थित प्रस्थापन संबंधी पक्षों की विवेचना की गई है। इस ईकाई के अध्ययन द्वारा आप यूरोप के समाजशास्त्र के निम्नलिखित बिंदुओं को स्पष्ट कर सकेगें -

1. यूरोपीय स्तर पर समाजशास्त्र के उद्भव की विवेचना।
2. चौदहवीं शताब्दी के लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय समाजशास्त्रीय चिंतन की विवेचना।
3. समाजशास्त्र के उदय व यूरोपीय क्रांतियों के संबंध की विवेचना।
4. यूरोप के बौद्धिक चिंतन की समाजशास्त्र के संदर्भ में विवेचना करना।
5. समाजशास्त्र के भौतिक विज्ञान से सामाजिक विज्ञान बनने की स्थिति का मूल्यांकन करना।

3.1.2. प्रस्तावना

उपरोक्त भाग में यूरोपीय सामाजिक व्यवस्था व चिंतन में समाजशास्त्र के उदय एवं विकास की यात्रा का विवेचन किया गया है, विशेषरूप से यूरोप में विद्यमान सामाजिक आर्थिक राजनैतिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की परंपरा में ही समाजशास्त्र के विकास यात्रा को जांचा व परखा जा सकता है। इस संदर्भ में **राबर्ट बीरस्टीड** का कथन महत्वपूर्ण है कि ''अनेक प्रवृत्तियों तथा तनावों जिनमें कुछ बौद्धिक तथा नैतिक हैं, ने मिलकर समाज विज्ञान का निर्माण किया है उनमें दो विचार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, पहला तो सामाजिक कल्याण में रूचि तथा दूसरी सामाजिक दर्शन में रूचि जिसे हम बौद्धिक ज्ञान के निर्माण का आधार भी मान सकते हैं, इन दोनों ने मिलकर यूरोपीय सामाजिक व्यवस्था तथा दर्शन में किस प्रकार समाजशास्त्र की वैचारिकी को व्यवस्थित व संपादित किया, यह समझना अत्यंत ही प्रासंगिक है।''

3.1.3. समाजशास्त्र के उदय की पृष्ठभूमि

वैश्विक स्तर पर हम जिस यूरोपीय समाजशास्त्र की चर्चा कर रहे हैं, विश्लेषण के स्तर पर इसके उद्भव एवं विकास की एक लम्बी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं बौद्धिक परंपरा रही है। एक विषय के रूप में इसका उदय सर्वप्रथम यूरोप में हुआ। इसीलिए तात्कालिक यूरोपीय सामाजिक संरचना में विद्यमान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं बौद्धिक पृष्ठभूमि में ही समाजशास्त्र के उदय की जड़ों को देखा जा सकता है। एक समाजवैज्ञानिक दृष्टि यह भी कहती है कि किसी विचार या प्रघटना का जन्म उसके परिवेश से संबंधित होता है, क्योंकि उस परिवेश विशेष से उस विषय के मुख्य विचारों को आकार मिलता है। अतः तत्कालीन यूरोप में और वहां की सामाजिक संरचना में वाणिज्यिक क्रांति, पुर्नजागरण, वैज्ञानिक क्रांति, औद्योगिक क्रांति, फ्रांसीसी क्रांति तथा कुछ नवीन बौद्धिक विचारधाराओं, इतिहास के नये दर्शन, विकासवादी सिद्धांत और जीवन तथा जीवनशैली के नये सर्वेक्षणों ने इस उभरते हुए विज्ञान को या विषय को एक नई दृष्टि प्रदान की, जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक संरचना की एवं उससे उत्पन्न जटिलताओं की विवेचना करने वाले शास्त्र का उद्भव दिखाई देता है। वाणिज्यिक क्रांति, औद्योगिक क्रांति, वैज्ञानिक क्रांति से उत्पन्न नवीन यूरोपीय बौद्धिक ज्ञान के परिणामस्वरूप जिस नये यूरोप का निर्माण होता है, उसने प्राचीन यूरोप के हर पहलू को चुनौती दी। परिणाम स्वरूप यूरोपीय संरचना के परंपरागत प्रतिमान टूटे और जो नया यूरोप सामने आया उसने वर्गीय संरचना का पुर्नगठन कर दिया। धर्म को चुनौती दी गयी तथा धर्म का प्रभाव भी कम हुआ। पारिवारिक सत्ता का स्थान वैचारिक आस्थाओं ने ले लिया, इन सबके परिणाम स्वरूप इस समाज में कमजोर वर्गों की संरचना विशेषकर महिलाओं और श्रमिकों की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ और एक अल्प विकसित शोषणकारी राजतंत्र के स्थान पर बौद्धिक रूप से सफल लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस प्रकार एक ऐसे विषय की सैद्धांतिक सहमति यूरोपीय समाज वैज्ञानिकों द्वारा स्थापित हुई जिसने ज्ञान के एक ऐसे आयाम को यूरोप की बौद्धिक दुनियां में प्रवेश कराया, जो न केवल सामाजिक समस्याओं एवं उसकी

चुनौतियों के अध्ययन पर केन्द्रित थी अपितु इन समस्याओं के निदान संबंधी उपायों को खोजना एवं उसकी प्रमाणिकता को संवाहित करना इस नवीन विज्ञान का केंद्रीय अभिमुखन था।

3.1.4. समाजशास्त्र के उदय के कारक

समाजशास्त्र के उदय के यूरोपीय समाज की संरचना में व्याप्त कारकों को समाजवैज्ञानिकों ने कई दृष्टिकोणों से विवेचित किया है। ये दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं -

1. सामाजिक वातावरण
2. फ्रांसीसी क्रांति
3. औद्योगिक क्रांति
4. वैज्ञानिक क्रांति
5. वाणिज्यिक क्रांति
6. सामाजिक वातावरण

यूरोपीय सामाजिक संरचना में विभिन्न प्रकार की जटिलताओं यथाः लैंगिक भेद, कुण्ठा, पारिवारिक टूटन, विचलन जैसी नकारात्मक अभिवृत्तियों ने एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया, जिसने यूरोपीय समाज की संरचना को टूटन के कगार पर ला दिया। ऐसे परिवेश में इन समस्याओं के समाधान एवं निराकरण के लिए एक ऐसे विषय की या दृष्टि की आवश्यकता समीचीन थी कि जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन समस्याओं का समाधान ढूंढ सके। इसी के परिणामस्वरूप यूरोपीय चिन्तकों ने अपने दृष्टिकोण को सामाजिक संरचना के समाधान और उसके निर्माण पर केन्द्रित किया, जिससे समाजशास्त्र विषय की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

3.1.5. समाजशास्त्र के उदय की बौद्धिक परंपरा (यूरोपीय)

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आज समाजशास्त्र की जिस बौद्धिक परंपरा को हम देखते हैं। उसकी शुरूआत 19वीं शताब्दी में फ्रेन्च दार्शनिक एवं समाजशास्त्री ऑगस्त कोंत की बौद्धिक परंपरा है, जिसने समाजशास्त्र को बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया। कोंत का विश्वास था कि विज्ञान एक निश्चित एवं तार्किक क्रम में अनुशीलन करते हैं और सभी अन्नवेषण वैज्ञानिक स्तर पर पहुंचने तक कुछ अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं। कोंत का मत है कि सामाजिक घटनाओं और समस्याओं से संबंधित अन्नवेषणों के लिए अब इस अंतिम अवस्था पर आ जाने का समय आ गया है और इसलिए उसने यह सिफारिश की कि समाज के इस अध्ययन को समाज का विज्ञान माना जाय। कोंत ने इसी नवीन विज्ञान को समाजशास्त्र का नाम दिया और 1838 में इस विषय को एक शब्द के रूप में संबोधित किया, वही शब्द वैश्विक परिदृश्य में समाजशास्त्र के रूप में स्थापित हुआ। इसी कारण परंपरागत् रूप से आगस्त कोंत को समाजशास्त्र की बौद्धिक परंपरा का पिता भी स्वीकार किया जाता है। कोंत ने समाजशास्त्र की विवेचना करते हुए कहा कि समाजशास्त्र का काम सामाजिक

संबंधों का विश्लेषण करना है, किंतु इसकी प्रकृति पूर्णतया वैज्ञानिक है। इसीलिए उनकी दृष्टि में समाजशास्त्र विज्ञानों का विज्ञान है। आगस्त कोंत ने समाजशास्त्र को सृजन करते समय एक समाजशास्त्रीय प्रणाली का भी निर्माण किया, जिसके द्वारा सामाजिक दर्शन तथा समाजशास्त्र में अंतर स्थापित किया जा सकता है।

इस आधार पर हम कह सकते हैं कि कोंत के बहुत पहले भी समाजशास्त्रीय विचार हो सकते हैं, किंतु समाजशास्त्रीय प्रणाली की बौद्धिक परंपरा को आगस्त कोंत द्वारा ही विश्लेषित व परिवेक्षित किया गया। ये कोंत ही थे जिन्होंने यह स्वीकार किया कि प्राकृतिक घटनाओं की भांति ही सामाजिक प्रघटनाओं का अध्ययन वैषेयिक रूप में प्रत्यक्षवादी विधि बनाकर या अपनाकर किया जा सकता है। इस प्रकार समाजशास्त्र की बौद्धिक परंपरा का नेतृत्व आगस्त कोंत द्वारा किया गया, जिन्होंने शुरूआत में इसे सामाजिक भौतिकी कहा किंतु बाद में इसका नाम बदलकर समाजशास्त्र कर दिया। उन्होंने यह परिवर्तन इसलिए किया कि वेल्जियम के एक वैज्ञानिक एडोल्फ क्वेटलेट ने सामाजिक भौतिकी का प्रयोग सरल सांख्यिकी को व्यक्त करने के लिए किया था। इसलिए बाध्य होकर कोंत को समाजशास्त्र शब्द अपनाना पड़ा, जो एक लैटिन तथा ग्रीक भाषा के समन्वय से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है अत्यधिक सामान्यीकृत या अमूर्त स्तर पर समाज का अध्ययन। कोंत समाजशास्त्र को मात्र विज्ञान तक ही बनाने के पक्षधर नहीं थे, अपितु उनका विचार था कि समाजशास्त्र का प्रयोग समाज के पुर्नगठन के सन्दर्भ में भी होना चाहिए। वे समाज के प्रकृति संबंधी विज्ञान विकसित करने के पक्षधर थे, एक ऐसा विज्ञान जो मानव जाति के मात्र ऐतिहासिक प्रघटनाओं की व्याख्या ही नहीं करेगा अपितु वह उनका भविष्य भी निर्धारित करेगा। इनके अनुसार मानव जाति का अध्ययन भी ऐसे ही किया जाना चाहिए कि जैसे प्रकृति का अध्ययन किया जाता है।

कोंत का यह भी मानना है कि समाज का यह नया विज्ञान परंपराओं की अपेक्षा तर्क और अवलोकन पर निर्भर होना चाहिए, तभी समाज को विज्ञान के रूप में देखा जा सकता है। कोंत का समाज विज्ञान जिसे उन्होंने समाजशास्त्र कहा, निश्चित रूप से प्राकृतिक विज्ञानों की तरह ही था। जिस तरह प्राकृतिक विज्ञान तर्क, निरीक्षण और परीक्षण पर केन्द्रित थे, वैसे ही समाजशास्त्र में भी निरीक्षण और परीक्षण की पद्धति का विकास कोंत की बौद्धिक परंपरा में निहित था।

3.1.6. समाजशास्त्र के उद्भव में ब्रिटिश समाजशास्त्रियों का योगदान

वर्तमान में हम समाजशास्त्र के अध्ययन के दौरान जिन सिद्धांतों, अध्ययन विधियों ओर अवधारणओं का अध्ययन करते हैं उनमें अधिकांशतः पश्चिमी समाजशास्त्रियों की ही देन है। समाजशास्त्र को एक नवीन विज्ञान के रूप में स्थापित करने और समाज का एक वैज्ञानिक और क्रमबद्ध अध्ययन करने की प्रेरणा हमें ब्रिटिश समाजशास्त्रियों द्वारा ही मिलती है। अतः समाजशास्त्र के उद्भव व विकास में प्रमुख ब्रिटिश समाजशास्त्रियों के योगदान का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है जो कि अग्रलिखित हैः-

(1) रेडक्लिफ ब्राउन (1881-1955) - सामाजिक मानवशास्त्र के प्रणेता रेडक्लिफ ब्राउन ने सामाजिक संरचना की अवधारणा को स्पष्ट किया तथा अण्डमान द्वीपसमूह के निवासियों के सामाजिक जीवन के अध्ययन में इसे प्रयोग भी किया।

संरचना शब्द का विश्लेषण करते हुए ब्राउन कहते हैं कि ''जब भी हम संरचना शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे हमारा अभिप्राय भागो अथवा संघटको के बीच किसी प्रकार के व्यवस्थित क्रम से है'' अर्थात् सम्बन्धो के इस जटिल रूप को ही ब्राउन सामाजिक संरचना की संज्ञा देते हैं और कहते हैं कि संरचना हमें दो रूपों में दिखाई देती हैः-

1. वह जो किसी निश्चित समय बिन्दु पर मूर्त यथार्थ के रूप में हमें वास्तव में विद्यमान दिखायी देती है।
2. संरचनात्मक स्वरूप जिसका अवलोकनकर्ता वर्णन करता है।

अतः ब्राउन से सामाजिक संरचना की निम्नलिखित विशेषता बतायीः-

1. अमूर्त स्वरूप
2. निरन्तरता व स्थायित्व
3. गत्यात्मकता निरन्तरता
4. सामान्य स्वरूपों से सम्बन्धित
5. स्थानीय आयाम
6. सामाजिक व्यक्तित्व की अवधारणा
7. प्रकार्य से भी सम्बन्धित

उपरोक्त विश्लेषण के साथ ही ब्राउन सामाजिक संरचना के तत्वों का उल्लेख भी करते हैं जो निम्नलिखित हैं -

- समूह
- सामाजिक संबंध
- सामाजिक भूमिकाओं के अनुसार व्यक्तियों और वर्गों का विभेद किया
- संस्थाएँ
- हित व मूल्य
- संस्कार
- जादू व भूत विद्या

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्राउन द्वारा प्रतिपादित सामाजिक संरचना की अवधारणा अपने में एक पूर्ण अवधारणा है जो आनुभविक अध्ययन के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करती है और जिसके प्रयोग द्वारा किसी समाज के सामाजिक जीवन का अध्ययन और विश्लेषण सुगम बन जाता है।

(2) एन्थनी गिडेन्स (1938) - ब्रिटिश समाजशास्त्री एन्थनी गिडेन्स ने समाजशास्त्री सिद्धांत के क्षेत्र में अत्यधिक उल्लेखनीय कार्य किये हैं। इनकी रूचि शास्त्रीय सिद्धांत, पूंजीवाद, सामाजिक वर्ग व सामाजिक परिवर्तन में रही है। लेकिन इनकी ख्याति इनके संरचनाकरण सिद्धांत से मिली है।

गिडेन्स के विचारों में समीक्षा का पुट तथा तर्कपूर्ण विश्लेषण अभिव्यक्ति का समावेश होता था। आपका विचार है कि सामाजिक क्रियाएं समय व स्थान में घटती है इसलिए गिडेन्स ने अपने संरचनाकरण सिद्धांत को अप्रकार्यवादी घोषणापत्र कहा है। इनका मत है कि मानव इच्छाओं से मानव इतिहास का पलायन तथा उस पलायन के परिणामो की मानव क्रिया पर कारणात्मक प्रभावो के रूप में वापसी सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषता है किंतु प्रकार्यवाद उस वापसी की समीक्षा पुनरूत्पादित सामाजिक तत्वों के अस्तित्व के लिए समाज के तर्क के रूप में करता है।

गिडेन्स के संरचनाकरण सिद्धांत की मान्यता है कि सामाजिक व्यवस्थाओं का उद्देश्य कारण या आवश्यकता नहीं होती है केवल व्यक्ति ही संरचनाकरण करता है। संरचनावादी विचारों में गिडेन्स ने काल इतिहास तथा समकालीन ऐतिहासिक विकासशील विभाजन पर प्रकार्यवादी चिंतन की तुलना में अधिक जोर दिया है।

गिडेन्स का मानना है कि सभी सामाजिक कार्यकर्ताओं को जिस सामाजिक व्यवस्था का वे निर्माण करते हैं या पुनरूत्पादन करते हैं, उसका ज्ञान होता है। यह संरचना की द्वैत अवधारणा की एक आवश्यक विशेषता है। इस सन्दर्भ में वह व्यावहारिक चेतना जिस पर कर्ता सामाजिक क्रिया की रचना में विवेचनात्मक चेतना से अंतरव्यक्त करता है। कर्ताओं में पाये जाने वाले विमर्शात्मक या तर्कमूलक अन्तःप्रवेश की प्रकृति एवं विषय क्षेत्र को गिडेन्स ने काफी महत्वपूर्ण माना है और इसे सामूहिकता में नियंत्रण का द्वन्द कहा है।

गिडेन्स ने संरचनात्मक सिद्धांत की मान्यताएँ-

1. संरचनावादी सिद्धांत में भाषा व समाज दोनों की संरचना में पार्थक्य द्वारा अंतरल का महत्वपूर्ण स्थान है।
2. संरचनाकरण कालिक आयाम को अपने विश्लेषण के केन्द्र में रखने की कोशिश करता है।
3. संरचनावाद सामाजिक पुनरूत्पादन सिद्धांत पर जोर देता है।
4. संरचनावाद वस्तु व विषय के द्वैत का अतिक्रमण करने का प्रयत्न करता है।

(3) डेहरेनडॉर्फ (1928)- ब्रिटिश समाजशास्त्री डेहरेनडॉर्फ का प्रमुख योगदान वर्ग सिद्धांत (वर्ग संघर्ष) के क्षेत्र में है। आपका संघर्ष सिद्धांत मूलतः सत्ता के सम्बन्धो पर आधारित है सत्ता संरचना जो प्रत्येक सामाजिक संगठन का अभिन्न अंग होती है, अनिवार्य रूप से सेवार्थ समूह को संगठित करती है और उन्हें निश्चित स्वरूप प्रदान करती है और इस रूप में संघर्ष की सम्भावनाओं को जन्म देती है। वास्तव में समाज में सत्ता का बंटवारा समान नहीं होता इसलिए संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार डेहरेनडॉर्फ का संघर्ष सिद्धांत मूलभूत

रूप से शक्ति व सत्ता के सिद्धांत पर आधारित है। डेहरेनडॉफ ने शक्ति की असमानता को ही संघर्ष का कारण माना है। डेहरेनडॉफ ने मार्क्स के वर्ग संघर्ष सिद्धांत की आलोचना की है। आपने भी संघर्ष को समन्वयकारी व संरचनात्मक -प्रकार्यवादी दृष्टि से देखा है।

आपने संघर्ष सिद्धांत को संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से विश्लेषित किया है:-

1. किसी भी आदेशसूचक समन्वित समाज के लोगों में वास्तविक समाज के बारे में जितनी अधिक चेतना होगी उतनी ही अधिक उनकी संघर्ष करने की संभावना होगी।
2. जितनी आर्थिक, तकनीकि, राजनैतिक व सामाजिक दशाओ की आवश्यकताओ की पूर्ति संगठन में होगी उतना ही संघर्ष अधिक तीव्र होगा।
3. अधिकोटि और अधीनस्थ समूहो में जितनी कम गतिशीलता होगी संघर्ष उतना ही तीव्र होगा।
4. संघर्ष जितना अधिक गहरा, सघन व हिंसात्मक होगा, उतना ही अधिक सामजिक परिवर्तन होगा।

(4) स्टुअर्टहॉल (1932)- ब्रिटिश समाजशास्त्री स्टुअर्टहॉल का प्रमुख कार्य राष्ट्रीय संस्कृति, आधुनिकता व वैश्वीकरण से जुड़े हुये विषयो पर है। वैश्वीकरण के विषय में हॉल का कहना है कि यह अभी भी कोई नहीं प्रघटना नहीं है वास्तव में आधुनिकता में वैश्विकता अन्तर्निहित है। वैश्वीकरण की जड़े गहरे रूप में आधुनिकता में विद्यमान है। वैश्वीकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक पहचान की समस्या के तीन संपादित रूप हो सकते हैं-

(1) सांस्कृतिक समाजीकरण के विकास के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय पहचान खत्म होती जा रही है और वैश्विक उत्तर आधुनिकता का विकास हो सकता है।

(2) राष्ट्रीय तथा अन्य स्थानिक या विशिष्ट पहचान वैश्वीकरण के प्रतिरोध के कारण अधिक मजबूत हो सकती है।

(3) राष्ट्रीय पहचान कमजोर पड़ सकती है किंतु इसका स्थान वर्णसंकरता की नवीन पहचान ले सकती है। वैश्विक पहचान के समाजीकरण के कुछ परिणाम हो सकते हैं-

(1) वैश्वीकरण स्थानिक पहचान को मजबूत करने के साथ-साथ चल सकता है यद्यपि यहसब कुछ समय और स्थान पर निर्भर करता है।

(2) वैश्वीकरण एक असमान ऊबड़-खाबड़ प्रक्रिया है ओर इसकी अपनी राजनीतिक रेखागणित है।

(3) वैश्वीकरण -पश्चिमी प्रभुत्व के कुछ लक्षणो को बनाये रखता है किंतु सभी जगह सांस्कृतिक पहचान समय व स्थान के दायरे में आपेक्षिक रूप से विद्यमान रहती है।

(5) सर पैट्रिक गिड्स (1854-1932)- भारत में बम्बई विश्वविद्यालय में सन् 1919 में समाजशास्त्र के प्रथम विभाग की स्थापना करने वाले सर पैट्रिकगिड्स मूलरूप में एक जीवविज्ञानी व नगर नियोजक तथा नगरीय सामाजिक समस्याओं के प्रख्यातज्ञाता थे उन्होंने नगर नियोजन के लिए एक समाज वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया। यही नहीं, उन्होंने सर्वेक्षण करने व संकलित तथ्यो का विश्लेषण करने को एक नवीन पद्धति विकसित

की जो बाद में सर्वेक्षणकर्ताओ द्वारा एक गाइड के रूप में प्रयोग की गई। नगरीय समाजशास्त्र को उनकी ''उपनगरीय समूहन' की अवधारणा को उन्होंने अपनी पुस्तक 'सिटिज इन इवोल्यूशन' में प्रस्तुत की है, एक प्रमुख देन है। जी.एस. घूर्ये व राधाकमल मुकर्जी के लेखनो में इनके प्रभाव का स्पष्ट अवलोकन किया जा सकता है।

(6) इवान्स प्रिचार्ड (1902-1973)- यह एक अग्रणी ब्रिटिश सामाजिक मानवशास्त्री थे इन्होंने अफ्रीकी समाजो में मुख्य रूप से अजेन्डे व न्यूर जनजातियों में कई नृजातीय अध्ययन किये हैं। आपने सामाजिक मानवशास्त्र को समाज का एक प्राकृतिक अध्ययन मानने के स्थान पर इसे एक मानवतावादी अध्ययन माना है।

इवान्स प्रिचार्ड का अध्ययन केंद्र बिंदु यह जानना होता है कि किसी भी समाज के सदस्य रीति रिवाजो का क्या अर्थ लगाते हैं, इनकी दृष्टि में इन रिवाजो और कर्मकाण्डो का क्या अर्थ है। उन्होंने कहा कि मानवशास्त्र का मुख्य कार्य एक संस्कृति का इस प्रकार भाषान्तर करना है ताकि दूसरी संस्कृति के सदस्य उन शब्दो, अवधारणाओं को आसानी से समझ सके।

प्रिचार्ड शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने जादू टोना टोनागिरी व भूतप्रेत सम्बन्धी विश्वासो और इनकी विधियों का सविस्तार वर्णन विश्लेषण किया है। द. सूडान के अजेण्डे लोगो का अध्ययन कर बताया कि ये लोग किसी व्यक्ति से सम्बन्धित किसी दुर्भाग्यपूर्ण घटना की व्याख्या जादू टोने के आधार पर करते हैं। वे सभी प्रकार की मृत्यु का कारण टोनागिरी को मानते हैं इसी तरह न्यूर जनजाति के अध्ययन के दौरान प्रिचार्ड ने राज्यविहीन समाजो में राजनीतिक एकीकरण के सिद्धांत को प्रतिपादित किया।

(7) लिऑनार्द ट्रिलाने हॉबहाउस (1864-1929)- हॉबहाउस एक प्रारम्भिक ब्रिटिश समाजशास्त्री थे। ब्रिटेन में वैज्ञानिक समाजशास्त्र की नींव रखने वाले हॉबहाउस की रचनाओं का आकार विश्वकोशीय प्रकृति का है। साथ ही नीतिशास्त्र और सामाजिक दर्शन में तर्कवाद को सूक्ष्म व्याख्या भी दिखती है।

स्पेन्सर के समान ही हॉबहाउस भी समाज को एक स्थानिक एकता माना है। आपने अपने सिद्धांत में सहसंबंध और समन्वय की प्रक्रियाओं को रेखांकित किया है। और सामाजिक प्रगति में सामाजिक मन की भूमिका स्वीकार की।

हॉबहाउस ने सामाजिक दर्शन और समाजशास्त्र के अतिरिक्त राजनीतिक विषयो पर लिखा। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और धार्मिक नियंत्रण करने वाले राज्य के बीच सम्बन्धो को लेकर उन्होंने सामाजिक न्याय के तत्व के नाम से भी पुस्तक लिखी। राज्य की सकारात्मक भूमिका को रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा है कि किसी भी राज्य को सार्वजनिक कल्याण कार्यों को करते समय व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा का भी ध्यान रखना चाहिए।

(8) ब्रॉनिस्लॉ केस्पर मेलिनोस्की (1884-1942) - मानवशास्त्र में प्रकार्यवादी सिद्धांत के प्रमुख हस्ताक्षर पोलैण्ड निवासी मेलिनोस्की प्रख्यात मानव वैज्ञानिक रेडक्लिफ ब्राउन के समकालीन थे। सन् 1915 व 1918

के बीच आपने न्यूगिनी के उत्तर पश्चिम में स्थित ट्रोबिएंड द्वीप के मातृवंशीय निवासियो का लगभग दो वर्षों तक अध्ययन किया। इस समाज में उत्तराधिकार व दायाधिकार स्त्रियों से स्त्रियों को होता था। इस शोध के दौरान मेलिनोस्की ने सहभागिक अवलोकन विधि का प्रयोग किया।

मेलिनोस्की प्रकार्यवादी सिद्धांत के प्रणेताओं में से एक रहे हैं। इस सिद्धांत का उल्लेख इनकी पुस्तक ''संस्कृति के एक वैज्ञानिक सिद्धांत (1944) में किया। इनके अनुसार समस्त मानव संस्कृति का कार्य मूलतः मानव की मौलिक एवं आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। सभी सांस्कृतिक तत्व किसी न किसी रूप में किसी समाज में व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उन्होंने कहा कि कर्मकाण्डो, नातेदरी प्रतिमानो और आर्थिक विनिमय (प्रसिद्ध कूलाप्रथा सहित) की व्याख्या उनकी उत्पत्ति के आधार पर किये जाने की अपेक्षा उनकी वर्तमान उपयोगिता के आधार पर की जानी चाहिए। आपने किसी भी समाज के समरस संतुलन को एक आदर्श के रूप में स्वीकार किया है।

मेलिनोवस्की ने ट्रोबियंड द्वीप समूह वासियों के विभिन्न पक्षो का अध्ययन कर कई शोध प्रबंध लिखे हैं उन्होंने उसके यौन व्यवहारो का अध्ययन कर ''असभ्य समाज में यौन व्यवहार और दमन (1927) पुस्तक लिखी। 'असभ्य समाज में अपराध और प्रथा'' (1926) में उन्होंने आदिवासी समाजो में अपराध का विश्लेषण किया है। मेलिनोस्की ने समाज के ताने बाने की व्याख्या करने में मिथको का भी विश्लेषण किया है। इस प्रकार इनके उपरोक्त योगदानो की परिणति यह है कि आज विश्वासो, रीति रिवाजो, नातेदारी, प्रतिमानो, राजनीतिक संगठन और आर्थिक कार्यकलापो आदि प्रत्येक विषय का अध्ययन अलग न किया जाकर उनके पारम्परिक सम्बन्धो और सम्पूर्ण समाज के सन्दर्भ में किया जाने लगा है।

3.1.7. सारांश

उपरोक्त ईकाई में यूरोप में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास यात्रा का सामरिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिसमें यूरोपीय सामाजिक संरचना के उन समस्त कारकों की विवेचना की गयी है, जिनसे समाजशास्त्र की उद्भव परंपरा को संजीवनी प्राप्त हुई। साथ ही वैश्विक स्तर पर समाजशास्त्र को जिन यूरोपीय विचारकों ने आयाम प्रदान किया है उनके दृष्टिकोणों एवं सैद्धांन्तिक परिप्रेक्ष्य को केन्द्रित करते हुए अध्याय की श्रृंखला में समाहित करने का प्रयास हुआ है। यूरोपीय समाजशास्त्र न केवल एक वैचारिक प्रघटना है, अपितु इसके जन्म एवं क्रियान्वयन में उस समाज में व्याप्त क्रांतियों ने भी इस विषय की स्थापना के दर्शन को आयाम प्रदान किया है।

आगस्त कोंत की वैचारिक केंद्रीयता किस प्रकार सामाजिक जीवन की व्याख्या करने वाले एक प्रत्यक्षवादी दर्शन को आत्मसात् करती है और किस प्रकार वह इस विचारधारा को या दर्शन को 1838 ई. में एक सैद्धांतिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य के रूप में नामानीकृत करते हुए पुष्पित और पल्लवित करती है। इसकी व्याख्या करना इस ईकाई का प्रमुख उद्देश्य है। यूरोपीय सामाजिक संरचना में पुर्नजागरण, वैज्ञानिक क्रांति,

वाणिज्यिक क्रांति के परिणाम स्वरूप उत्पन्न सामाजिक प्रभावों और चुनौतियों का मूल्यांकन भी इस ईकाई का केंद्रीय लक्ष्य रहा है।

यूरोपीय समाजशास्त्र प्रबोधन की परंपरा से विकसित एक विचारधारा है, जिसमें बौद्धिक आन्दोलनों ने भी अपना केंद्रीय सहयोग प्रदान किया है, जैसे इतिहास का दर्शन, विकास का जीव शास्त्रीय सिद्धांत, सामाजिक सर्वेक्षण इत्यादि बौद्धिक नवीनताओं ने समाजशास्त्र को एक ऐसा अक्षय वृक्ष बनाया जिसके छांव में आज संपूर्ण विश्व के सामुदायिक समाज अपनी चुनौतियों और समस्याओं के समाधान के मार्ग को ढूंढने का प्रयास करते हैं। वस्तुतः यह ढूंढने का प्रयास ही उन्हें सामाजिक अनुसंधान की विभिन्न क्रिया-विधियों की ओर बढ़ने की ओर जागरूक करता है और क्रियाविधियों और परिप्रेक्ष्यों के समन्वित संकुल द्वारा वह समाज वैज्ञानिक अपने समाज हेतु नवीन सम्भावनाओं के लक्ष्य को प्राप्त करता है।

3.1.8. शब्दावली

1. **परिवर्तन (Change) -** जब किसी वस्तु अथवा वस्तुओं की व्यवस्था के किसी भाग अथवा अंग की स्थिती में इस प्रकार का अंतर आता है कि उस व्यवस्था का संरचनात्मक ढांचा ही बदल जाता है तो इसे हम परिवर्तन कहते हैं। इसमें गति, संशोधन तथा रूपान्तरण का भाव सम्मिलित होता है।
2. **औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) -** आधुनिक उद्योगवाद के फलस्वरूप उत्पन्न हुए परिवर्तनों की जटिल श्रृंखला को सामान्यतः औद्योगिक क्रांति की संज्ञा दी जाती है। विशिष्टतः इस शब्द का प्रयोग इंग्लैड में 18वीं शताब्दी के अंतिम चरण तथा 19वीं शताब्दी की प्रारम्भिक अवस्था में हुए परिवर्तन की अवधि के लिए किया जाता है।
3. **औद्योगिक समाज (Industrial Society) -** अति सरल अर्थ में औद्योगिक समाज से तात्पर्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है, जिसमें उत्पादन की विधि के रूप में शक्ति संचालित मशीनों का प्रयोग किया जाता है। इस शब्द की रचना सेंट साईमन द्वारा की गयी।
4. **मानक शून्यता (Anomie) -** अंग्रेजी शब्द एनॉमी का शाब्दिक अर्थ है मानक शून्यता या मर्यादा विहीनता, इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री एमिल दुर्खाइम द्वारा सामाजिक सहभागिता के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने के लिए किया गया। दुर्खाइम के अनुसार एंसी दशाएं जो मानव के विकास एवं सुख-समृद्धि के लिए आवश्यक मानी जाती हैं, उनका अभाव ही एनॉमी का परिचायक है। इन्होंने एनॉमी की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग यूरोप में आत्महत्या के प्रतिमानों को स्पष्ट करने के लिए किया था।
5. **सामाजिक समस्या (Social Problem) -** ऐसी कोई भी अवांछित तथा आपत्तिजनक दशा, या स्थिति अथवा व्यवहार प्रतिमान जो किसी समाज के अधिसंख्य व्यक्तियों द्वारा असहनीय एवं

निंदनीय माना जाता है तथा जिसके सुधार एवं निदान के लिए सामूहिक क्रिया की आवश्यकता महसूस की जाती है। उसे सामाजिक समस्या कहते हैं।

6. **सामाजिक सुधार (Social Reform) -** ऐसा कोई आन्दोलन अथवा प्रयास जो संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था अथवा उसके किसी एक भाग के दोषपूर्ण कार्य करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई बुराईयों एवं कुरीतियों को दूर करने अथवा उन्हें पूर्णतः मिटाने के उद्देश्य से प्रेरित होता है। उसे सामाजिक सुधार कहते हैं।
7. **सामाजिक शोध (Social Research) -** सामाजिक शोध मानव के सामाजिक जीवन के संबंध में खोज करने का एक वैज्ञानिक प्रयास है। जिसका उद्देश्य नवीन ज्ञान जुटाना और विद्यमान ज्ञान का परिष्करण हो सकता है, इसमें व्यवस्थित एवं तार्किक विधियों की सहायता से सामाजिक व्यवहार का वर्णन एवं विश्लेषण कर सिद्धांत निर्माण किया जाता है।
8. **सामाजिक संबंध (Social Relationship) -** किन्हीं प्रयोजन को लेकर दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच होने वाली अर्न्तक्रियाओं के आधार पर निर्मित व्यवहार प्रतिमान को सामाजिक संबंध कहते हैं। सामाजिक संबंधों की स्थापना के लिए अर्थपूर्ण संप्रेषण तथा चेतना का भाव होना आवश्यक है।
9. **सामाजिक स्थैतिकी (Social Statics) -** इस अवधारणा का प्रयोग आगस्त कोंत ने समाज के स्थिर पक्ष अर्थात् सामाजिक संरचना तथा उसके विभिन्न अर्न्तसंबंधित भागों के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन हेतु किया। कोंत के अनुसार सामाजिक स्थैतिकी का अध्ययन सामाजिक गतिकी का पूरक है। सामाजिक स्थैतिकी सह अस्तित्व के नियमों के खोज का प्रयास करती है।

3.1.9. बोध प्रश्न

3.1.9.1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. फ्रांस की बौद्धिक क्रांति किस वर्ष हुई?

   (क) 1784

   (ख) 1786

   (ग) 1789

   (घ) 1793

2. द स्टेट ऑफ दि पुअर पुस्तक के लेखक निम्नलिखित में कौन हैं?

   (क) राबर्ट वीर स्टीड

   (ख) अमर्त्य सेन

(ग) दुर्खीम

(घ) एफ.एम.ईडेन

3. समाजशास्त्र नाम का सर्वप्रथम प्रयोग किस वर्ष किया गया था?

(क) 1835

(ख) 1836

(ग) 1838

(घ) 1840

4. द सोशल कॉन्ट्रैक्ट किसकी पुस्तक का नाम है?

(क) अरस्तू

(ख) प्लेटो

(ग) सुकरात

(घ) रूसो

5. ''प्रशासनिक, विधायी व न्यायिक सत्ता का एक स्थान पर केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिए'' यह कथन किसका है?

(क) मॉण्टेस्क्यू

(ख) सुकरात

(ग) मैक्स बेवर

(घ) चाणक्य

3.1.9.2. लघुउत्तरीय प्रश्न

1. यूरोपीय समाजशास्त्र के उद्भव के तत्कालीक कारण क्या थे?
2. फ्रांस की बौद्धिक क्रांति से आप क्या समझते हैं?
3. यूरोपीय समाजशास्त्र के सन्दर्भ में तीन बौद्धिक आन्दोलनों की विवेचना कीजिए।
4. यूरोपीय समाजशास्त्र के सन्दर्भ में विकास के जीवशास्त्रीय सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
5. औद्योगिक क्रांति की विवेचना कीजिए।

3.1.9.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. यूरोपीय सामाजिक संरचना में व्याप्त सामाजिक चुनौतियों के समाधान के सन्दर्भ में समाजशास्त्र की विवेचना कीजिए।
2. यूरोपीय समाजशास्त्र के उदय के कारकों की व्याख्या करते हुए इसमें प्रबोधन कारकों एवं बौद्धिक आन्दोलनों के महत्व पर प्रकाश डालिए।
3. यूरोपीय समाजशास्त्र के सन्दर्भ में वैज्ञानिक व औद्योगिक कारकों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

3.1.10. संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पीटर, बर्जर. (1995). *एन इनवीटेशन टू सोसियोलॉजी*. न्यूयार्क: ए लूमनिस्टिक पसनेक्टिव डबलडे.
2. बोटोमोर, टी.बी. (1978), *सोशियोलॉजीः ए गाइड टू प्रॉबलम्स एण्ड लिटरेचर*. न्यूयार्क: ब्लैकी एण्ड सन्स.
3. डेविड, किंग्सले. (1970). *ह्यूमन सोसायटी*. न्यूयार्क: दि मेकमिलन कम्पनी.
4. गीडिग्ंस, एन्थोनी. (1974). *सोशियोलॉजी पालिटी प्रेस इन एसोसियेशन*. ऑक्सफोर्ड: ब्लैक वेल पब्लिसर्स.
5. मिल्स, सी. राईट. (1959). *दी सोसियोलॉजिकल इमेजिनेशन*. न्यूयार्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. इंकल्स, एलेक्स. (1977). *वॉट इज़ सोसियोलॉजीः एन इन्ट्रोडक्शन टू द डिसेप्लेन*. नई दिल्ली: प्रिंटिंग हॉल आफ इंडिया प्रा.लि.
7. जनसन, एच.एम. (1970). *सोशियोलॉजीः ए सिस्टमेटिक इन्ट्रोडक्सन*. मुम्बई: एलाईड पब्लिशर्स.
8. बियरस्टेड, रोबर्ट. (1970). *द सोशल आर्डर*. मुंबई: टाटा मईग्राहिल पब्लिशिंग हाउस.
9. बौटोमोर, टी.बी. (1978), *सोशियोलॉजीः ए गाइड टू प्रॉब्लम्स एण्ड लिटरेचरा*. मुंबई: ब्लैकी एण्ड सन्स पब्लिशर्स.
10. कार, ई.एच. (1961). *वाट ईज़ हिस्ट्री*. न्यूयार्क: पेंगुईन बुक्स.
11. मैकाईवर, आर.एम. एण्ड पेज, सी.एच. (1974), *सोसायटीः एन इनटरोडक्टरी एनैलिसिस*. नई दिल्ली: मैकमिलन कम्पनी इंडिया प्रा.लि.

इकाई-2 : अमेरिका में समाजशास्त्र का उदय

इकाई की रूपरेखा

3.2.1. उद्देश्य कथन

3.2.2. प्रस्तावना

3.2.3. पश्चिम में समाजशास्त्र का आविर्भाव

3.2.4. समाजशास्त्र के उद्भव के कारण

3.2.5. विषय विस्तार

3.2.5.1. अमेरिका में समाजशास्त्र का उद्भव

3.2.5.2. शिकागो स्कूल

3.2.6. समाजशास्त्र का सैद्धांतिक विभाजन

3.2.6.1. मैक्रो/वृहत्/स्थूल समाजशास्त्र

3.2.6.2. माइक्रो समाजशास्त्र

3.2.6.3. समाजशास्त्र की प्रत्यक्षवादी परंपरा का अमेरिका में विकास

3.2.7. अमेरिका में समाजशास्त्र का अकादमिक संस्थानीकरण

3.2.7.1. अमेरिकन समाजशास्त्र की विशेषता

3.2.7.2. अमेरिकी समाजशास्त्र की प्रवृत्तियाँ

3.2.8. सारांश

3.2.9. बोध प्रश्न

3.2.10. संदर्भ ग्रंथ

3.2.1. उद्देश्य कथन

इस इकाई में अमेरिका में समाजशास्त्र के उदय पर विचार किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके द्वारा संभव होगा।

1. समाजशास्त्र के उदय की पृष्ठभूमि की व्याख्या करना।
2. समाजशास्त्र के अस्तित्व में आने के मूल कारण जान सकेगें।
3. 19वीं शताब्दी से लेकर 21वीं शताब्दी तक अमेरिका की सामाजिक परिस्थितियों का उल्लेख करना।
4. समाजशास्त्र का अमेरिका में अकादमिक विषय के रूप में संस्थानीकरण कैसे हुआ।
5. आधुनिक समय में किस प्रकार से समाजशास्त्र का विकास हो रहा है इसे समझ सकेंगे।

3.2.2. प्रस्तावना

मुख्यतया यह इकाई अमेरिका में समाजशास्त्र के उदय पर केन्द्रित है लेकिन किसी भी विषय या ज्ञान की शुरूआत शून्य में न होकर एक परिवेश में होती है जिसके लिऐ सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियां भी जिम्मेदार होती है उन सभी का अध्ययन किये बिना हम विषय सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने में अक्षम होते है अतः समाजशास्त्र के अमेरिका में उद्भव के विषय में जानने से पूर्व हम इस इकाई के पहले खण्ड में समाजशास्त्र उद्भव की परिस्थितियों व विकास के विषय में संक्षेप में विचेना करेगें।

तत्पश्चात् इसके विषय विस्तार के खण्ड में अमेरिका में समाजशास्त्र के उद्भव तथा उद्भव में योगदान करने वाले समाजशास्त्रीयों के विषय में विवेचना करेगें साथ ही समाजशास्त्र के विकास क्रम में इसको दो शाखा माइक्रो और मैक्रो समाजशास्त्र के संबंध में भी जानेंगे। इसी के साथ अमेरिका में अकादमिक रूप में समाजशास्त्र की शुरूआत और इसी दौरान उत्पन्न हुए शिकागो सम्प्रदाय के विषय में चर्चा करेंगे।

3.2.3. पश्चिम में समाजशास्त्र का आविर्भाव

मनुष्य को सदैव अपने समाज के बारे में जानने और इसके बारे में विचार करने की प्रवृत्ति रही है। पिछले इतिहास का अध्ययन करें तो पाते है कि समाज वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि उस समय भी पायी जाती थी। हम कह सकते है कि इस विषय का इतिहास बहुत लम्बा नहीं है। पर निश्चित ही इसका अतीत बहुत बड़ा है। इस संबंध में बीयरस्टेट का यह कथन प्रसंगिक हो जाता है ''समाजशास्त्र का एक लम्बा अतीत रहा है लेकिन इतिहास काफी होता'' अर्थात् इस विष्य की उत्पत्ति के पूर्व भी उस पर चिंतन होते रहे है लेकिनउन विषय वस्तुओं परएक स्वतन्त्र विषय के अन्तर्गत वैज्ञानिक ढंग से चिंतन कुछ समय पहले ही शुरू हुआ।

टी.बी. बाटोमोर ने समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास की चार प्रमुख अवस्थाओं की चर्चा की। प्रथम अवस्था में वे प्राचीन यूनानी विचारकों प्लेटो एवं अरस्तू के विचारों को रखते है जो अपने पुस्तकों में

उस समय के सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों जैसे पारिवारिक जीवन, रीतिरिवाज, स्त्रियों की स्थिति व तात्कालिक समाज की समस्याओं का उल्लेख करते है। दूसरी अवस्था में वे छठी शताब्दी से 14वीं शताब्दी की चर्चा करते है जिस समय सामाजिक जीवन की व्याख्या दार्शनिक व धार्मिक आधार पर की जाती थी इस युग में सेंट अक्यूनॉस व दाँते जैसे विचारक रहे है जिन्होंने मानव को एक सामाजिक प्राणी माना साथ ही यह भी माना की समाज स्थिर नहीं है बल्कि परिवर्तनशील है। इस युग में अनेक विद्वानों के विचार दार्शनिक व धार्मिक के स्थान पर तार्किक भी होने लगे थे। समाजशास्त्र के विकास की तीसरी अवस्था में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों की विवचेना की गई और चतुर्थ अवस्था में समाजशास्त्र की विज्ञान के रूप में उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार समाजशास्त्र एक विज्ञान के रूप में सन् 1838 ई0 में फ्रांस में उद्भूत हुआ। यद्यपि पहला समाजशास्त्री 14वीं सदी का उत्तर अफ्रीकी विद्वान अरब विद्वान इब्न खल्दून को माना जाता है जिसने अपनी कृति ''मुकद्दीमा में सामाजिक एकता व सामाजिक संघर्ष संबंधी समाज वैज्ञानिक सिद्धान्तों की विवेचना की। शब्द Sociology पहली बार 1780 में फ्रांसीसी निबंधकार इमैनुअल जोसफ सीयस द्वारा एक अप्रकाशित पांडुलिपि में गढ़ा गया। जिसे बाद में ऑगस्ट कॉम्ट द्वारा स्थापित किया गया।

3.2.4. समाजशास्त्र के उद्भव के कारण

समाजशास्त्र के उद्भव के चार कारण हैः-

(1) आर्थिकः- औद्योगिक क्रान्ति जो 17-18वीं सदियों में हुयी थी इसने इस तथ्य को जन्म दिया कि 19वी सदी की शुरूआत अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में बाजार संबंधों के अनुमोदन से हुयी थी। सामंतवाद के युग में विभिन्न वर्गों के बीच आर्थिक संबंधों का आधार गैर आर्थिक निर्भरता था जिसका एक उदाहरण भूमि मालिक व कृषक के बीच संबंधों के रूप में सेवा कर सकता है। बाजार संबंधो में सभी प्रतिभागी बराबर होते हैं।

(2) राजनीतिकः- 19वीं सदी की शुरूआत उस समय हुई जब संविधान के आधार पर सरकार के लोकतात्रिक रूप की स्थापना न्व पश्चिमी यूरोप के राज्यों में की जाती है 19वीं सदी के मध्य में आम संसदीय चुनाव का आयोजन किया जाता है इसके अतिरिक्त विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों के साथ ही पार्टियों का गठन भी होता है समाज के सदस्यों को समान अधिकार दिये जाते है पूर्व नागरिक बनाये जाते हैं।

(3) वैज्ञानिक संज्ञानात्मकः- सामाजिक विचारों का विकास कई शताब्दियों के लिए किया जाता है। जो कि एक नए विज्ञान के उद्भव की रूपरेखा का निर्माण करते है प्राचीन व मध्यकाल में बेकन, साइमन, रूसों, क्वेटलेट आदि अनेक समाजशास्त्र अग्रदूतों के सामाजिक विचारों ने समाज वैज्ञानिक दृष्टिकोण हेतु पृष्ठभूमि प्रदान की।

(4) सामाजिकः- अमेरिका का पश्चिमी यूरोप में नागरिक समाज के उभरने के लिए आर्थिक बौद्धिक व राजनीतिक कारणों का वर्णन किया गया। नतीजतन नई सामाजिक प्रक्रिया उभरी, लोगों की सामाजिक व

भौगोलिक गतिशीलता में वृद्धि हुयी और सामाजिक संरचना बदलना शुरू हुयी। इन परिवर्तनों का वर्णन करने हेतु एक नये वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी।

उपर्युक्त कारकों ने सामजशास्त्र के उद्भव में उत्प्रेरक का कार्य किया और एक विषय के रूप में समाजशास्त्र 1838 में फ्रांस में उद्भूत हुआ। लेकिन भले ही समाजशास्त्र का जन्म यूरोप की धरती पर हुआ हो लेकिन इसको उर्वरता अमेरिका की जमीन ने दी। अतः जन्म के 38 वर्ष उपरान्त सन् 1876 में अमेरिका के ऐल विश्वविद्यालय में ग्राहन समनर के नेतृत्व में अध्ययन की शुरूआत हो जाती है इसलिए समनर को समाजशास्त्र विषय का अकादमिक जनक भी कहा जाता है। 1890 में पहली बार इस विषय को इसके नाम के तहत अमेरिका के केन्सास विश्वविद्यालय में पढ़ाया गया जिसका शीर्षक 'समाजशास्त्र के तत्व' था। इस प्रकार समनर के अतिरिक्त अमेरिका में समाजशास्त्र के विकास में बार्नस, टानकॉट पारसन्स, कोजर, रॉस, मैकाइबर, सोरोकिन ऑगबर्न, निमकॉफ गिडिग्स मर्टन पार्क वर्गेस आदि विद्वानों का योगदान उल्लेखनीय है जिनपर चर्चा इस ईकाइ के विषय विस्तार खण्ड में करेगें।

3.2.5. विषय विस्तार

3.2.5.1. अमेरिका में समाजशास्त्र का उद्भव

समाजशास्त्र का विकास 19वीं सदी में उभरती आधुनिकता की चुनौतियों जैसे औद्योगिकरण, शहरीकरण व वैज्ञानिक पुनर्गठन की शैक्षणिक अनुक्रिया के रूप में हुआ। यूरोपीय महाद्वीप में इस विषय ने अपना प्रभुत्व जमाया व वही ब्रिटिश मानव शास्त्र ने सामान्यतया एक अलग पथ का अनुसरण किया। 20वीं सदी के समाप्त होने तक कई प्रमुख समाजशास्त्रीयों ने ऐग्लो अमेरिकन दुनिया में रह कर काम किया। ऐसे अग्रणी समाजशास्त्रीय में समनर, वार्ड, गिडिग्स, स्माल, रॉस, कोजर, सोरोकिन पारसन्स, कूले आदि के नाम उल्लेखनीय है।

वास्तव में अमेरिका में उत्पन्न कई पारिस्थितिकीय आन्दोलनों ने सामाजिक दृष्टिकोण की शुरूआत की। समाजशास्त्रीयों के अनुसार ब्रिटिश उपनिवेश में दासता उन्मूलन के लिए लोगों की समाजिक अंतर्दृष्टि ही जिम्मेदार थी। इस समय एक आधुनिक समाजशास्त्री पिनल ने मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्ति के इलाज में पारम्परिक तरीकों के स्थान पर मानवीय तरीकों का प्रयोग किया। समाजशास्त्रीय बेकारिया ने भी अपराधी व्यक्ति के इलाज के पारम्परिक तरीकों व परिणामों का अध्ययन कर अन्य तरीकों का सुझाव दिया।

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी समाजशास्त्री ने सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में सामाजिक दृष्टिकोण अपनाया साथ ही पारम्परिक दृष्टिकोण व नीतियों व परिणामों को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया।

अमेरिका के **येल विश्वविद्यालय** में सर्वप्रथम **समनर** के नेतृत्व में 1876 में समाजशास्त्र अध्ययन की शुरूआत हुयी। 1890 में इस विषय को वर्तमान नाम से केन्सास विश्वविद्यालय लारेंस में पढ़ाया गया

जिसका शीर्षक 'समाजशास्त्र के तत्व' था। पहली बार फ्रैक ब्लैकमर द्वारा पढ़ाया गया। अमेरिका में जारी रहने वाला यह सबसे पुराना पाठ्यक्रम है। तत्पश्चात् अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में 1892 में ए0डब्ल्यू स्माल के नेत्त्व में समाजशास्त्र विषय का अध्ययन शुरू हुआ स्माल ने ही 1895 में अमेरिकन जर्नल आफ सोशियोलॉजी की स्थापना की यही से समाजशास्त्र विचारधारा संबंधी शिकागो सम्प्रदाय की उत्पत्ती होती है जिसका उल्लेख हम आगे करेंगे। विषय विकास क्रम में कनाडा के मेक गिल विश्वविद्यालय में 1980 में, कैलिफोर्निया के बर्कले विश्वविद्यालय में 1950 में व प्रिस्टन विश्वविद्यालय में 1960 में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना की गयी।

3.2.5.2. शिकागो स्कूल

अमेरिका में सर्वप्रथम सन् **1892 में शिकागों** विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई इस विभाग द्वारा अध्ययन अध्यापन एवं शोध की जो परंपरा विकसित हुई वही कालान्तर में समाजशास्त्रीय जगत में शिकागों सम्प्रदाय के नाम से सुप्रसिद्ध हुई। शिकागों सम्प्रदाय ने विशेषतया नगरीय समस्याओं (अपराध, अपचार, गरीबी आदि) के अध्ययन की ओर ध्यान दिया तथा अध्ययन पद्धति के रूप में परिस्थितिकीय व नृविज्ञानीय विधियो का प्रयोग कर शोध अध्ययनों को नया आयाम दिया बाद में इसी सम्प्रदाय के मूल विचारों के आधार पर अन्तर्क्रियावादी परिप्रेक्ष्य का विकास हुआ।

इस सम्प्रदाय के संस्थापक एल्बिन स्मॉल रहे। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों में ई0डब्लू बर्गेस, जे0एच0मीड, रॉडरिक मैकेन्जी, पार्क, डब्ल्यू आई थॉमस, लुई वर्थ एवं एफ नैनकी का नाम उल्लेखनीय है सन् 1895 में इस सम्प्रदाय द्वारा समाजशास्त्र की प्रथम पत्रिका अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया सन् 1905 में अमेरिकी समाजशास्त्रीय परिषद की स्थापना की गई।

शिकागों सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता दार्शनिक व्यवहारिकता है जो घटनाओं के प्रत्यक्ष अवलोकन व नगरीय -सामाजिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण पर जोर देता है इस सम्प्रदाय ने समाजशास्त्र के क्षेत्र कार्य व आनुभविक अध्ययनों की न केवल ठोस आधारशिला रखी अपितु समाजशास्त्र में इसे अध्ययन अनुसंधान की एक प्रमुख पद्धति के रूप में स्थापित किया। राबर्ट पार्क का यह कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है। उन्होंने अपने विद्यार्थियों से कहा कि ''जाओ और विलासितापूर्ण होटलों के बरामदों और घर पर मकानो की सीढ़ियों पर बैठो, गोल्ट कोस्ट की बेचों और गंदी बस्तियों के बिस्तरों पर बैठो, नृत्य संगीत घरो व मदिरालयो में बैठो संक्षेप में हर कहीं जाओ और वास्तविक शोध हेतु अपनी पेन्टो की बैठके खराब करो। इसी निर्देश के फलस्वरूप अनेक प्रतिष्ठित आनुभविक अध्ययनों की शुरूआत हुई। उनमें से प्रमुख हैं - फ्रेडरिक थ्रेसर की द गैंग (1927), क्लिफोर्ड शॉ की द जैक रोलर (1930), नेल्स एण्डरसन की दोबो (1923) व हार्वे ज़ोरबाघ की 'द गोल्ड कोस्ट एण्ड द स्लम'। इन अध्ययनों द्वारा सहभागिक अवलोकन व वैयक्तिक अध्ययन विधि में काफी संशोधन व परिमार्जन किया गया।

शिकागो परंपरा ने न केवल गुणात्मक शोध अपितु परिमाणात्मक शोध में भी अपनी विशिष्टता प्रदर्शित की है अनेक सामाजिक सर्वेक्षणों व समुदाय आधारित सांख्यिकीय शोध व सामाजिक क्षेत्रों के संख्यात्मक निर्धारण द्वारा इस तथ्य की पुष्टि होती है। यही नहीं ई.सी. ह्यूजेज़ के नेतृत्व में इस परंपरा में सैद्धान्कि शोध के क्षेत्र में भी काफी काम हुआ ह्यूजेज़ ने व्यवसायों व पेशों के समाजशास्त्र के क्षेत्र में कार्य कर कुछ सैद्धान्कि प्रस्थापनाएं प्रस्तुत की है।

इस प्रकार शिकागो सम्प्रदाय ने जहां एक ओर अनुभविक समाजशास्त्र को एक सुस्पष्ट स्वरूप व कलेवर प्रदान किया वहीं दूसरी ओर इसे सामाजिक मनोविज्ञान के एक विशिष्ट स्वरूप के उद्भव का श्रेय भी जाता है। जार्ज हरबर्ट मीड के नेतृत्व में सामाजिक अन्तर्क्रिया जिस प्रकार व्यक्तिगत पहचान व स्व को विकसित एवं प्रभावित करती है। इस संबंध में मीड व बाद में हरबर्ट ब्लूमर ने सामाजिक अन्तर्क्रियावाद के सिद्धांत को विकसित किया।

3.2.6. समाजशास्त्र का सैद्धांतिक विभाजन

1980 के दशक से पहले अमेरिका के समाजशास्त्र में माइक्रो व मैक्रो को लेकर दो धड़ उभर कर आये एक माइक्रो सिद्धांत की श्रेणी में आते है। दूसरे मैक्रो सिद्धान्तों की श्रेणी में। इन दोनों के एकीकरण का प्रयास भी किया गये। जिसे टर्नर मेसो सिद्धान्तीकरण कहते है यद्यपि इन दोनों के बीच स्पष्ट रेखा खीचना कठिन है लेकिन अमेरिका में ये समाजशास्त्र के उदय को समझने हेतु माइक्रो व मैक्रो दोनों के सिद्धांत को समझना आवश्यक हो जाता है इनकी संक्षेप में व्याख्या निम्नलिखित है।

3.2.6.1. मैक्रो/वृहत्/स्थूल समाजशास्त्र

वृहत् समाजशास्त्र में सामाजिक व्यवस्थाओं तथा इन व्यवस्थाओं के आन्तरिक एवं इनके परस्पर निर्भर संबंधो का अध्ययन किया जाता है। मोटे रूप में, स्थूल समाजशास्त्र अपना ध्यान भूमंडलीय एवं ऐतिहासिक प्रक्रियाओं पर केन्द्रित करता है। आधुनिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन इसका एक उदाहरण है। यह उपागम व्यक्तियों की क्रियाओं या लघु समूहों के अध्ययन के विपरीत बड़े सामाजिक संगठनों जैसे सम्पूर्ण समुदाय, समाज, सैनिक संगठन, नगर आदि के विश्लेषण पर बल देता है। इसमें ऐसे सामान्य नियमों की खोज करने का प्रयास किया जाता है जो सम्पूर्ण मानव समाज पर लागू होते हों। मैक्रो सिद्धांतवेत्ताओं का अध्ययन, भूभाग, समय संख्या तीनों दृष्टि से विस्तृत होता है। सामान्यतया मैक्रो समाज वैज्ञानिक, ऐतिहासिक और आनुभविक विधि का प्रयोग कर निगमनात्मक सिद्धान्तों की रचना करते है। प्रकार्यवाद व प्रणाली सिद्धांत मैक्रो समाजशास्त्र के ही कुछ उदाहरण है। अमेरिका में मर्टन पारसन्स ऐसे ही विद्वान है जो इस परंपरा के प्रणेता रहे हैं।

3.2.6.2. माइक्रो समाजशास्त्र

सूक्ष्म समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु अन्तर्क्रिया व इनकी अर्थ संरचना है। सूक्ष्म समाजशास्त्र के अनुसरणकर्ता विद्वान समाज की बुनियादी इकाई व्यक्ति और उसकी क्रियाओं को मानते है। अतः व्यक्तियों की आमने सामने की सामाजिक अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन ही सूक्ष्म समाजशास्त्रियों का प्रमुख विषय है। माइक्रो सिद्धांतकार लघु समुदायों के अध्ययन द्वारा वृहत् समाजो को समझने का प्रयास करते है। सूक्ष्म उपागम के अध्ययनकर्ता मनोवैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके आगमनात्मक नियमों की रचना करते है। मीड ब्लूमर होम्स, शूटस, गोफमेन, गारफिंकल आदि विद्वानों ने इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए सांकेतिक अन्तर्क्रियावाद, संरचनात्मक-प्रकार्यवाद, विनिमय सिद्धांत, एथनोमेथडोलॉजी फिनोमेनोलॉजी जैसे नये-नये परिप्रेक्ष्यों को जन्म दिया है

3.2.6.3. समाजशास्त्र की प्रत्यक्षवादी परंपरा का अमेरिका में विकास

प्रत्यक्षवादी परंपरा को सर्वाधिक स्वीकृति व इसका प्रसार अमेरिका में ही हुआ इस विषय की दो सबसे व्यापक रूप से उद्भूत पत्रिकाएं, अमेरिकन जर्नल आफ सोशियोलॉजी और अमेरिकन सोशियोलॉजिकल रिव्यू मुख्य रूप से प्रत्यक्षवादी परंपरा में अनुसंधान प्रकाशित करती है। जिसमें से ASR अधिक विविधता को दर्शाती है 20वीं सदी ने समाजशास्त्र में मात्रात्मक पद्धतियों के प्रयोग में सुधार दिखा। अनुदैर्ध्य अध्ययन के विकास ने, जो कई वर्षों अथवा दशकों के दौरान एक ही जनसंख्या का अनुसरण करती है, शोधकर्ताओं को लंबी अवधि की घटनाओं के अध्ययन में सक्षम बनाया और कार्य कारण सिद्धांत का निष्कर्ष निकालने के लिए शोधकर्ताओं की क्षमता में वृद्धि की। नए सर्वेक्षण तरीको द्वारा उत्पन्न समुच्चय डाटा के आकार में वृद्धि का अनुगमन इस डाटा के विश्लेषण के लिए नई सांख्यिकीय तकनीकों के अविष्कार में हुआ। इस प्रकार के विश्लेषण आमतौर पर सांख्यिकीय साफ्टवेयर, संकुल जैसे SAS या SPSS की सहायता से किये जाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका ने सी राइट मिलन की प्रवृत्ति और उनके पॉवर एलीट के अध्ययन में उनके मुताबिक अधिक स्वतन्त्र अनुभवजन्य समाजशास्त्र का एक सूक्ष्म पुनरूत्थान दिखायी देता है।

3.2.7. अमेरिका में समाजशास्त्र का अकादमिक संस्थानीकरण

अमेरिका में गृहयुद्ध के उपरान्त वहा का समाज विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा था जिसने वहां के व्यक्तियों के विचारों को नई दिशा प्रदान की। सामाजिक संरचना के पूरी तरह ध्वस्त हो जाने के कारण वहां के विद्वानों के सामने यह चुनौती आ गयी कि समाज की मूलभूत समस्याओं के समाधान पर विचार किया जाये तथा सामाजिक संबंधों को एक बार फिर से पुननिर्मित किया जाये। ये समय था नये संबंधों के निर्माण व समाज के पुनर्गठन का।

परिणामस्वरूप 1865 में बोस्टन में अमेरिका सोशल साइंस एसोसियेशन की स्थापना होती है जो कि गृहयुद्ध के बाद उपजे सामाजिक विकृतियों संबंधी प्रश्नों के जवाब देता है। ये अमेरिका में ऐसा समय था जब

स्नातक छात्रों की बाढ़ सी आ गयी थी लेकिन कोई भी स्नातक यहां की सामाजिक संरचना व परिस्थिति के कारण अमेरिका में रह कर अध्ययन अध्यापन नहीं करना चाहता था और सभी ने 1870 तक जर्मन विश्वविद्यालय को अपने अध्ययन का केन्द्र चुना।

तत्पश्चात् अमेरिका के शिकागों विश्वविद्यालय के प्रोफेसर स्माल ने अध्ययन अध्यापन शुरू किया। स्माल जर्मन विश्वविद्यालय के 15 शिक्षाविदों के साथ अमेरिका में सामाजिक अध्ययनों को एक नयी दिशा व नई ऊर्जा के साथ शुरू किया और जर्मन विश्वविद्यालय की शिक्षा व नवीन सिद्धान्तों को अमेरिका में विस्तारित किया। साथ ही सामाजिक अध्ययन में नई विधियों का भी उपयोग किया। जिससे अमेरिकी छात्र बौद्धिक उत्तेजना के सम्पर्क में आये और सामाजिक विज्ञान का अध्यापन नये कलेवर में शुरू हुआ। अमेरिका में आंशिक रूप से समाज का अध्ययन की शुरूआत 1827 में फ्रांसिस लाइबर के आगमन से मानी जाती है जिन्होंने 1856 से 1860 तक कोलम्बिया विश्वविद्यालय में इतिहास, राजनति व अर्थशास्त्र विभाग की अध्यक्षता की और 1852 में 'Civil Liberty and Self Government' किताब की रचना की।

अमेरिका के विद्वानों पर स्पष्ट रूप से जर्मन विश्वविद्यालय का प्रभाव था और यहां सामाजिक अध्ययन में रूचि उत्पन्न करने में अंग्रेजी प्रभाव व जर्मन विचार ने उल्लेखनीय भूमिका निभायी। तीन समाजशास्त्रियो ने अमेरिका में समाजशास्त्र के विकास में और अमेरिकी शिक्षाविदों पर अपना प्रभाव छोड़ा। इसमें एक फ्रांसीसी व दो अंग्रेज थे। फ्रांसीसी में ऑगस्ट कॉम्ट ने Positive Philosophy के माध्यम से जिसका अमेरिकन विद्वान Harriet Martineau's ने 1853 में अनुवाद किया अंग्रेज में स्पेन्सर जिसकी कृति Study of Sociology 1873 और Principles व Sociology 1874 में प्रकाशित हुयी। अंग्रेजी विद्वान Bagehot us Physics and Politics का 1869 में प्रकाशन करवाया। उपरोक्त सभी समाजशास्त्री व उनके कार्यों ने अमेरिका में समाजशास्त्र के विषय के रूप में विकास हेतु एक आधार प्रदान किया।

तत्पश्चात् अमेरिका में नये आवेग से समाजशास्त्र का विकास प्रारम्भ हुआ और इसी क्रम में Lester F. Ward जो कि वाशिंगटन में सरकार द्वारा नियुक्त एक पैलियो बोटैनिक थे 1883 में Dynamic Sociology की रचना की। इनकी रचना कॉम्ट व स्पेन्सर से प्रभावित थी। वार्ड की इस कृति ने अमेरिकी समाज व यहां के विद्वानों पर गहरा प्रभाव छोड़ा।

3.2.7.1. अमेरिकन समाजशास्त्र की विशेषता

अमेरिका में शुरूआती समाजशास्त्रियों में सभी अन्य क्षेत्रों से ही सम्बन्धित थे जैसे समनर अर्थशास्त्री थे, स्माल राजनीति व इतिहास से सम्बन्धित थे। गिडिग्स पत्रकारिता में प्रशिक्षित थे साथ ही कुछ वर्षों तक अमेरिकन इकोनामिक एसोसियेशन में भी सक्रिय सदस्य के रूप में काम किया वहीं रॉस भी अर्थशास्त्री ही थे। स्माल व रॉस पर जर्मन विचारों व सिद्धान्तों का प्रभाव अधिक था विशेषतः कॉम्ट और स्पेन्सर के विचारों का।

अमेरिकी समाजशास्त्री **वार्ड** ने Dynamic Sociology की रचना 1883 में की जिसमें उनके परिपक्व विचारों की छवि स्पष्ट दिखायी देती है इस किताब में कॉम्ट व स्पेन्सर के विचारों का प्रभाव भी दिखायी देता है। साथ ही उनके विचारों में सुधार का प्रयत्न भी। आपने सभ्यता व संस्कृति के विकास के मानसिक कारकों के विषय में भी विचार दिये उनके सिद्धान्तों में वैज्ञानिकता का समावेश है। यद्यपि इनके विचारों का अनुसरण अमेरिकी विद्वानों द्वारा कम दिखायी देता है तथापि इन्होंने सामाजिक विकास में मानसिक तत्व की उपयोगिता को बता कर विचार को एक आधार प्रदान किया।

विलियम ग्राह्म समनर समाजशास्त्र के अकादमिक जनक के नाम से विख्यात समनर ने येल विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू किया। तीन साल तक ये सहायक निदेशक के रूप में कार्य किये तत्पश्चात् चर्च के एकरेक्टर के रूप में सन् 1910 में उनकी मृत्यु के समय में येल विश्वविद्यालय में राजनीतिक व सामाजिक विज्ञान के प्रोफेसर रहे लेकिन अपनी मृत्यु के पहले इन्होंने समाजशास्त्र के विकास को समर्पित दो किताब पहली 1883 में प्रकाशित What Social Class Owe each other और 1906 में प्रकाशित Folkways समनर ने जनरीतियों का विश्लेषण करते हुए लिखा कि प्रत्येक मानव समूह की अपनी उपर्युक्त जनरीतियाँ, रूढ़ियाँ व संस्थाए होती है जो प्रत्यत्न व मूल के आधार पर किसी विशिष्ट समय एवं परिस्थिति में सबसे उपयुक्त स्वीकार कर ली जाती है साथ ही समनर ने अन्तः समूह व वाह्य समूह तथा समूह केन्द्रता की अवधारणा प्रस्तुत की। समनर ने मानवीय आक्रमकता व प्रतिस्पर्धा को मानवीय विकास व प्रगति की कुंजी माना Albion W.K. Small अमेरिकी समाजशास्त्रियों में अग्रणी समाजशास्त्री रहे। इनके आगमन ने अमेरिका में समाजशास्त्र के अध्ययन को नयी दिशा प्रदान की। कालेज से स्नातक के उपरान्त ये न्यूटन सोशियोलॉजिकल इंस्टीट्यूट में प्रवेश लिये साथ ही जर्मनी व इग्लैण्ड में इतिहास व राजनैतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन भी किया। जर्मन से लौटने पर ब्वसइल विश्वविद्यालय में इतिहास व अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किये गये। कुछ समय ये Johns Hopkins University में भी सेवा दिये और लौटने के बाद Colby विश्वविद्यालय में संस्था के प्रेसीडेंट चुने गये। तब स्माल समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम का परिचय देते है और उसी समय अपने विद्यार्थियों को An Introduction to the Science of Sociology संबंधी स्वयं के द्वारा तैयार पाठ्यक्रम में परिचित करवाते हैं। कुछ समय अपना योगदान शिकागो विश्वविद्यालय में भी समाजशास्त्र के विकास हेतु देते हैं।

मुख्यतया स्माल का कार्य समाजशास्त्र के इतिहास संबंधी रहा। जिसे उन्होंने अपने मोनोग्राफ 'समाजशास्त्र के 50 वर्ष अमेरिका में' जो कि मई 1916 में American Journal of Socilogy में प्रकाशित हुआ, The future व Sociology का प्रकाशन 1920 में अमेरिकन सोशियोलाजिकल सोसाइटी में प्रकाशित हुआ और इनकी अन्तिम किताब Origin of Sociology अमेरिका में समाजशास्त्र के विकास प्रक्रिया का सर्वोत्कृष्ठ कृति है।

एक अन्य अमेरिकी समाजशास्त्री Franklin Henry Giddings है जिन्होंने समाजशास्त्र के पहला कोर्स 1890 में Bryn Mawr में शुरू किया। इनकी पृष्ठभूमि स्माल व समनर से अलग थी।

3.2.7.2. अमेरिकी समाजशास्त्र की प्रवृत्तियाँ

1. अमेरिका में समाजशास्त्र की अध्ययन क्षेत्र की सीमा का परिभाषित किया गया।
2. सामाजिक संबंधों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिभाषित किया।
3. सामाजिक वर्गो, संस्थाओं व प्रक्रियाओं के विश्लेषण की शुरूआत हुयी।
4. समाजशास्त्र की प्रकृति का तात्कालिक विश्लेषण किया गया।
5. प्रगति का अर्थ परिभाषित किया गया।
6. समाजिक विकास के लिए इसे सामाजिक मानव विज्ञान के रूप में सबसे उपयोगी सामग्री मिली।
7. प्रत्यक्षवादी परंपरा की शुरूआत व इसका उपयोग प्रारम्भ हुआ।
8. प्रघटनाशास्त्र, लोकविधि विज्ञान, नव प्रकार्यवाद आदि माइक्रो सिद्धांत अमेरिकी समाजशास्त्र की ही देन है।

3.2.8. सारांश

इस प्रकार 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध में समाजशास्त्रीय सैद्धान्तीकरण में अप्रत्याशित परिवर्तन देखने को मिलता है। ये परिवर्तन वस्तुतः कुछ प्रथम विश्व युद्ध, रूस की क्रान्ति व अन्य आर्थिक अनिश्चिताओं के परिणामस्वरूप है। जेन्डर, प्रजाति, असमानता, प्रगति व क्रान्ति के मुद्दे प्रमुख हैं। बदलती सामाजिक परिस्थितियों ने निरन्तर नये विचार के आयाम प्रदान किये। इसी क्रम में जब व्यक्तियों के दिन प्रतिदिन के व्यवहार व सन्दर्भो से उपजी सामाजिक वास्तविकता का बोध करने हेतु परिणामात्मक उपागम व वस्तुनिष्ट उपागम उपयुक्त नहीं थे तो सूक्ष्म समाजशास्त्री उपागम का उदय हुआ। इसी प्रकार किसी भी विषय को तात्कालिक स्थितियां, आवश्यकताएं व विचारों द्वारा जन्म मिलता है समाजशास्त्र भी इन्ही कुछ परिस्थितियों का परिणाम है। यूरोप में जन्मा यह विषय अमेरिका में अपने सम्पूर्ण आकार में आता है और एक विषय के रूप में पूर्णतः स्थापित हो जाता है। आज हम जिस समाजशास्त्र का अध्ययन करते है वह अमेरिकी समाजशास्त्र की ही देन है। विभिन्न नामों से जाना जाने वाला व भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्र को समाहित करने वाले इस शास्त्र को अमेरिका में एक नाम व निश्चित कार्य क्षेत्र मिला। इस प्रकार इस इकाई में उपर्युक्त विवरण के द्वारा हम जान पाये कि समाजशास्त्र के उद्भव का कारण थे किन परिस्थितियों ने इसको जन्म दिया अमेरिका में इसका एक विषय के रूप में किस प्रकार अध्ययन प्रारम्भ हुआ और कौन अमेरिका में इसके अग्रदूत के रूप में रहे।

3.2.9. बोध प्रश्न

3.2.9.1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. अमेरिका में समाजशास्त्र का उदय किस समय हुआ?

(क) 18वीं सदी

(ख) 19वीं सदी

(ग) 20वीं सदी

(घ) 21वीं सदी

2. समाज शास्त्र विषय के रूप अध्ययन सर्वप्रथम कहा आरम्भ हुआ-

(क) येल विश्वविद्यालय

(ख) केन्सास विश्वविद्यालय

(ग) कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय

(घ) शिकागो विश्वविद्यालय

3. शिकागो सम्प्रदाय का जनक कौन था?

(क) समनर

(ख) वार्ड

(ग) स्माल

(घ) गिडिग्स

4. समाजशास्त्र का अकादमिक जनक किसे कहा जाता है?

(क) समनर

(ख) वार्ड

(ग) आगवर्न

(घ) कोजर को

3.2.9.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका में समाजशास्त्र का उदय कब व किसके द्वारा किया गया?
2. शिकागो सम्प्रदाय से आप क्या समझते हैं?
3. अमेरिकी समाजशास्त्रियों के नाम वउनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।
4. उपागम की दृष्टि से समाजशास्त्र को कितने भाग में बाँटा गया है
5. अमेरिका के विश्वविद्यालयों के समाजशास्त्र विषय के अध्ययन आरम्भ को क्रम से दर्शाइए।

3.2.9.3. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका में समाजशास्त्र के संस्थानीकरण के विषय में विस्तार से बताइए।
2. समाजशास्त्र के उदय के चरण व कारणों का उल्लेख कीजिए।
3. किन्हीं दो अमेरिकन समाजशास्त्रियों के नाम व उनके कार्यों का विवेचन कीजिए।

3.2.10. संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, एम.एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2003). *समाजशास्त्र*. आगरा: प्रतियोगिता साहित्य.

2. नाथ, मुकर्जी. रवीन्द्र. (2002). *उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धांत*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

3. सिंह, जे.पी. (2008). *समाजशास्त्र अवधारणाएं व सिद्धांत*. दिल्ली: पी.एच.आई. लर्निंग लिमिटेड.

4. रावत, हरिकृष्ण. (2015). *उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश*. दिल्ली: रावत पब्लिकेशन.

इकाई-3 : एक विषय के रूप में समाजशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

3.3.1. उद्देश्य
3.3.2. प्रस्तावना
3.3.3. एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का उद्भव
3.3.4. समाजशास्त्र का परिचय
3.3.4.1. परिभाषा
3.3.4.2. समाजशास्त्र की प्रकृति
3.3.4.3. समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति
3.3.4.4. समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र
3.3.5. समाजशास्त्र का विकास
3.3.5.1. समाजशास्त्र का अनौपचारिक विकास
3.3.5.2. समाजशास्त्र का औपचारिक विकास
3.3.5.3. समाजशास्त्र का अकादमिक विकास
3.3.6. समाजशास्त्र का महत्व
3.3.7. सारांश
3.3.8. प्रमुख शब्दावली
3.3.9. संबंधित प्रश्न
3.3.10. प्रश्नोत्तर
3.3.11. संदर्भ ग्रंथ

3.3.1. उद्देश्य

इस इकाई में विषय के रूप में समाजशास्त्र की पृष्ठभूमि, उद्भव एवं विकास पर विस्तृत चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपके द्वारा संभव होगा :

1. विषय के रूप में समाजशास्त्र के उद्भव तथा पृष्ठभूमि को समझना।
2. समाजशास्त्र की परिभाषा, विषय वस्तु एवं वास्तविक प्रकृति को समझना।
3. समाजशास्त्र के विकास की विवेचना करना।
4. समाजशास्त्र के महत्व को स्पष्ट करना।

3.3.2. प्रस्तावना

खण्ड एक की इस इकाई में विषय के रूप में समाजशास्त्र को समझने के लिए उसकी पृष्ठभूमि, उद्भव, परिचय (परिभाषा, प्रकृति, विषय क्षेत्र) विकास एवं महत्व पर विस्तृत चर्चा की गयी है। सामाजिक चिंतन में तार्किता के स्थापना के बाद समाजशास्त्र जैसे विशेष सामाजिक विज्ञान की आवश्कयता को बल मिला। सामाजिक चिंतन में स्थापित यह तार्किता दीर्घगामी मानवीय चिंतन के परिणाम थी, जो पुनर्जागरण काल से शुरू होकर प्रबोधन काल तक परिपक्वता को प्राप्त कर लेता है। इस तरह यह काल अनौपचारिक रूप से समाजशास्त्र का विकास करता है। इस इकाई के भाग 4.4 में समाजशास्त्र के इस अनौपचारिक विकास के साथ-साथ 1838 में समाजशास्त्र के उद्भव के बाद औपचारिक समाजशास्त्र के विकास की विस्तृत चर्चा की गयी है। भाग 4.5 में वर्तमान समय में विषय के रूप में समाजशास्त्र की आवश्यकता एवं महत्व को समझाने का प्रयास किया गया है।

3.3.3. एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का उद्भव

एक विषय के रूप में समाजशास्त्र भले ही नया है लेकिन इसकी पृष्ठभूमि काफी पुरानी है। सामान्य रूप से देखा जाय तो सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मनुष्य के सामाजिक प्राणी बनने के साथ ही शुरू हो गया था। बौद्धिक प्राणी होने के कारण मनुष्य में जिज्ञासा की प्रवृत्ति मूल रूप से पायी जाती है। जिसके कारण वह अपने आस-पास घटने वाली घटनाओं को समझने का प्रयास करता है उसके बारे में चिंतन करता है, अध्ययन करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते सामाजिक अन्तःक्रिया और तानो-बानो का अध्ययन मनुष्य के इसी मौलिक प्रवृत्ति का नतीजा था जो समय के साथ व्यवस्थित और परिपक्व होता गया। देखा जाय तो प्लेटो एवं अरस्तु जैसे सामाजिक विचारकों ने प्राचीन काल के यूरोपीय समाज का व्यापक रूप से अध्ययन किया। लेकिन इनका अध्ययन एवं सामाजिक चिंतन तर्क के बजाय धर्म एवं दर्शन पर आधारित था। समाजशास्त्र की जड़े उस सामाजिक चिंतन पर आधारित है। जो तर्क द्वारा किया जाता है। जिसकी शुरूवात पुनर्जागरणकाल से होती है। जहॉ यूरोपीय समाज में प्राकृतिक एवं भौतिक घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक घटनाओं का भी तार्किक चिंतन का प्रयास किया जाने लगा। प्राकृतिक एवं भौतिक घटनाओं के तार्किक चिंतन के परिणाम स्वरूप विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार एवं खोजे हुई जिससे समाज में अमूल-चूल परिवर्तन आया इसे वैज्ञानिक क्रान्ति कहा गया। वैज्ञानिक क्रान्ति के बाद यूरोप में वैज्ञानिक ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष का तेजी से विकास हआ जिसके कारण यूरोप में मशीनीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई। जिसका सर्वाधिक लाभ ब्रिटेन को मिला। क्योकि ब्रिटेन में अनुकूल भौगोलिक परिस्थित, कोयले एवं खनिज के रूप मे प्रर्याप्त प्राकृतिक संसाधन थे। साथ-साथ उसे भारत जैसे कई औपनिवेशिक देशों से अपरिमित पूँजी एवं व्यापारिक क्षेत्र प्राप्त हुएं। इस तरह मशीनीकरण, पूँजी, बाजार एवं व्यावस्थित वाणिज्यिक प्रणाली का ब्रिटेन में तार्किक समन्वय हआ। परिणाम स्वरूप इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति की

शुरूआत होती है। वहीं दूसरी ओर पुनर्जागरण काल के समय साहित्य, कला, दर्शन में स्थापित तार्किक मूल्य 18 वीं शताब्दी में वाल्टेयर, मान्टेस्क्यू, हॉब्स, लॉक, रूसो आदि जैसे सामाजिक विचारकों के माध्यम से फ्रांस में अधिक परिपक्व एवं प्रभावशाली हो रहे थे परिणाम स्वरूप फ्रांस की जनता में जागरूकता आ रही थी। वें अपने अधिकारों के प्रति अधिक मुखर हो रहे थे। राजा, पादरी, सामन्त वर्ग के अत्याचार शोषण कि खिलाफ जनता का अंसतोष 14 जुलाई 1789 को क्रान्ति का रूप धारण कर लेती है। ब्रिटिश समाजशास्त्री बाटोमोर का यह कथन अत्यन्त सार्थक सिद्ध होता है कि 18 वीं शताब्दी की बौद्धिक परिस्थितियां समाजशास्त्र के उदय में सहायक बनी। फ्रांसीसी क्रान्ति एवं औद्योगिक क्रान्ति ने फ्रांस के समाज में अनेक सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तन लाएं। जिसने फ्रांसीसी समाज में नवीन सामाजिक समस्याओं एवं आवश्यकताओं को जन्म दिया। परिणाम स्वरूप फ्रांसीसी चिंन्तको द्वारा समाज के तार्किक अध्ययन पर बल देना शुरू किया जिससे फ्रांस में इन परिवर्तनो को ठीक तरह से समझकर सामाजिक नियमों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जा सके। कॉम्ट एवं सेंटसाइमन ऐसे प्रमुख विचारक थे जिन्होंने सर्वप्रथम सामाजिक घटनाओं को भी प्राकृतिक एवं भौतिक घटनाओं की तरह तार्किक एवं व्यावस्थित शुरू किया। **कॉम्ट पर बेन्जामिन फ्रांकलिन एवं सेंट साइमन** के विचारों का व्यापक प्रभाव पड़ा। 1818 में कॉम्ट सेंट साइमन के संपर्क में आये 1822 में **कॉम्ट एवं सेंट साइमन** ने मिलकर A Plan of the scientific operation necessary for reorganization of society. पुस्तक में एक नये सामाजिक विज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत की 1824 में कॉम्ट ने इस नये सामाजिक विज्ञान को 'सामाजिक भौतिकी' नाम दिया। इसी बीच बेल्जियम के भौतिक शास्त्री एडोल्फ क्वेटलेट ने An essay on social physics नाम से पुस्तक प्रकाशित कर दी। जिसके कारण आगस्ट कॉम्ट ने 1838 ई0 में समाज के इस नये विज्ञान का नाम सामाजिक भौतिकी के स्थान पर सामाजशास्त्र कर दिया। जो **लैटिन भाषा के शब्द सोसियस और ग्रीक भाषा के शब्द लोगस** से मिलकर बना है। इस तरह 1838 में समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में स्थापित हुआ लेकिन इसके अकादमिक विषय के रूप में स्थापित होने में समय लगा।

3.3.4. समाजशास्त्र का परिचय

एक विषय के रूप समाजशास्त्र के विकास को समझने से पहले उसकी परिभाषा, प्रकृति, क्षेत्र स्वरूप और महत्व का सूक्ष्मता से अध्ययन आवश्यक है।

3.3.4.1. परिभाषा

एक विषय के रूप मे समाजशास्त्र को पूर्ण रूप से समझने के लिए आवश्यक है कि इसकी परिभाषा को ठीक ढंग से समझा जाय। संस्थापक समाजशास्त्रियों की प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित है।

1. आगस्ट कॉम्ट- आगस्ट कॉम्ट ने समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए कहा कि - समाजशास्त्र सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति का विज्ञान है।

2. दुर्खीम के अनुसार- समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधानों का विज्ञान है।

3. मैक्सबेबर के अनुसार - समाजशास्त्र सामाजिक क्रियाओं का विवेचनात्मक अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

समाजशास्त्र की परिभाषा को लेकर समाजशास्त्रियों के बीच काफी मतभिन्नता एवं विविधता है। अध्ययन कि सरलता के लिए समाजशास्त्र की सभी परिभाषाओं को चार प्रमुख भागों में विभाजित करके स्पष्ट किया जा सकता है।

1. समाजशास्त्र समाज के अध्ययन के रूप में - इस वर्ग के अन्तर्गत ऐसे समाजशास्त्री आते है जो समाजशास्त्र को समाज का क्रमबद्ध एवं व्यवास्थित अध्ययन करने वाला विज्ञान मानते है। जैसे वार्ड, गिडिंग्स, समनर, ओडम आदि

वार्ड - समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।

गिडिंग्स - समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

ओडम - समाजशास्त्र वह विज्ञान है जो समाज का अध्ययन करता है।

2. समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों के अध्ययन के रूप में - ऐसे समाजशास्त्रियों की संख्या सर्वाधिक है जो समाजशास्त्र को सामाजिक संबंधों का अध्ययन करने वाला विज्ञान मानते है जिसके अन्तर्गत मैकाइबर एवं पेज, क्यूबर, वानबीज आदि जैसे समाजशास्त्री आते है।

मैकाइबर एवं पेज - समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धो के विषय में है, संबंधों के इसी जाल को समाज कहते है।

3. समाजशास्त्र समूहों के अध्ययन के रूप में - कुछ समाजशास्त्री समाजशास्त्र को सामाजिक समूहों का अध्ययन करने वाला विज्ञान मानते है। जिनमें प्रमुख रूप से जानसन, नोब्स, हाइन, फ्लेमिंग आदि है।

जानसन - समाजशास्त्र सामाजिक समूहों का विज्ञान है, सामाजिक समूह सामाजिक अन्तः क्रियाओं की ही एक व्यवस्था है।

4. समाजशास्त्र सामाजिक अन्तःक्रियाओं के अध्ययन के रूप में - गिलिन-गिलिन, गिन्सवर्ग, जार्ज सीमेल आदि जैसे कुछ समाजशास्त्रियों ने सामाजिक अन्तःक्रिया को समाज का आधार मानते हुए समाजशास्त्र को सामाजिक अन्तः क्रिया का अध्ययन करने वाला विज्ञान कहा है।

3.3.4.2. समाजशास्त्र की प्रकृति

एक विषय के रूप में समाजशास्त्र विज्ञान है कि नही, विज्ञान है तो किस रूप में को समझने के लिए समाजशास्त्र की प्रकृति का अध्ययन आवश्यक है। समाजशास्त्र की प्रकृति को लेकर समाजशास्त्रियों के बीच मतभिन्नता है। कॉम्ट, दुर्खीम, मैक्स बेबर, पैरोटो आदि जैसे समाजशास्त्री समाजशास्त्र को विज्ञान मानते है। अगस्ट कॉम्ट ने तो अपने विज्ञानो के संस्तरण सिद्धांत से स्पष्ट किया कि समाजशास्त्र एक जटिल विज्ञान है,

जो तार्किक एवं वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से समाज का अध्ययन करता है यह विज्ञानों की रानी है। इन समाजशात्रियों का मानना है कि समाजशास्त्र में प्राकृतिक विज्ञानो जैसी विशेषता है वह सामाजिक घटनाओ का अध्ययन अवलोकन, परीक्षण, वर्गीकरण आदि जैसी वैज्ञानिक पद्धतियो के माध्यम से करके कार्य कारण संबंधों की विवेचना करता है। वहीं कुछ समाजशास्त्री इसकी वैज्ञानिकता पर प्रश्न चिन्ह उठाते हुए कहते है कि प्राकृतिक विज्ञानों की विषय वस्तु मूर्त एवं भावना रहित है। वहीं समाजशास्त्र की विषय वस्तु सामाजिक तानों बानों से बने होने के कारण अमूर्त है। एवं मानवीय भावनाओं से प्रभावित होने वाला है। इस लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन में प्राकृतिक विज्ञानो जैसी वैषयिकता एवं वैज्ञानिकता रख पाना मुश्किल है। समाजशास्त्री वीरस्टीड ने अपनी पुस्तक द सोशल आर्डर में विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की इस तरह की समस्याओं पर बात की है। विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित है-

1. सामाजिक घटनाओं की जटिलता एवं परिवर्तनशीलता
2. सामाजिक घटनाओं की अमूर्तता
3. सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में वस्तुनिष्ठता का अभाव
4. सामाजिक तथ्यों के मापन में कमी
5. सामाजिक घटनाओं में सार्वभौमिकता का अभाव

3.3.4.3. समाजशास्त्र की वास्तविक प्रकृति

1. समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है न कि प्राकृतिक विज्ञान - समाजशास्त्र मूलतः सामाजिक तानों-बानों का अध्ययन करता है जिसकी प्रकृति भौतिक एवं प्राकृतिक घटनाओं से एकदम अलग है यही कारण है कि विज्ञान के रूप में समाजशास्त्र की प्रकृति सामाजिक है न कि प्राकृतिक

2. समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है न कि व्यावहारिक - समाजशास्त्र क्या है? का अध्ययन करता है क्या होना चाहिए का नही, इस तरह यह सामाजिक घटनाओं का तार्किक अध्ययन करके सिद्धान्तों का निर्माण तो करता है लेकिन सिद्धान्तों को व्यावहरिकता में लाने का कार्य समाजशास्त्र नही करता।

3. समाजशास्त्र अमूर्त विज्ञान है - समाजशास्त्र की वास्तविक अध्ययन वस्तु सामाजिक ताना-बाना है जिससे मिलकर समाज बना है जिसे देखा नही जा सकता है अर्थात इसकी प्राकृति अमूर्त है इसलिए समाजशास्त्र एक अमूर्त विज्ञान है। जब कि प्राकृतिक विज्ञान मूर्त तथ्यों का अध्ययन करने वाले विज्ञान है।

4. समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है न कि विशेष - समाजशास्त्र सामाजिक संबंधों, क्रियाआंे, प्रक्रियों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। समाज के जो भी कारक इनकों प्रभावित करते है समाजशास्त्र उनका अध्ययन करता है। इस तरह समाजशास्त्र की अध्ययन वस्तु एक कारकीय नही बल्कि बहुकारकीय होने के कारण समाजशास्त्र एक सामान्य विज्ञान है।

5. समाजशास्त्र एक वास्तविक विज्ञान है न कि आदर्शात्मक - समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का अध्ययन पक्षपात रहित होकर करता हैं इसका संबंध मानवीय भावनाओं, आदर्शो अच्छे-बुरे तथा सही-गलत उचित व अनुचित नही।

3.3.4.4. समाजशास्त्र का विषय क्षेत्र

एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का विस्तार क्षेत्र कितना है अर्थात समाजशास्त्र किन संभावित सीमाओं तक समाज का अध्ययन करता है को लेकर समाजशास्त्रियों में काफी मतभिन्नता है अध्ययन की सरलता की दृष्टि से समाजशास्त्र के विषय क्षेत्र निर्धारण के संबंध में समाजशास्त्रियों के मतो को दो भागों में बाटा जा सकता हैं

1. स्वरूपात्मक सम्प्रदाय - इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक जर्मन समाजशास्त्री जार्ज सीमेल है। इस सम्प्रदाय के विद्वानों का मानना है कि समाजशास्त्र अन्य विज्ञानो जैसे भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र की तरह स्वतंत्र एवं विशेष विज्ञान है। सामाजिक संबंधों के विशेष स्वरूप का अध्ययन करता है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक मैक्स बेबर, बीरकान्त, टानीज, वानवीज आदि है।

2. समन्वयात्मक सम्प्रदाय - इस सम्प्रदाय के समाजशास्त्रियों का मानना है कि समाजशास्त्र विशेष विज्ञान न होकर सामान्य विज्ञान है। जिसके प्रमुख समर्थक सोरोकिन, हाबहाउस, दुर्खीम, गिन्सवर्ग, वार्ड, मोटवानी आदि है। इन समाजशास्त्रीयों का मानना है कि समाजशास्त्र समाज के किसी विशेष पहलू अथवा सामाजिक संबंध के स्वरूपों के अध्ययन तक सीमित न होकर समाज का व्यापक दृष्टिकोण से अध्ययन करता है। जिस प्रकार शरीर ऑख, नाक, कान, पैर आदि जैसे शारीरिक अंगों से मिलकर बना है, उसी प्रकार समाज भी आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक, शैक्षिक आदि जैसे समाजिक अंगों से मिलकर बना है। समाज को व्यापक दृष्टिकोण से समझने के लिए समाज के साथ-साथ एक निश्चित सीमा तक इन सामाजिक इकाईयों का अध्ययन भी आवश्यक है। इस तरह अध्ययन वस्तु के आधार पर समाजशास्त्र विशेष विज्ञान न होकर सामान्य विज्ञान है।

3.3.5. समाजशास्त्र का विकास

समाजशास्त्र भले ही एक नया विज्ञान है। लेकिन इसका इतिहास काफी पुराना है, बीरस्टीड इस कथन के आधार पर समाजशास्त्र के विकास का अध्ययन किया जाय तो समाजशास्त्र के विकास के दो स्वरूप सामने आते है। पहला समाजशास्त्र का अनौपचारिक विकास दूसरा समाजशास्त्र औपचारिक विकास।

3.3.5.1. समाजशास्त्र का अनौपचारिक विकास

जब से सामाजिक घटनाओं का अध्ययन व्यस्थित ढ़ग से शुरू हुआ तभी से समाजशास्त्र के अनौपचारिक विकास का प्रारम्भ हो गया था। प्राचीन यूरोपीय समाजिक विचारक प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपाब्लिक (427-347 ई0 पूर्व) तथा अरस्तु ने इथिक्स एंड पॉलिटिक्स (384-322 ई0 पू0) में सामाजिक जीवन से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं एवं घटनाओं का व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत करते हुए परिवारिक

जीवन, रीति-रिवाजे, परम्पराओं, स्त्रियों की स्थिति, सामाजिक संहिताओं (कानून) एवं राज्य आदि का विस्तृत वर्णन किया है। परन्तु उनका यह प्रयत्न वैज्ञानिक कम धार्मिक एवं दार्शनिक अधिक था। सामाजिक चिंतन में लम्बे समय तक धर्म एवं दर्शन का प्रभाव रहा लेकिन 13 वीं शताब्दी तक सामाजिक समस्याओं को तार्किक ढंग से समझने का प्रयत्न किया जाने लगा और धीरे-धीरे सामाजिक घटनाओं के अध्ययन में तर्क का महत्व बढ़ता गया। थामस एक्यूनस तथा दान्ते ने मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना और समाज का व्यवस्थित ढ़ग से संचालित करने की सरकार के आवश्यकता पर जोर दिया। एक्यूनस ने सामाजिक सहयोग, न्याय, ईश्वर, श्रद्धा, एकता आदि का अध्ययन किया। इस काल में यह माना जाने लगा कि सामाजिक घटनाओं एवं सामाजिक परिवर्तन के पीछे कुछ निश्चित नियम कार्य करते है लेकिन इन नियमों को समझने के लिए किसी वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग इस सामाजिक काल तक नही हो पाया। 15 वीं शताब्दी तक यूरोपीय समाज में सामाजिक घटनाओ के अध्ययन में तार्किक एवं वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ जिससे सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि से स्वतंत्र रूप से चिंतन किया जाने लगा। परिणाम स्वरूप विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों जैसे अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, इतिहास आदि का विकास हुआ। प्रबोधन काल के समय बौद्धिक चिंतन में प्रबलता आयी हाब्स, लॉक, तथा रूसो ने सामाजिक समझौते का सिद्धांत दिया। वाल्टेयर तथा मान्टेस्क्यू ने तार्किक, सामाजिक एवं राजनीतिक मूल्यों पर बल दिया। सर थामस मूर ने अपनी पुस्तक 'यूटोपिया' में दिन प्रतिदिन की सामाजिक समस्याओ को समझने का प्रयत्न किया। मालथस ने जनसंख्या सिद्धांत दिया जिसमें जनसंख्या से सम्बन्धित समस्याओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। इस तरह इन विद्वानों के बौद्धिक चिंतन ने समाजशास्त्र के विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि को तैयार किया जिसे समाजशास्त्र का अनौपचारिक विकास भी कहा जा सकता है।

3.3.5.2. समाजशास्त्र का औपचारिक विकास

औपचारिक रूप से समाजशास्त्र के विकास का प्रारम्भ **1838** में **आगस्ट कॉम्ट (1798 से 1857 ई.)** द्वारा समाजशास्त्र की निर्माण के साथ शुरू होता है। आगस्ट कॉम्ट ने ही सर्वप्रथम सामाजिक दर्शन और समाजशास्त्र में अंतर स्पष्ट करते हुए समाजशास्त्रीय प्रणाली का विकास किया। प्रारम्भिक समाजशास्त्र के विकास में कॉम्ट के साथ दुर्खीम, स्पेंसर, बेबर आदि ने व्यापक योगदान दिया। जिन्हें संस्थापक समाजशास्त्री भी कहा जा सकता है। कॉम्ट को समाजशास्त्र का जन्मदाता भले ही कहा जाता हो लेकिन समाजशास्त्र के व्यवस्थित एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथक एक स्वतंत्र एवं वैषयिक विज्ञान बनाने का श्रेय फ्रांसीसी समाजशास्त्री **ईमाइल दुर्खीम (1858-1917 ई0)** को जाता है। ब्रिटिश समाजशास्त्री **हरबर्ट स्पेंसर (1820-1903 ई0)** भी समाजशास्त्र के प्रमुख संस्थापक समाजशास्त्री हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'सिन्थेटिक फिलॉसफी' के एक भाग 'प्रिसिंपल्स ऑफ सोशियोलॉजी' में कॉम्ट के विचारो को मूर्तरूप देने का प्रयत्न किया।जीव विज्ञान से प्रभावित होकर इन्होनें समाजशास्त्र में सामाजिक सावयव एवं सामाजिक उद्विकास का

सिद्धांत दिया। जर्मन समाजशास्त्री **मैक्स बेबर (1864-1920 ई0)** ने भी समाजशास्त्र को विज्ञानो की श्रेणी में स्थापित करने में प्रमुख योगदान दिया। इन्होंने अपने सिद्धांतों के निर्माण में वृहद् के साथ-साथ सूक्ष्म पद्धतियों का भी प्रयोग किया। मैक्स बेबर समाजशास्त्र में वैज्ञानिक पद्धतियो के साथ विषयनिष्ठ अध्ययन के लिए बर्सटेहन जैसी मानविकी पद्धती का भी प्रयोग किया। इटली के समाजशास्त्री विल्फ्रेड परेटो ने समाजशास्त्र को व्यवस्थित बनाने में काफी योगदान दिया।

3.3.5.3. समाजशास्त्र का अकादमिक विकास

1. संयुक्त राज्य अमेरिका - समाजशास्त्र का उद्भव भले ही फ्रांस में हुआ लेकिन अकादमिक विषय के रूप में सबसे पहले एंव सर्वाधिक विकास अमेरिका में ही हुआ। **समनर** के नेतृत्व में सन् 1876 येल विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ। अमेरिका में समाजशास्त्र के विकास मे शिकागो सम्प्रदाय का विशेष योगदान रहा है। सन् 1892 ई. में **ए. डब्ल्यू. स्माल** द्वारा शिकागो विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई। इस विभाग द्वारा जिस समाजशास्त्रीय चिंतन, अध्ययन एवं शोध के दृष्टिकोण का विकास हुआ संयुक्त राज्य अमेरिका में शिकागो सम्प्रदाय के नाम से प्रचलित हुआ। यह सम्प्रदाय मुख्य रूप से नगरीय समस्याओं का अध्ययन करता है। स्माल, वार्ड, कूले, वार्गेस, पार्क, लुई विर्थ, नैनकी, ब्लूमर आदि जैसे समाजशास्त्री इस सम्प्रदाय के समर्थक है।

2. फ्रांस- समाजशास्त्र का उद्भव फ्रांस में हुआ था। लेकिन अकादमिक विकास अमेरिका के बाद सन् 1889 में दुर्खीम के प्रयासो से हुआ। दुर्खीम वास्तव मे कॉम्ट के उत्तराधिकारी के रूप में कार्य करते हुए समाजशास्त्र को अन्य सामाजिक विज्ञानो से पृथक विज्ञान बनाने का प्रयत्न किया। कॉम्ट, दुर्खीम के बाद टार्डे, लीप्ले, पियरे बोर्डियो आदि जैसे समाजशास्त्रियों ने फ्रांसीसी समाजशास्त्र के विकास में सराहनीय योगदान दिया।

2. ब्रिटेन- इंग्लैंड में समाजशास्त्र का अकादमिक विकास सन् 1907 में हुआ। हरबर्ट स्पेंसर, मिल, चार्ल्स बूथ, हाबहाउस, वेस्टरमार्क, मानहीम, आदि जैसे समाजशास्त्रियों ने इंग्लैंड में समाजशास्त्र के विकास के लिए कार्य किया।

3. जर्मनी- जर्मनी में समाजशास्त्र का अकादमिक विकास टानीज, वानबीज, मैक्सवेबर, बीरकान्त, सीमेल, आदि के प्रयासों से 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों मे हुआ। जर्मनी के समाजशास्त्रीय विकास में फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय का विशेष योगदान है। जहां सन् 1923 में एक सामाजिक अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गयी। जो बाद में फ्रैकफर्ट सम्प्रदाय के नाम से जाना गया। यह सम्प्रदाय मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन करता है। एम होरखाइमर मारक्यूज, ई0 फ्राम आदि जैसे समाजशास्त्री इस सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक है।

4. भारत- भारत में सर्वप्रथम सन् 1914 ई0 मुम्बई विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ। सन् 1919 में ब्रिटिश समाजशास्त्री पैट्रिक गिडिग्स के नेतृत्व में समाजशास्त्र विभाग की

स्थापना हुई। जी. एस. घुरिये, राधाकमल मुखर्जी, डी. एन. मदूमदार, ईरावती कर्वे आदि जैसे समाजशास्त्रियों ने भारतीय समाजशास्त्र के विकास में प्रमुख योगदान दिया।

3.3.6. समाजशास्त्र का महत्व

1. समाजशास्त्र सामाजिक घटनाओं का तार्किक अध्ययन करता है जिसकी सहायता से सामाजिक घटनाओ के कार्य एवं कारण को समझकर उसकी समस्याओं एवं आवश्यकताओं को सटीक ढंग से समझा जा सकता है।
2. समाजशास्त्र के सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक संबंधों के तार्किक अध्ययन से मनुष्य के सामाजिक प्रकृति की वास्तविक व्याख्या की जा सकती है। मनुष्य क्यो सामाजिक प्राणी है, वह क्यों समूह, समुदाय, परिवार में रहता है और कैसे विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से अपनी आवश्कताओं की पूर्ति करता है, को ठीक ढ़ंग से समझा जा सकता है।
3. सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य को समाज की संरचना, प्राकार्य, समस्याओं एवं आवश्कताओं का ज्ञान होना आवश्यक है। जिसके लिए समाज की कार्यप्रणाली को समझना आवश्यक होगा। समाजशास्त्र समाज के इन नियमों एवं कार्यप्रणालियों को वैज्ञानिक ढंग से समझता है।
4. आधुनिक समय में समाज अनेक समस्याओं से घिरा है। जिसे समझने के लिए समाज का वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है जिससे सामाजिक समस्याओं को ठीक ढंग से समझ कर उसका ठीक निदान ढूंढा जा सके।
5. समाजशास्त्र ने अपराध एवं अपराधियों के प्रति समाज का दृष्टिकोण ही बदल दिया। अब अपराध को जैविक और मानसिक तथ्य के स्थान पर सामाजिक तथ्य माना जाने लगा। जिसके तार्किक अध्ययन के फलस्वरूप अपराध के सही कारण का पता लगाया जा सकता है।
6. वर्तमान समय में व्यवसायिक क्षेत्र में समाजशास्त्र का महत्व तेजी से बढ़ा है। जनजातीय एवं अन्य पिछड़े समुदायों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आवश्कताओं को समझने एवं उनके विकास के लिए सरकारें समाजशास्त्रीय अध्ययन का सहारा ले रही है। उद्योगो, कारखानों एवं सरकारी संस्थाओं में लेबर बेलफेयर अधिकारी, समाज कल्याण अधिकारी, बाल कल्याण अधिकारी के रूप में समाजशास्त्रीयों का महत्व तेजी से बढ़ा है।
7. वर्तमान समय में समाजशास्त्र एक महत्वपूर्ण विज्ञान के रूप में सामने आया है। अकादमिक विषय के रूप में शिक्षा क्षेत्र में इसका तेजी से विकास हुआ है। कालेजो एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्य-विषय के रूप में इसे महत्वपूर्ण स्थान दिये जाने लगा है।

वर्तमान समय में समाज की जटिलता में तेजी से वृद्ध हुई है, जिससे उसकी विविध प्रकार सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के समाधान के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन का महत्व तेजी से बढा है। भारत में समाजशास्त्र के अध्ययन का महत्व और भी अधिक है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, और वैश्वीकरण के प्रभाव से भारतीय समाज में तेजी से परिवर्तन आया है, वैवाहिक बंधन कमजोर पड़ रहे है, रीति-रिवाज एवं परम्परायें बदल रही है। संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा है। आंतकवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, बढ रहा है। जनसंख्या वृद्धि एवं बेरोजगारी की समस्याएं गंभीर हो रही है बढते हुए नगरीकरण ने गन्दीबस्ती का विकास, अपराध, सामाजिक तनाव, एवं यौनशोषण को जन्म दिया है। उपर्युक्त समस्याओं के कारण भारतीय समाज के समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए सरकारी, गैरसरकारी एवं शैक्षणिक संस्थाओं के प्रयासो में तेजी से वृद्धि हुई है जिससे इन समस्याओं को वैज्ञानिक आधार समझकर उसका निदान किया जा सके।

3.3.7. सारांश

सामाजिक चिंतन के रूप में समाजशास्त्री अध्ययन भले ही पुराना था लेकिन एक व्यवस्थित विषय के रूप में समाजशास्त्र नवीन है जिसकी उत्पत्ति फ्रांस में 19वीं शताब्दी में हुई। इसकी उत्पत्ति में यूरोपीय सामाजिक परिस्थियों का विशेष महत्व रहा जिसमें मुख्य रूप से औद्योगिक एवं फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप सामाजिक ताने-बाने व्यापक परिवर्तन हुए जिसके वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आगस्त काम्टे ने 1838 ई0 में समाजशास्त्र जैसे विशेष सामाजिक विज्ञान का प्रारूप रखा। लेकिन एक विषय के रूप में समाजशास्त्र का सर्वाधिक विकास अमेरिका से शुरू हुआ। उसके बाद फ्रांस, इंग्लैंड आदि अन्य देशों में एक विषय के रूप में स्थापित हुआ। वर्तमान समय में समाजशास्त्र का विश्व के लगभग सभी देशों में एक विषय के रूप में अध्ययन-अध्यापन हो रहा है।

3.3.8. प्रमुख शब्दावली

1. **वस्तुनिष्ठता:-** तटस्थ व पक्षपात रहित अध्ययन द्वारा तथ्यों का उनकें वास्तविक रूप में संकलन व विश्लेषण ही वस्तुनिष्ठता है अर्थात भावना, विचार, विश्वास, आशा और आंकाक्षों से प्रभावित न होकर किसी भी तथ्य यह घटना का अध्ययन जैसा वह है उसी रूप में करना वस्तुनिष्ठता कहलाता है।
2. **स्वरूपात्मक सम्प्रदाय:-** यह समाजशास्त्र का प्रमुख अध्ययन क्षेत्र है जो इस बात पर बल देता है कि सभी प्रकार के समाजिक संबंधों का अध्ययन करने से समाजशास्त्र की वैज्ञानिकता कमजोर होगी। इस लिए इसके अध्ययन क्षेत्र को एक सीमा में बांधना आवश्यक है। इस दशा में समाजशास्त्र को सामाजिक संबंधों के स्वरूपो का ही अध्ययन करना चाहिए। इस सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थको में जार्जसीमेल, वीरकान्त, वार्नबीज, टाइनीज आदि है।

3. **प्रघटनाशास्त्र:-** प्रघटनाशास्त्र समाजशास्त्रीय अध्ययन में मानविकीय अध्ययन की प्रमुख प्रविधि है जो किसी घटना के बारे में व्यक्ति के उन अनुभवों को जानने का प्रयत्न करता है जो तरह-तरह के पूर्वा ग्रहो और मान्यताओं से प्रभावित न हो।
4. **प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद:-** वर्तमान समय में समाजशास्त्रीय अध्ययन में प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद का विशेष महत्व है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि मनुष्य की अधिकाश क्रियाएं स्पष्ट नही हो पाती वह अपने विचारों एवं क्रियाओ को कुछ विशेष प्रतीको द्वारा अभिव्यक्त करता है। अतः प्रतीको के सही अर्थ को समझ कर सामाजिक क्रियाओं एवं मानवीयों व्यवहारों का अध्ययन किया जा सकता है।

3.3.9. संबंधित प्रश्न

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. विज्ञान क्या है? समाजशास्त्र के वैज्ञानिकता की विवेचना कीजिए।
2. समाजशास्त्र को परिभाषित करते हुए उसकी वास्तविक प्रकृति को समझिये?
3. समाजशास्त्र क्या है? इसके विषय क्षेत्र एवं विषयवस्तु पर प्रकाश डालिये।
4. समाजशास्त्र के उत्पत्ति के दशाओं का वर्णन करते हुए वर्तमान में समाजशास्त्र के महत्व को समझाइये।
5. समाजशास्त्रीय अध्ययन के मानविकी पक्ष की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

लघुउत्तरीय प्रश्न:-

1. वैज्ञानिक पद्धति क्या है?
2. प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद का क्या अर्थ है?
3. समाजशास्त्र को परिभाषित कीजिए?
4. समाजशास्त्र की वैज्ञानिक प्रकृति के पक्ष में कोई पाॅच तर्क दीजिए?
5. समाजशास्त्र के महत्व पर टिपण्णी लिखिए?

बहुविकल्पीय प्रश्नः-

1. समाजशास्त्र अध्ययन करता है

   अ. क्या है का

   ब. क्या होना चाहिए का

   स. किस लिए होना चाहिए

   द. सभी का
2. दा सोशल आर्डर पुस्तक है?

   अ. वीरस्टीड

ब. मैक्सबेवर

स. मैकाइबर एवं पेज

द. बोगार्डस

3. किस लेखक ने अमूल परिवर्तन वाद पर बल दिया है?

अ. मैक्सबेबर

ब. एल्विन गोल्डनर

स. गीडिन्स

द. गाफमैन

4. समाजशास्त्र को सामूहिक प्रतिनिधानों का विज्ञान कहा है

अ. मैक्सबेबर

ब. दुर्खीम

स. कॉम्ट

द. गाफमैन

5. निम्न में समाजशास्त्र को क्या कहा जा सकता है?

अ. व्यक्तिनिष्ठ विज्ञान

ब. वस्तुनिष्ठ विज्ञान

स. व्यक्तियों के भावनात्मक संबंधो की व्यवस्था

द. आदर्शात्मक विज्ञान

3.3.10. प्रश्नोत्तर

1 अ

2 अ

3 ब

4 ब

5 ब

3.3.11. संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, एम. एल. एवं शर्मा, डी.डी. (2018). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन प्रकाशन.

खंड-4 : भारत में समाजशास्त्र

इकाई-1: भारत में समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं इतिहास

इकाई की रूपरेखा

4.1.1. उद्देश्य

4.1.2. प्रस्तावना

4.1.3. भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

4.1.3.1. भारत में अनौपचारिक समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

4.1.3.1.1. प्राचीनतम सामाजिक चिंतन

4.1.3.1.2. वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन

4.1.3.1.3. मध्यकालीन सामाजिक चिंतन

4.1.3.1.4. आधुनिक सामाजिक चिंतन

4.1.3.2. भारत में औपचारिक समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

4.1.3.2.1. औपनिवेशिक भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

4.1.3.2.2. स्वतंत्र भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

4.1.4. भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन के विकास की प्रवृत्तियाँ

4.1.4.1. पाश्चात्य समाजशास्त्रीय सिद्धांतों पर आधारित

4.1.4.2. परंपरागत भारतीय चिंतन पर आधारित

4.1.4.3. पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतन के समन्वय पर आधारित

4.1.5. सारांश

4.1.6. बोध प्रश्न

4.1.7. संदर्भ ग्रंथ

4.1.1. उद्देश्य

भारत में समाजशास्त्र खंड के इस इकाई में भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन का इतिहास, उद्भव, एवं विकास पर विस्तृत चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात अपने के द्वारा सम्भव होगा -

1. भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन के इतिहास एवं पृष्ठभूमि को समझना।
2. भारत में समाजशास्त्र के उत्पत्ति की व्याख्या करना।
3. भारत में समाजशास्त्र के विकास की विवेचना करना।
4. भारत में समाजशास्त्र के विकास की प्रवृत्तियों को समझना।

4.1.2. प्रस्तावना

खंड चार की इस इकाई में भाग 1.1 के अंतर्गत भारत मे समाजशास्त्र की उत्पत्ति को समझने के लिए उसके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदिकाल, वैदिककाल, मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक के सामाजिक चिंतन को समझने का प्रयास किया गया है। जिसको समझने बिना भारत के समाजशास्त्र को नही समझा जा सकता। भाग 1.4 के अन्तर्गत भारत में समाजशास्त्र की उत्पत्ति की चर्चा के साथ-साथ उसके औपचारिक विकास पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। भाग 1.7 भारत में समाजशास्त्र के विकास की प्रवृत्तियों की विवेचना की गयी है।

4.1.3. भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

समाजशास्त्र समाज का तार्किक अध्ययन करने वाला विज्ञान है। भारत में इस चिंतन के औपचारिक उद्भव एवं विकास को समझने के लिए आवश्यक है कि भारत के सामाजिक चिंतन की उस प्रणाली को ठीक ढ़ग से समझा जाय जो परंपरागत रूप से भारतीय समाज में विद्यमान रहा है। जिसमें सामाजिक तानों-बानों, संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का अध्ययन प्राचीन काल से हो रहा है। इस दृष्टिकोण से बीरस्टीड के कथन को भारतीय समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास पर लागू करते हुए कहा जा सकता है कि भारत में समाजशास्त्र का उद्भव भले ही नया हो लेकिन इसका इतिहास काफी पुराना है। इस तरह भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास को दो अवस्थाओं में बाट कर असानी से समझा जा सकता है। पहला अनौपचारिक अवस्था दूसरा औपचारिक अवस्था।

4.1.3.1. भारत में अनौपचारिक सामाजिक चिंतन का विकास

मनुष्य प्रकृति रूप से एक बौद्धिक प्राणी है। बुद्धि मनुष्यों में जिज्ञासा उत्पन्न करती है, जिज्ञासा विचार और चिंतन को जन्म देता है। यह चिंतन शून्य में ना होकर किसी न किसी परिवेश में घटित होता है। यह परिवेश प्राकृतिक, अप्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि कुछ भी हो सकता है। सामाजिक चिंतन के लिए विशेष रूप में सामाजिक परिवेश का होना आवश्यक है। जो मनुष्य के सामाजिक प्राणी बनने के साथ ही निर्मित हो चुका था। इस तरह सामाजिक चिंतन का विकास समाज के विकास के साथ ही शुरू हो गया था। भारत एक प्रचीनतम सभ्यता वाला देश है जहां प्राचीन काल से ही सामाजिक चिंतन प्रारम्भ हो गया था। प्रारम्भिक अवस्था में यह चिंतन लोक कथाओं, लोक वार्ताओं, लोक गाथाओं आदि के रूप में था। लेकिन जैसे-जैसे समाज आगे बढा सामाजिक चिंतन अधिक व्यवस्थित होता गया। भारत में सामाजिक चिंतन के विकास का इतिहास लम्बा और विविधतापूर्ण है। जिसको समझने में सरलता की दृष्टि से निम्न प्रमुख भागों में बाट कर अध्ययन किया जा सकता है-

1. प्राचीनतम सामाजिक चिंतन
2. वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन
3. मध्यकालीन सामाजिक चिंतन
4. आधुनिक सामाजिक चिंतन

4.1.3.1.1. प्राचीनतम सामाजिक चिंतन - प्राचीनतम मानवीय समाज अव्यवस्थित, जंगली और स्वार्थी था। उसमें सामूहिक चेतना सीमित थी। मनुष्यों का जीवन परिवार और काबीलों तक ही सीमित था। इस परिवेश का मानवीय चिंतन पर स्पष्ट प्रभाव था। जिससे सामाजिक चिंतन अव्यवस्थित एवं संकीर्ण था। चिंतन अंधविश्वास, कल्पना और धर्म पर आधारित था। जो लोक कथाओं, लोक गाथाओं और कहानियों के रूप में समाज में विद्यमान था यह चिंतन मौखिक था। जो इसी रूप में एक पीढी से दूसरी पीढी में हस्तांतरित होता रहता था।

4.1.3.1.2. वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन - भारत के सामाजिक चिंतन में वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन का विशेष महत्व है। जहां सामाजिक चिंतन का व्यवस्थित एवं लिखित संकलन वेदों के रूप में शुरू हुआ। वेद भारतीय सामाजिक चिंतन के प्राचीनतम ग्रंथ है। जिसमें समकालीन सामाजिक तानों-बानों, संस्थाओं एवं व्यवस्थाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। धर्म, विवाह, गोत्र, परिवार, वर्ण, आश्रम, संस्कार, पुरूषार्थ, आदि पर वेदों के व्यापक सामाजिक अध्ययन है। जिसके माध्यम से समाज को अधिक व्यवस्थित एवं प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न किया गया।

वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन की विशेषताएँ -

1.धार्मिक एवं नैतिक विचारों की प्रधानता - वैदिक काल में सामाजिक चिंतन का केन्द्र धर्म था प्रकृतिक घटनाओं के साथ-साथ सामाजिक घटनाओं का भी अध्ययन धार्मिक मूल्यों के आधार पर किया जाता था। धर्म का अर्थ व्यापक था। जहाँ धर्म को अलौकिक शक्तिाओं के साथ-साथ लौकिक, व्यावहारिक, और सामाजिक कर्तव्यों से जोड़ा जाता था। इस तरह धार्मिक चिंतन का उद्देश्य समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना करना था।

2. सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं सम्बन्धी विचार- वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन भारतीय सामाजिक चिंतन का आधार है इस काल में समाज के विभिन्न पहलुओं (सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक) का व्यवस्थित चिंतन मिलता है। जहां वर्ण, आश्रम, पुरूषार्थ, आदि जैसी सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ-साथ धर्म, विवाह, परिवार आदि जैसे सामाजिक संस्थाओं का व्यापक अध्ययन किया गया है। जिसका उद्देश्य समाज एवं व्यक्ति को व्यवस्थित एवं संगठित बनाना था।

3. वर्ण व्यवस्था - वर्ण व्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरूष सूत्र में मिलता है यह व्यवस्था समाज को संगठित एंव संतुलित बनाती है जो समाज में श्रम विभाजन का निर्धारण करती थी। वैदिक काल में वर्ण विभाजन का आधार कर्म था व्यक्ति के योग्यता एवं कर्मों में परिवर्तन हो जाने के साथ ही उसकी वर्ण सदस्यता भी बदल जाती थी। यह व्यवस्था बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्णो में विभाजित थी इन चार वर्णो की उत्पत्ति सृष्टि रचयिता बह्म के शरीर से विभिन्ना अंगो द्वारा मानी गयी।

4. आश्रम व्यवस्था - आश्रम शब्द श्रम धातु से बना है जिसका अर्थ है परिश्रम करना अथवा उद्योग करना ऋग्वेद में मनुष्य के सौ वर्ष तक जीने की कामना की गयी है (जीमेव शरदः शतम्) इस आधार पर आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन को सौ वर्ष मानकर इसे पच्चीस-पच्चीस वर्ष के चार आश्रमों में विभाजित किया गया है। जो क्रमशः बह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, तथा संन्यास आश्रम में विभाजित है। यह व्यवस्था व्यक्ति के जीवन को संगठित एवं व्यवस्थित बनाने के लक्ष्य पर आधारित थी। जो व्यक्तिाओं का नैतिक एवं मानसिक विकास करती थी।

5. पुरूषार्थ - पुरूषार्थ सिद्धांत के द्वारा समाज में व्यक्ति के जीवन के चार प्रमुख लक्ष्यांे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को स्पष्ट किया गया। जो व्यक्ति को अनुशासित एवं संयमित जीवन व्यातीत करने पर बल देता है जिससे व्यक्ति एवं समाज का विकास हो सके।

6. विवाह एवं परिवार- वैदिक काल में विवाह एवं परिवार को एक धार्मिक संस्थान के रूप स्वीकार करते हुए विवाह के आठ स्वरूपों की चर्चा की गयी है - ब्रह्म विवाह, दैव विवाह, प्रजापत्य विवाह, आर्ष विवाह, असुर विवाह, गन्धर्व विवाह, राक्षस विवाह, पैशाच विवाह, इस काल में परिवार पितृ सत्तात्मक था जिसे कुल कहा जाता था। परिवार संयुक्त हुआ करते थे जिसका मुखिया कर्ता कहलाता था। जिसके आज्ञा का पालन परिवार के सभी सदस्य करते थे।

इसके साथ-साथ वैदिक कालीन सामाजिक चिंतन का केन्द्र संस्कार, गोत्र वंश आदि जैसी संस्थाएं भी रही। वैदिककालीन इस चिंतन का आधार भले ही धर्म, दर्शन, नैतिकता हो लेकिन यह भारत की सामाजिक चिंतन की जो आधार प्रदान करता है उसका स्पष्ट प्रभाव भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन में दिखाई पड़ता है।

4.1.3.1.3. मध्यकालीन सामाजिक चिंतन - वैदिककालीन सामाजिक चिंतन के बाद भारतीय सामाजिक चिंतन में विसगंतियॉ उत्पन्न होने लगी। व्यावहारिक धर्मवाद एंव आध्यात्मवाद का स्थान कर्मकांड़ लेने लगे। वर्ण प्रथा का विकृत रूप जाति व्यवस्था मं बदलने लगी। जहाँ इसकी प्रकृति कठोर और बन्द प्रस्थिति वाली थी। स्त्रियों की स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा में कमी आने लगी। इस प्रकार के सामाजिक चिंतन में रूढिवादिता, अंधविश्वास, और जाति प्रथा में वृद्धि हुई जिसके कारण छठी एवं सातवीं शताब्दी में तत्कालीन समाज व्यवस्था के विरोध में जैन एवं बौद्ध धर्म के रूप में धार्मिक आंदोलन शुरू हुए जिसके माध्यम से समाज को

सुधारने को प्रयास शुरू हुआ। समाज में सत्य, अहिंसा, आस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि सम्बन्धी विचारधारा का महत्व बढ़ा। इसके बाद सामाजिक चिंतन में स्मृतियों का युग आया जिसमें वैदिककालीन चिंतन सामाजिक चिंतन को पुनः महत्व दिया जाने लगा। जिसमें मनु, याज्ञवालक्य, भृगु आदि का विशेष महत्व है। मनु ने अपनी रचना 'मनुस्मृति' में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का व्यापक वर्णन किया है। तीन सौ ईसवीं पूर्व कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में मौर्ययुगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था का व्यापक वर्णन किया है। चाणक्य ने विवाह, परिवार, भष्ट्राचार, महिलाओं की दशा आज के बारे मे विस्तृत चिंतन किया है।

4.1.3.1.4. आधुनिक सामाजिक चिंतन - भारत में आधुनिक चिंतन की शुरूवात अंग्रेजी शासन में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशको से होता है। औपनिवेशिक शासन काल में अंग्रेज अपने फायदे के लिए भारत में रेलवें, प्रेस, शिक्षा तथा पाश्चात्य सामाजिक मूल्यों का तेजी से प्रचार-प्रसार आरम्भ किया जिसका भारतीय समाज का व्यापक प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से पाश्चात्य सामाजिक मूल्यों एवं शिक्षा का तत्कालीन भारतीय सामाजिक चिंतन जो धर्म, दर्शन, परंपरा, रूढिवादिता, पर आधारित थी। को झकझोर कर रख दिया। परिणाम स्वरूप भारतीय सामाजिक चिंतन में का दृष्टिकोण को विकास हुआ। जिसकी शुरूवात बंगाल के सामाजिक चिंतक और भारत के समाज सुधारक राजाराम मोहन राय से होती है। उनका सामाजिक चिंतन तार्किता पर आधारित था इन्होंने सती प्रथा, बाल विवाह, बहुपत्नी विवाह आदि जैसी सामाजिक कुरीतियों पर कड़ा प्रहार किया। महिलाओ की स्थिति, महिला शिक्षा आदि के सम्बंध में रूढिवादी परंपराओं को समाप्त कर समाज को नई दिशा प्रदान किया। इन्होने अपने विचार धारा के विकास एवं प्रचार-प्रसार के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की । दयानन्द सरस्वती (1824-1883ई0) ने आर्य समाज की स्थापना की और वैदिक मूल्यों, परंपराओं को पुनः स्थापित करने पर बल दिया। इन्होने भारतीय समाज में प्रचलित रूढिवादिता, अंधविश्वास, कर्मकांडो, पर कडा प्रहार किया। इसके अतिरिक्त ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, दादा भाई नौरोजी, बाल गंगाधर तिलक,लाला लाजपतराय, एम.जी0 रानाडे आदि जैसे सामाजिक विचारको भारत में बौद्धिक एवं तार्किक सामाजिक चिंतन को स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया।

इस तरह से भारत में समाजशास्त्र के विकास का अनौपचारिक अध्ययन किया जाय तो वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक सामाजिक चिंतन जो धर्म, दर्शन, परंपरा, कल्पना आदि से प्रभावित होने के कारण समाजशास्त्रीय अध्ययन तो नही कहा जा सकता परन्तु वैदिक काल, प्राचीन काल और आधुनिक काल में कई विचारकों द्वारा समाज का व्यवस्थित अध्ययन किया गया। जिनके सामाजिक अध्ययन में तार्किक सामाजिक मूल्यों की झलक दिखाई पडती है से भारत मे समाजशास्त्रीय अध्ययन में प्रचुर मात्रा में सामग्री ली गयी इसलिए भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास को समझने से पहले समाजशास्त्र के इस अनौपचारिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक हो जाता था।

4.1.3.2. भारत में औपचारिक समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

भारत में समाजशास्त्र के औपचारिक विकास को दो भागो में बाट कर आसानी से अध्ययन किया जा सकता है-

1. औपनिवेशिक भारत में समाजशास्त्र का विकास
2. स्वतंत्र भारत में समाजशास्त्र का विकास

4.1.3.2.1. औपनिवेशिक भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

समाजशास्त्र एक नवीन विज्ञान है। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अमेरिका, फ्रांस आदि देशो में समाजशास्त्र का एक विज्ञान के रूप में व्यवस्थित विकास प्रारम्भ हो चुका था। इंग्लैंड में एक स्वतंत्र विषय के रूप में समाजशास्त्र का विकास सन् 1907 से प्रारम्भ उस समय भारत इंग्लैंड औपनिवेशिक देश था, जिसके माध्यम से भारत में पाश्चात्य सामाजिक, शैक्षिक एवं वैज्ञानिक मूल्यों को तेजी से विकास हो रहा था। यही कारण है भारत में प्रारम्भिक समाजशास्त्र के विकास पर इंग्लैंड एवं अन्य पाश्चात्य देशों का प्रर्याप्त प्रभाव दिखाई पडता है। भारत में सर्वप्रथम सन् 1914 में बम्बई विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के साथ स्नातक स्तर पर समाजशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य प्रारम्भ हुआ । सन् 1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में बृजेन्द्रशील के प्रयत्नों से अर्थशास्त्र के साथ समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ। **राधा कमल मुखर्जी**, **विनय कुमार,** डी**.एन. मजूमदार** तथा प्रो. **निर्मल कुमार बोस** जैसे प्रतिभाशाली विद्वान **बृजेन्द्र शील** के ही विद्यार्थी थे। सन् 1919 में बिट्रिश समाजशास्त्री प्रो. पैट्रिक गीड्स के अध्यक्षता में मम्बई विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्वतंत्र रूप से समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई और स्नातकोत्तर स्तर पर समाजशास्त्र का अध्ययन कार्य शुरू हुआ। इसी लिए प्रो. पैट्रिक गीड्स को भारतीय समाजशास्त्र का जनक भी कहा जाता है। सन् 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र विभाग के अन्तर्गत समाजशास्त्र का अध्ययन शुरू हुआ जिसके प्रथम अध्यक्ष राधा कमल मुखर्जी थे। जो मूल रूप से अर्थशास्त्री थे। सन् 1922 में इस विभाग से प्रो. डी.पी. मुखर्जी भी जुड़ गये। सन् 1928 में प्रमुख मानवशास्त्री एवं समाजशास्त्री डी.एन. मजूमदार भी लखनऊ विश्वविद्यालय से जुड़ गये। सन् 1924 में बम्बई विश्वविद्यालय में प्रो. पैट्रिक गीड्स के बाद उन्हीं के शिष्य डॉ. जी.एस. घुरिये समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष बने। सन् 1934 में इन्हें यही भारत में समाजशास्त्र का प्रथम प्रोफेसर होने का गौरव प्राप्त हुआ। इन्होंने भारत मे समाजशास्त्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया इसीलिए जी.एस. घुरिये को भारत में समाजशास्त्र का जनक (भारतीय समाजशास्त्री) कहा जाता है। एम.एन.निवास, आई.पी. देसाई, के.एम. कपाड़िया, ए.आर. देसाई, एम.एस.ए. राव, वाई.वी. दामले, इरावती कर्बे आदि जैसे प्रमुख समाजशास्त्री इन्हीं के शिष्य रहे। ए.आर.वाडिया के नेतृत्व में सन् 1928 में मैसूर विश्वविद्यालय में स्नातक स्तर पर भारत में सर्वप्रथम समाजशास्त्र का एक स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता प्राप्त

हुआ। सन् 1939 में पूना विश्वविद्यालय में मती इरावती कर्बे की अध्यक्षता में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई।

इस तरह औपनिवेशिक भारत में एक विषय के रूप समाजशास्त्र भले ही स्थापित हो चुका था। परन्तु इस पर पाश्चात्य समाजशास्त्रीय चिंतन का स्पष्ट प्रभाव होने के साथ-साथ इसके विकास की गति अत्यन्त धीमी रही। इस काल समाजशास्त्र एक स्वतंत्र एवं प्रचलित विषय के रूप में सामने नही आ पाया इसका अध्ययन किसी न किसी रूप में अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र से सम्बद्ध रहा।

4.1.3.2.2. स्वतंत्र भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन का विकास

सन् 1947 के बाद स्वतंत्र भारत में समाजशास्त्र का विकास अन्य सामाजिक विषयों से अलग तेजी से हुआ। प्रो. नार्मदेश्वर प्रसाद के अध्यक्षता में सन् 1953 में पटना विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग की स्थापना हुई। सन् 1959 में दिल्ली विश्वविद्यालय में स्वतंत्र रूप से समाजशास्त्र विभाग की स्थापना भारत के प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम.एन. निवास की अध्यक्षता मे हुई इसी तरह देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में एक व्यवस्थित स्वतंत्र विषय के रूप में समाजशास्त्र का विकास हुआ। वर्तमान समय मे भारत के लगभग सभी महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र का अध्ययन एवं अध्यापन कार्य हो रहा है।

भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास के संबंध में अनेक समाजशास्त्रीयों ने अपना-अपना विचार रखा। जिसका प्रारिम्भक प्रयास डी.पी. मुखर्जी तथा विनय कुमार सरकार ने किया। डी.पी. मुखर्जी के अनुसार भारत की परंपराएं इतनी समृद्धि है कि उनका अध्ययन करके पश्चिमी देशों से कहीं अधिक प्रभावशाली सिद्धांत विकसित किये जा सकते है। विनय कुमार सरकार भी भारत के लिए पृथक समाजशास्त्र चाहते थे क्योकि इनका मानना था कि भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति पश्चिमी विचारको के विचार हमेशा पक्षपातपूर्ण रहे है। इसके साथ-साथ निवास, इरावती कर्बे, टी.एन. मदान, योगेन्द्र सिंह, लुई ड्यूमा, आंद्रे वेत्तई, डी.एन धनागरे आदि समाजशास्त्रीय ने इस मत का समर्थन किया है कि भारत में प्रभावशाली समाजशास्त्रीय सिद्धांत तभी बनाये जा सकते है जब वे विशेष रूप से भारतीय सामाजिक परिपेक्ष्य के अध्ययन पर आधारित हो। लुई ड्यूॅमा एवं डी.एफ पोकाक ने 'कन्ट्रीव्यूशन टू इंण्ड़ियन सेाशियोलाजी' नामक अकादमिक जनरल प्रकाशित किया। रामकृष्ण मुखर्जी ने 'सोशियोलाजी ऑफ इण्डियन सोशियोलाजी' योगेन्द्र सिंह ने सन् 1986 में इण्डियन सोशियोलाजी, टी.के. उमेन तथा पार्थनाथ मुखर्जी ने इण्डियन सोशियोलॉजी नामक पुस्तक लिखी जिसमें भारत में समाजशास्त्र के विकास को समझाने का प्रयास किया गया है। इन विद्वानों के विचारों से यह मत उभर कर सामने आया कि क्या अमेरिका का समाजशास्त्र, फ्रांस का समाजशास्त्र, इंग्लैंड का समाजशास्त्र की तरह भारत का एक अलग समाजशास्त्र होगा अथवा सार्वभौमिक समाजशास्त्र की तरह भारतीय संस्करण होगा। टी.के. एन. उन्नीथान ने 'ए न्यू सोशियोलाजी फार इण्डिया' नामक पुस्तक लिखकर इस मुद्दे पर अपना विचार रखा कि भारत का एक अलग समाजशास्त्र होना चाहिए।

भारत में सन् 1994 में विश्व समाजशास्त्र परिषद का सम्मेलन हुआ जिसमें टी.के. ऊमन को अध्यक्ष बनाया गया। वर्तमान समय में समाजशास्त्र केवल अध्ययन अध्यापन के दृष्टि से ही एक महत्वपूर्ण विषय नही है बल्कि इसके शोध कार्यो को भी व्यापक रूप से मान्यता मिलने लगी है । भारत में वर्तमान समाजशास्त्रीय विकास का माडल इंग्लैंड की तुलना में अमेरिका से अधिक प्रभावित है। वर्तमान समय में समाजशास्त्र के नयीं-नयीं शाखाओं का तेजी से विकास ही नही हो रहा बल्कि उन अध्ययनों को भी महत्व दिया जाने लगा है जो व्यावहारिकता पर आधारित है। सरकारें अपनी योजनाओं को चलाने के लिए समाजशास्त्रीय अध्ययन का सहारा ले रहे है। देश के विविध प्रविधिक संस्थाओं में भी समाजशास्त्र विषय को इस कारण मान्यता दी गयी है जिससे प्रविधिक शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी अपने समाज तथा संस्कृति से परिचित हो सके इस तरह वर्तमान समय में समाजशास्त्र विषय की लोकप्रियता एवं उपयोगिता तेजी के साथ बढती जा रही है।

4.1.4. भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन के विकास की प्रवृत्तियाँ

समाजशास्त्र के अनौपचारिक, औपचारिक उद्भव एवं विकास का ऐतिहासिक आधार पर अध्ययन के साथ-साथ वर्तमान भारत में समाजशास्त्र के विकास से सम्बन्धित प्रवृत्तियों को समझना आवश्यक है। बहुत से समाजशास्त्री पूर्णतया पश्चिमी सिंद्धान्तों के आधार पर भारत में भी समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों को विकसित करना चाहते वहीं कुछ समाजशास्त्री भारत में समाजशास्त्र का विकास भारतीय सामाजिक परिपेक्ष्य के आधार पर करना चाहते है। भारत में समाजशास्त्र के विकास की एक अन्य विचारधारा वाले समाजशास्त्री चाहते है कि भारत में समाजशास्त्र का विकास भारतीय एवं पश्चिमी विचारधारा के समन्वय के आधार पर हो।

4.1.4.1. पाश्चात्य समाजशास्त्रीय सिद्धांतों पर आधारित

इस विचारधारा का समर्थन करने वाले सामाजशास्त्री मानते है कि पश्चिमी समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों एवं अध्ययन पद्धतियों के आधार पर ही भारत में समाजशास्त्र के विकास को समझा जा सकता है। इस विचारधारा का समर्थन करने वाले समाजशास्त्रियों की संख्या सर्वाधिक है इस पश्चिमी परंपरा से प्रभावित विद्वानों के विचारों को निम्न भागों में बाटकर अध्ययन किया जा सकता है:

पश्चिमी विचारधारा से प्रभावित भारतीय समाजशास्त्रियों में अधिकाश विद्वान वें है जिन्होंने परिवार, विवाह, वर्ण, जाति, धर्म, तथा सामाजिक वर्ग आदि जैसे विषयों पर अध्ययन किया है। इनमें प्रमुख रूप से घुरिये, हट्टन, रिजले, मजूमदार, ने भारत की जाति व्यवस्था का व्यापक अध्ययन करके भारत की सामाजिक संरचना को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। के.एम. कपाड़िया तथा इरावती कर्बे ने विवाह, परिवार, और नातेदारी जैसी संस्थाओं का अध्ययन किया। एम.एन. निवास ने दक्षिण भारत के कुर्ग समाज का अध्ययन किया और भारत में जाति के संदर्भ में होने वाले परिवर्तन के लिए संस्कृतिकरण की अवधारणा को दिया।

वहीं अनेक समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण समाज का अध्ययन किया है इनका अध्ययन अमेरिका के समाजशास्त्रीय परंपरा से प्रभावित है। इसमें प्रमुख रूप से डॉ एस.सी. दूबे, डॉ मजूमदार, डॉ ए.आर. देसाईन आदि विद्वान है। डॉ दूबे की प्रमुख पुस्तकें निम्नलिखित है। एन इण्डियन विलेज, इण्डियाज चेजिंग विलेजेज, दा कमार इन्होंने इन पुस्तकों में ग्रामीण समुदायो का विशेष अध्ययन करते हुए वहां चल रहे विकास कार्यों की समीक्षा की है।

राधाकमल मुखर्जी एवं डी.पी. मुखर्जी जैसे समाजशास्त्री जो मूल रूप से अर्थशास्त्री थे भारतीय समाज का अर्थशास्त्रीय अध्ययन किया। इनकें अध्ययन की इस प्रवृत्ति को 'सामाजिक अर्थशास्त्र' के नाम से जाना जाता है डॉ आर.के. मुखर्जी ने अर्थशास्त्र का संस्थात्मक सिंद्धान्त दिया इन्होंने सामाजिक मूल्य और परंपराओं का भी व्यापक अध्ययन किया है। डॉ डी.पी. मुखर्जी ने अर्थशास्त्र से सम्बन्धित प्राचीन ज्ञान को समाजशास्त्र के जोडने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने अपने सिद्धान्तों में परंपराओं को विशेष महत्व दिया।

4.1.4.2. परंपरागत भारतीय चिंतन पर आधारित

भारत में समाजशास्त्र के विकास की इस प्रवृत्ति के समर्थकों का मानना है कि पाश्चात्य समाजशास्त्रीय अध्ययन के आधार पर भारतीय समाजशास्त्र का समुचित विकास संभव नही है। इस प्रवृत्ति के समाजशास्त्रीयों में आनन्द कुमार स्वामी, डॉ भगवान दास, प्रो. नार्मदेश्वर प्रसाद, एके सरन, मोटवानी, सच्चिदानन्द, पी.एच. प्रभु आदि प्रमुख है। डॉ भगवान दास तथा स्वामी ने भारतीय संस्कृति का गहन के साथ अध्ययन किया है। इन्होंने परंपरागत भारतीय चिंतन का तार्किक दृष्टिकोण से अध्ययन किया है। प्रो. शरन ने भारतीय समाज की संरचना को यह के सामाजिक मूल्यों के आधार पर समझने का प्रयास किया है। प्रो. नार्मदेश्वर प्रसाद ने जाति व्यवस्था के अध्ययन के आधार पर भारतीय समाज को समझने का प्रयास किया। इस व्यवस्था के अध्ययन के संदर्भ में इन्होने कुलीनीकरण की अवधारणा देते हुए जातीय मिथकों का भी अध्ययन किया।

4.1.4.3. पाश्चात्य एवं भारतीय चिंतन के समन्वय पर आधारित

भारत में समाजशास्त्र के विकास पर आधारित यह विचारधारा पाश्चात्य परंपरागत एवं आधुनिक विचारों के समन्वय का प्रबल समर्थक है। इस प्रवृत्ति के समर्थक प्रमुख विद्वान डॉ राधाकमल मुखर्जी, डॉ डी.पी. मुखर्जी, डॉ जी.एस.घुरिये, एम.एन. निवास, योगेन्द्र सिंह, डॉ आर.एन. सक्सेना, आदि हैं। डॉ आर.के. मुखर्जी पाश्चात्य समाजशास्त्रीय परंपराओं से प्रभावित होकर भारत में परिस्थितिकीय समाजशास्त्र के विकास का प्रयास किया। डॉ डी.पी. मुखर्जी का मानना है कि भारतीय समाज को समझने के लिए भारतीय परंपराओ का अध्ययन आवश्यक है। केवल पाश्चात्य देशों से आयातित सिंद्धान्तों एवं पद्धतियों के आधार पर भारतीय समाज को नही समझा जा सकता भारतीय संस्कृति एवं परंपराओं पर भी अन्य देशों की संस्कृतिओ का व्यापक प्रभाव पडा है इस लिए इसलिए पाश्चात्य और भारतीय परंपराओं के समन्वित चिंतन के आधार पर ही

भारत में समाजशास्त्रीय विचारधारा का उचित विकास हो सकता है। डॉ जी.एस. घुरिये का मानना है कि केवल पाश्चात्य सिद्धांतों के आधार पर भारतीय समाज और संस्कृति को नही समझा जा सकता है इसकें लिए पाश्चात्य और भारतीय परंपराओं के समन्वित चिंतन की आवश्यकता है। प्रो. योगेन्द्र सिंह ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक मार्डनाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिसन में परंपरा तथा आधुनिकता के समन्वय के आधार पर भारतीय समाज को समझने का प्रयास किया है।

स्वतंत्रा के बाद भारत के विश्वविद्यालयों में समाजशास्त्र का अकादमिक विकास तेजी से हुआ। लेकिन यहाँ स्वयं की कोई समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण का स्पष्ट विकास अभी तक नही हो पाया है। इसका कारण मुख्यतयः यही है कि यहां अन्य देशों से आयातित समाजशास्त्रीय सिद्धांतों को भारतीय सामाजिक विशेषताओं को ध्यान में रखे बिना अपनाये जाने की प्रवृत्ति रही है। भारत में समाजशास्त्र के विकास के लिए आज स्पष्ट भारतीय दृष्टिकोण का विकास आवश्यक हो गया है।

4.1.5. सारांश

इस इकाई में आपने भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को पढा जिसमें आपने वैदिककालीन सामाजिक चिंतन जो भारत के सामाजिक चिंतन को आधार प्रदान करता है, से लेकर भारत में समाजशास्त्र के उद्भव एवं विकास को समझा कि कैसे औपनिवेशिक काल में भारत का समाजशास्त्रीय चिंतन सीमित और पाश्चात्य पद्धतियों, सिद्धांतों से प्रभावित रहा। स्वतंत्रता के बाद इसका बहुआयामी विकास होने के साथ समाजशास्त्रीय अध्ययन की उस आधुनिक प्रवृत्ति को बल मिला जो भारत के सामाजिक परिवेश एवं परिपेक्ष्य के आधार पर भारत के समाजशास्त्र का विकास करना चाहता है।

4.1.6. बोध प्रश्न

4.1.6.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में सामाजिक चिंतन के विकास का वर्णन कीजिए?
2. भारत में औपनिवेशिक काल के समाजशास्त्रीय चिंतन पर प्रकाश डालिए?
3. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में सामाजशास्त्रीय चिंतन के विकास को स्पष्ट करते हुए वर्तमान प्रवृत्तिओं को समझाइए?
4. भारत में सामाजशास्त्रीय चिंतन के विकास पर निबंध लिखिए?
5. भारत में सामाजशास्त्रीय चिंतन के विकास की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए?

4.1.6.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में सामाजशास्त्रीय चिंतन का आरम्भ कैसे हुआ?
2. सामाजिक चिंतन क्या है?
3. जी.एस. घुरिये को भारत में समाजशास्त्र का जनक क्यो कहा जाता है?
4. भारत के समाजशास्त्र पर पाश्चात्य समाजशास्त्रीय चिंतन के प्रभावों को स्पष्ट कीजिए?
5. भारत में समाजशास्त्रीय चिंतन की प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए?
6. भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन में वैदिककालीन सामाजिक चिंतन के प्रभावों का उल्लेख कीजिए?

4.1.6.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. भारतीय समाजशास्त्र के जनक है

   अ. पैट्रिक गीड्स

   ब. राधाकमल मुखर्जी

   स. डी.पी. मुखर्जी

   द . ए.के. सरन

2. भारत में सबसे पहले समाजशास्त्र विषय का औपचारिक रूप से अध्ययन किस विश्वविद्यालय में आरम्भ हुआ ?

   अ. लखनऊ विश्वविद्यालय

   ब. बम्बई विश्वविद्यालय

   स. मैसूर विश्वविद्यालय

   द. पूना विश्वविद्यालय

3. द कमार पुस्तक है?

   अ. एम.एन. निवास

   ब. एस.सी. दूबे

   स. डी.पी. मुखर्जी

   द. आर.के. मुखर्जी

4. इरावती कर्बे का संबंध किस विश्वविद्यालय से है ?

   अ. पूना विश्वविद्यालय

   ब. बम्बई विश्वविद्यालय

   स. लखनऊ विश्वविद्यालय

   द. मैसूर विश्वविद्यालय

5. लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्रणेता है ?

अ. राधाकमल मुखर्जी

ब. राधा कृष्ण मुखर्जी

स. डी.पी. मुखर्जी

द. जी.एस. घुरिये

4.1.6.4. प्रश्नोत्तर

1. अ
2. ब
3. ब
4. अ
5. अ

4.1.7. संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

2. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2014). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.

4. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. (2007). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-2 : भारत में समाजशास्त्र के संस्थापक

इकाई की रूपरेखा

4.2.1. उद्देश्य

4.2.2. प्रस्तावना

4.2.3. भारत में समाजशास्त्र के संस्थापक

4.2.4. गोविंद सदाशिव घुरिये (1893-1983)

4.2.4.1. जीवन परिचय

4.2.4.2. प्रमुख विचार

4.2.4.3. महत्वपूर्ण रचनाएँ

4.2.5. राधा कमल मुखर्जी

4.2.5.1. जीवन परिचय

4.2.5.2. प्रमुख विचार

4.2.5.3. महत्वपूर्ण रचनाएँ

4.2.6. धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी

4.2.6.1. जीवन परिचय

4.2.5.2. प्रमुख विचार

4.2.6.3. महत्वपूर्ण रचनाएँ

4.2.7. सारांश

4.2.8. प्रमुख शब्दावली

4.2.9. बोध प्रश्न

4.2.10. संदर्भ ग्रंथ

4.2.1. उद्देश्य

भारत में समाजशास्त्र खंड की इस इकाई में भारत में समाजशास्त्र के संस्थापकों पर विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप द्वारा सम्भव होगा -

1. भारत में समाजशास्त्र के संस्थापकों के योगदान का वर्णन करना।
2. जी.एस.घुरिये, राधा कमल मुखर्जी, धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी के जीवन परिचय का संक्षिप्त रूप से वर्णन करना।
3. समाजशास्त्र के सम्बंध में उनके प्रमुख विचारों की व्याख्या करना।
4. उनकी प्रमुख रचनाओं की जानकारी प्राप्त करना ।

4.2.2. प्रस्तावना

इस इकाई के 2.2 में भारत में एक विषय के रूप में समाजशास्त्र को स्थापित करने वाले संस्थापकों पर चर्चा की गयी है। भाग 2.3 में भारत में समाजशास्त्र के भारतीय जन्मदाता गोविंद सदाशिव घुरिये का जीवन परिचय, उनके प्रमुख विचार एवं महत्वपूर्ण रचनाओं का विवरण दिया है। भाग 2.4 में उत्तर प्रदेश में समाजशास्त्र के संस्थापक राधाकमल मुखर्जी के जीवन परिचय, मुख्य विचार और महत्वपूर्ण रचनाओं का विवेचन किया गया है। अन्त में भाग 2.5 में धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी का जीवन परिचय, उनके प्रमुख विचार और महत्वपूर्ण रचनाओं की जानकारी दी गयी है।

4.2.3. भारत में समाजशास्त्र के संस्थापक

भारत के वे प्राम्भिक समाजशास्त्री जिन्होंने भारत में समाजशास्त्र को एक विषय के रूप में स्थापित करने के साथ-साथ उसकें विकास में महत्वपूर्ण सहयोग दिया को संस्थापक समाजशात्रियों के रूप में देखा जाता है जिसमें प्रमुख रूप से जी.एस. घुरिये, राधा कमल मुखर्जी, डी.पी. मुखर्जी और एम.एन. निवास आदि है। इनमें सर्वप्रथम जी.एस. घुरिये का नाम आता है। जिन्हें भारत के समाजशास्त्र के जन्मदाता के रूप में देखा जाता है। **पैट्रिक गीड्स** के बाद सन् 1924 में बम्बई विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग का कार्यभार संभालनें वाले घुरिये प्रथम भारतीय समाजशास्त्री थे। **राधाकमल मुखर्जी** जो मूलतः अर्थशास्त्री थे सन् 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के विभागाध्यक्ष के रूप में जुड़े, इन्होंने अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और इतिहास को एक साथ प्रस्तुत किया। सन् 1922 में **डी.पी. मुखर्जी** भी लखनऊ विश्वविद्यालय से जुड़े जो मार्क्सवादी विचारधारा के समर्थक थे, इन्होनें भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता के बीच द्वन्दात्मक संबंधों की चर्चा करते हुए ऐसी आधुनिकता पर बल दिया है जो भारतीयता पर आधारित है। **जी.एस. घुरिये, आर.के. मुखर्जी, डी.पी. मुखर्जी** जैसे प्रथम पीढ़ी के समाजशास्त्रियों के बाद एम.एन. निवास को शीर्षस्थ स्थान है। ये सन् 1959 में दिल्ली विश्वविद्यालय से समाजशास्त्र के

विभागाध्यक्ष के रूप जुड़े। इन समाजशास्त्रियों के शोधकार्य, अध्यापन, लेखन, मार्गदर्शन का भारत के समाजशास्त्र के विकास में व्यापक योगदान है। भारत में समाजशास्त्र के संस्थापक की इस इकाई के अन्तर्गत हम इन समाजशास्त्रियों के जीवन परिचय, मुख्य विचारों और प्रमुख रचनाओं के बारे में विस्तृत चर्चा करेंगे।

4.2.4. गोविंद सदाशिव घुरिये (12 दिसम्बर 1893-28 दिसम्बर 1983)

जी.एस. घुरिये भारत में प्रमुख संस्थापक समाजशास्त्री है। जिन्हें भारत के समाजशास्त्री जन्मदाता के रूप में माना जाता है। यें पैट्रिक गीड्स के शिष्य थे। जो उन्हीं के बाद बम्बई विश्वविद्यालय से जुड़े । आइये, अब हम उनकें जीवन परिचय, अध्यापन, शोधकार्य एवं लेखन के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करें।

4.2.4.1. जीवन परिचय

गोविंद सदाशिव घुरिये का जन्म 12 दिसम्बर 1893 में महाराष्ट्र के दक्षिणी पश्चिमी तट के मालवन गांव में एक परंपरावादी ब्रह्ममण परिवार में हुआ था। उनका परिवार अत्यन्त धर्मपरायण और धर्मनिष्ठ था। परिवार के इस धार्मिक एवं परम्परिक वातावरण का घुरिये के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। सन् 1905 में यज्ञोपवीत संस्कार के बाद प्राम्भिक शिक्षा मालवन से शुरू हुई। स्कूली शिक्षा जूनागढ़ (महाराष्ट्र) में प्राप्त किया। उच्च शिक्षा बम्बई के सुप्रसिद्ध एलफिन्सटन कालेज में हुई। सन् 1918 में यही से तुलनात्मक भाषाशास्त्र (अंग्रेजी, संस्कृत, और पाली) में एम.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया, जिसके लिए उन्हें कुलपति द्वारा स्वर्ण पदक भी प्राप्त हुआ इसकें बाद बम्बई विश्वविद्यालय के पैट्रिक गीड्स के सम्पर्क में आये इनके कहने पर उन्होंने 'नगरीय केन्द्र के रूप में बम्बई' विषय पर लेख लिखा। जिसकी गीड्स ने अत्यधिक प्रंशसा की। जिनकी सिफारिश पर ही उन्हें विदेश अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। जिसकी सहायता से वे अध्ययन के लिए लंदन गये। जहां उन्होंने विश्व प्रसिद्ध संस्थान 'लंदन स्कूल ऑफ इकोनामिक्स' में कुछ समय तक एल.टी. हाबहाउस के साथ अध्ययन कार्य किया। बाद में वें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय चले गये। वहां उन्होंने डब्लू.एच.आर.रिवर्स के सानिध्य में शोधकार्य प्रारम्भ किया। घरिये को शोध उपाधि प्राप्त होने के पूर्व ही सन् 1922 में प्रो0 रिवर्स की मृत्यु हो गयी। बाद में इन्होंने ए.सी.हैड्डन के निदर्शन में सन् 1923 में शोधकार्य पूरा किया। जो सन् 1932 में 'भारत में जाति और प्रजाति' नाम से प्रकाशित हुआ। सन् 1924 में घुरिये समाजशास्त्र विभागाध्यक्ष के रूप में बम्बई विश्वविद्यालय से जुड़े जहां 10 वर्ष तक रीडर के रूप में कार्य करने के बाद सन् 1934 में प्रो0 एवं विभागाध्यक्ष बनें। इन्हीं के नेतृत्व में सन् 1951 में 'इंण्ड़ियन सोशियोलाजिकल सोसाइटी' की स्थापना हुई। सन् 1951-1961 तक घुरिये इसके अध्यक्ष रहे। घुरिये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इनका अध्ययन बड़ा विस्तृत और विशाल था। उनके समाजशास्त्रीय अध्ययनों की प्रमुख विशेषता यह रही कि उन्होंने अपने समय में प्रचलित भारत विद्याशास्त्रीय, मानवशास्त्रीय (सहभागी अवलोकन), सांककीय और सर्वेक्षण आदि जैसी अध्ययन पद्धतियों का प्रयोग किया। घुरिये भारत विद्याशास्त्रीय परिपेक्ष्य के प्रबल

समर्थक थे। संस्कृत का अच्छा ज्ञान होने के कारण उन्होंने भारतीय समाज को समझने के लिए भारतीय धार्मिक ग्रन्थों का सहारा लिया और जाति, जनजाति, समाज एवं संस्कृति, गांव, शहर, साधु और कला आदि व्यापक अध्ययन किया। 'महादेव कोली' कोली के अध्ययन में उन्होने क्षेत्रकार्य प्रविधि का प्रयोग किया सन् 1959 में सेवानिवृत्ति से पहले उन्होंने भारत में समाजशास्त्रीय की नई पीढ़ी को तैयार किया जिसमें प्रमुख रूप से एम.एन. निवास, के.एम. कपाड़ियां, इरावती कर्बे, के.टी. मर्र्चेन्ट, आई.पी.देसाई, ए.आर.देसाई, वाई.वी.दामले, एम.एल. शर्मा आदि है।

4.2.4.2. प्रमुख विचार

जाति एवं प्रजाति के संदर्भ में - घुरिये ने अपनी पुस्तक 'भारत में जाति एवं प्रजाति' में जाति का विस्तृत अध्ययन किया बाद में यही पुस्तक कुछ संशोधन और परिवर्धन के साथ समय-समय पर अगल-अलग नामों से (भारत में जाति और वर्ग 1950, जाति वर्ग और व्यवसाय 1961) कई संस्करणों में प्रकाशित हुई। जाति के उद्भव के बारे में घुरिये ने कहा है कि 'जाति इण्ड़ो आर्यन संस्कृति के ब्रह्मणों का शिशु है जिसका पालन-पोषण गंगा के मैदान में हुआ और वहाँ से देश के दूसरे भागों में फैला' घुरिये जाति को एक जाटिल घटना बताते हुए इसकी कोई निश्चित परिभाषा नही दी। किंतु इसकी छः विशेषताओं का उल्लेख किया है यह विशेषताएं निम्नलिखित है।

1. समाज का खण्डात्मक विभाजन
2. संस्तरण
3. भोजन तथा सहवास पर प्रतिबंध
4. विभिन्न जातियों की नागरिक और धार्मिक निर्योग्यताएँ तथा विशेषाधिकार
5. विवाह सम्बन्धी प्रतिबंध

घुरिये ने जाति एवं उपजातियों के भेद को स्पष्ट करते हुए कहा कि जिन्हे हम जातियॉ कहते है वें उपजातियॉ है। इन उपजातियों पर ही उपर्युक्त विशेषताऐं लागू होती है। जाति के उद्भव के बारे में उन्होंने रिजले के प्रजातिक सिंद्धान्त का समर्थन किया है। वें आर्यों एवं अनार्यों के प्रजातीयें एवं सांस्कृतिक सम्पर्क को जाति व्यवस्था के जन्म के लिए उत्तरदायी मानते है। रक्त शुद्धता की भावना के कारण ही आर्यों एवं

अनार्यों में कई उच्च एवं निम्न समूह बने इस प्रकार जाति व्यवस्था का आदि स्त्रोत आर्य एवं द्रविणों के बीच पाया जाना वाला प्रजाति भेद था। घुरिये के जाति के भविष्य सम्बन्धी विचार निराशावादी होने के साथ-साथ विसंगतियों से भरा है। घुरिये के अनुसार परम्परिक व्यवसायिक विशिष्टीकरण तेजी से समाप्त होता जा रहा है, सामाजिक व्यवहार के नियम अपेक्षाकृत उदार हो गये है, अतः यह कहा जा सकता है कि जाति प्रणाली की कुछ पुरातन विशेषताये अब नही रही है। तथापि यह प्रणाली पूर्वत अपनी प्राण स्फूर्ति बनाये हुए है। जाति समाज में चाहे अन्य बातों से कितना ही बदल गया हो इसकी जाति के अन्दर के विवाह

(अन्तर्विवाह) की प्राचीन विशेषता अभी भी यथावत है। घरिये ने एक अन्य स्थान पर जाति में हो रहे परिवर्तनों पर टिप्पणी करते हुए कहते है कि जाति के कुछ नियम कमजोर हुए है, अपवित्रता एवं अशुचिता की धारणा कमजोर पड़ गयी है भोजन और पेय पद्धार्थो सम्बन्धी नियमों में विशेषतया नगरों मे कॉफी शिथिलता आ गयी है। घुरिये ने जाति में परिवर्तन सम्बन्धी तीन प्रमुख धाराओं का उल्लेख किया है - गांधीवादी विचारधारा, सम्मिश्रण और समूहीकरण तथा जाति की समाप्ति। गांधीवादी धारा के समर्थक जाति को अपने मौलिक वर्ण व्यवस्था के रूप में (ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) पुनः स्थापित करने के पक्ष में है। घुरिये इसे अव्यवहारिक मानते है। सम्मिश्रण और सामूहिककरण की दूसरी विचारधारा के अनुसार उपजातियों के वर्तमान स्वरूप को आर्थिक और सांस्कृतिक आधार पर वृहत जातियों में सामूहिककरण के पक्ष मे है। इस प्रक्रिया के द्वारा समान प्रस्थिति वाली जातियां धीरे-धीरे एक हो जायेंगी, अन्ततः हिंदू समाज जाति विहीन समाज में बदल जायेगा। घुरिये का इस बारे मे मत है कि सामूहीकरण की यह प्रक्रिया अत्यन्त धीमी है। इसमें शिक्षा के प्रसार और प्रगतिशील बनाने में समय लगेगा। जाति के समाप्ति की पक्षधर तीसरी विचारधारा जाति के कुछ पक्षो को अत्यन्त निकृष्ट और कुछेक को राष्ट्र विरोधी मानती है इस विचारधारा के प्रबल समर्थक अम्बेड़कर है। घुरिये का इस बारे में मत है कि 'रक्त सम्मिश्रण आपसी संबंधों को मजबूत करने और राष्ट्रीयता को बढाने का एक प्रभावशाली उपाय है' इसके लिए उन्होने अन्तर्जातीय विवाहों का सुझाव दिया।

घुरिये जाति और प्रजाति में आंतरिक संबंध मानते हुए उन्होंने हिंदू समाज को उनकी शारीरिक विशेषताओं के आधार पर छः भागो में बाटा जो निम्नलिखित है।

1. इंण्ड़ो आर्यन
2. पूर्व द्रविण
3. पश्चिमी द्रविण
4. द्रविण
5. मुण्ड़ा
6. मंगोलियन

जनजातियों के संदर्भ में - घुरिये जाति एवं प्रजाति के साथ-साथ प्रजातियों का भी व्यापक रूप से अध्ययन करते है। इन्होंने अपनी पुस्तक 'अनुसूचित जनजातियॉ' में भारत के आदिवासी जातियों का ऐतिहासिक, प्रशासनिक और सामाजिक आयामो का विश्लेषण किया। वहीं अपनी पुस्तक 'तथाकथित आदिवासी और उनका भविष्य' में उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं का उनके ऐतिहासिक संदर्भ में चर्चा की है। घुरिये ने महाराष्ट्र की जनजाति पर एक पुस्तक लिखी । इन्होंने लिखा है कि भारतीय संविधान इन जनजातियों को पिछडी हुई जातियां मानता है, न कि चिड़ियाघर। घुरिये ने भी जनजातियों की स्थिति हिन्दुओं के पिछड़े दलित वर्ग के रूप में स्वीकार करते हुए भारतीय समाज के साथ इनके एकीकरण पर जोर दिया है। इन्होंने भारतीय जनजातियों के पिछडेपन का कारण उनका हिंदू समाज में पूरी तरह एकीकृत न होना रहा है। इस तरह

घुरिये भारतीय जनजातियो की समस्याओं के समाधान के लिए 'आत्मसात् की नीति' प्रस्तावित की। जो बेरियर एल्विन के नेशनल पार्क की नीति (अलग-थलग की नीति) और जवाहर लाल नेहरू की एकीकरण नीति (आरक्षण और विकास) से सर्वथा भिन्न है। उत्तरपूर्वी जनजातियों पर लिखी अपनी बाद की रचना में घुरिये ने अलगाववादी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया और कहा कि यदि इन प्रवृत्तियों को रोका न गया तो देश की राजनीतिक एकता को खतरा उत्पन्न हो सकता है।

शहरीकरण के संदर्भ में - घुरिये भारत में शहरीकरण के संदर्भ में अपना विचार रखते हुए कहते है कि भारत में शहरीकरण औद्योगिकरण का परिणाम नही है। भारत में हाल के वर्षों तक शहरीकरण की प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्रो से ही आरम्भ होती थी। उन्होंने ने इसकी पुष्टी में कुछ संस्कृत ग्रंथों और दस्तावेजों के उदाहरण दे कर बताया कि सुदूर गांवो में बाजार के आवश्यकता के कारण शहरी क्षेत्रो का विकास हुआ। वास्तव में कृषि व्यवस्था के विस्तार के कारण आवश्यकता से अधिक अनाज की पैदावार होने लगी। इसके विनिमय के लिए और अधिक मंड़ियों और बाजारो की जरूरत थी जिससे कई ग्रामीण क्षेत्रो में किसी बडे गांव के एक भाग को मंडी या बाजार में बदल दिया जाता था। इसके फलस्वरूप ऐसे क्षेत्रो में कस्बों का निर्माण होने लगा वहां धीर-धीरे प्रशासनिक,न्यायिक और अन्य संस्थाऐं बन गयी।

भारत में धार्मिक विश्वास और रीति-रिवाजो के संदर्भ में - घुरिये के अनुसार प्राचीन भारत, मिस्श्र, और बेबियोलोनिया में धार्मिक चेतना धर्म स्थलों से जुडी हुई थी। भारतीय धर्म में विभिन्न देवताओं की भूमिका पर अपनी रचना में शिव, विष्णु, दुर्गा जैसे प्रमुख देवी-देवताओ का उद्भव का अध्ययन किया उनका मत है कि भारत में अनेक पंथों के विकास और विस्तार का राजनीति के साथ-साथ लोक समर्थन भी रहा था। महाराष्ट्र के गणेश उत्सव और बंगाल के दुर्गापूजा उत्सवों को लोकप्रिय बनाने में बालगंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल जैसे राष्ट्रवादियों का प्रयास शामिल था।

भारतीय संस्कृति में साधू की भूमिका के संदर्भ में - घुरिये अपनी पुस्तक 'इंण्ड़यन साधूज' में सन्यास की दोहरी भूमिका की समीक्षा की है। भारतीय संस्कृति के अनुसार ऐसा समझा जाता है कि साधुओं एवं सन्यासियों को सभी जाति प्रतिमानों, सामाजिक परंपराओं, नातेदारियों आदि से मुक्त होना चाहियें। वस्तुतः वह समाज के दायरे से बाहर होता है। शैवमतावलम्बियों में 'नकली दाह संस्कार' के बाद संन्यास ग्रहण किया जाता है। अर्थात वह समाज के लिए मृत सामान हो जाता है। घुरिये ने भारतीय परंपरा का ऐतिहासिक समीक्षा करते हुए कहा कि आठवीं शताब्दी के सुधारक शंकराचार्य के समय से प्रायः हिंदू समाज का मार्ग दर्शन साधुओं ने किया। ये साधु एकान्तवासी नही थे। इनमें से अधिकाश मठ व्यवस्था से जुडे हुए थे जिनकी अपनी विशिष्ट परंपरा होती थी। साधु धर्म ग्रंथों के अध्ययन - अध्यापन के संरक्षक थे। और बाहरी हमलों से धर्म की रक्षा करते थे। घुरिये के अनुसार इस प्रकार हिंदू समाज में संन्यास एक रचनात्मक शक्ति के रूप में था। घुरिये ने विभिन्न श्रेणियों के साधुओं पर विस्तार से विचार किया। इनमें शैवों (दशनामे) और वैष्णव (बैरागी) प्रमुख थे। इन दोनो मतो में नागा साधु थे। ये साधु हिंदू धर्म को हानि पहुचाने वाले से लड़ने को तैयार रहते थे।

बकिमचन्द्र चटर्जी का बंगला उपन्यास 'आनन्द मठ' में शैव साधुओं की कहानी है। इन साधुओं ने धर्म की रक्षा के लिए अंग्रेजो से संघर्ष किया था। आधुनिक युग में विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती और अरविन्द घोष जैसे कुछ प्रसिद्ध संन्यासियों ने हिंदू धर्म के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया।

सामाजिक तनाव पर विचार - सन् 1968 में प्रकाशित भारत में सामाजिक तनाव नामक पुस्तक में घुरियें ने भारत में सामाजिक तनाव का व्यापक अध्ययन करते हुए हिंदू और मुस्लिम संस्कृति की ऐतिहासिक समीक्षा की है। जिसमें इन्होंने की बताया है कि अकबर के काल को छोड़कर मुगलों के भारत आगमन के बाद से ही दोनो संस्कृतियों में निरान्तर संघर्ष रहा है। घुरिये के अनुसार देश का विभाजन 'पृथकतावाद और विशिष्टावाद' के बाद लम्बे इतिहास के परिणामों का फल है। सन् 1947 में भारत के विभाजन के बाद भी निरान्तर हिंदू-मुस्लिम तनाव रहा है। उन्होंने वोट बैंक के लिए कुछ राजनीतिक दलों के अलगाववादी राजनीति को भी सामाजिक तनाव के लिए जिम्मेदार बताया है।

घुरिये के विचारों पर प्रमुख रूप से तीन ब्रिट्रिश विचारकों पैट्रिक गीड्स, हॉबहाउस, और रिवर्स का प्रभाव पड़ा जाति सम्बन्धी उनके विचारों पर हॉबहाउस और रिवर्स के विचारों की स्पष्ट छाप दिखायी पड़ती है। घुरिये जाति व्यवस्था के पक्ष में नही थे। क्योकि वें इसे सामाजिक न्याय के विरूद्ध मानते थे। उनकी दृष्टि में जाति व्यवस्था सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों का हनन करती है। शहरीकरण से सम्बन्धी विचार घुरिये ने पैट्रिक गीड्स से ग्रहण किये थे। घुरिये के चिंतन में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय परंपरा और संस्कृति का प्रभाव रहा। घुरिये जीवन भर पौराणिक संस्कृति, साहित्य और मानवशास्त्री प्रस्थापनाओं और प्रविधियों के जरिये इतिहास और परंपरा की खोज करते रहे।

4.2.4.3. महत्वपूर्ण रचनाएँ

1. कास्ट एंड रेस इन इण्ड़िया (1932)
2. संस्कृति और समाज (1945)
3. कास्ट,क्लास एण्ड अक्यूपेशन (1961)
4. सिटीज एण्ड़ सिबलाइजेशन (1962)
5. अनुसूचित जातियॉ (1963)
6. दा महादेव कोलीस (1963)
7. दा इण्ड़ियन साधूज (1964)
8. सोशल टेंशन इन इण्ड़िया (1968)

4.2.5. राधा कमल मुखर्जी (1889-1968)

आर.के.मुखर्जी आधुनिक भारत के प्रसिद्ध सामाजिक चिंतक एवं समाजशास्त्री थे। जिन्होंने भारत में एक विषय के रूप समाजशास्त्र को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्हीं के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश में सर्वप्रथम 1921 में लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन शुरू हुआ। इन्होंने सामाजिक मूल्य, सामाजिक परिस्थितिकी, समाज संस्कृति एवं सभ्यता, कला, नैतिकता आदि विषयों का व्यापक रूप से अध्ययन किया है। सामाजिक चिंतन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान के कारण ही भारत सरकार ने इन्हें सन् 1962 में पद्म भूषण पुरस्कार से सम्मानित किया था। इस इकाई के अन्तर्गत इनके जीवन परिचय के साथ-साथ प्रमुख विचारों पर भी विस्तृत चर्चा की गयी है।

4.2.5.1. जीवन परिचय

राधा कमल मुखर्जी का जन्म पश्चिमी बंगाल के बरहामपुर जिलें के एक छोटे से कस्बे में हुआ था। इनके पिता वकील थे इनका परिवार आर्थिक एवं बौद्धिक रूप से सम्पन्न था। इनकें घर में अध्ययन, अध्यापन का अच्छा माहौल था। मुखर्जी की प्रारम्भिक शिक्षा बरहामपुर में और कालेज स्तर की शिक्षा कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज में हुई। यहां से उन्होंने अंग्रेजी और इतिहास ऑनर्स किया। यहीं उन्होंने कॉम्ट, स्पेंसर, लेस्टर वार्ड, हाबहाउस और गिडिंस जैसे विद्वानों की पुस्तकों का अध्ययन एवं चिंतन किया। बाद में सामाजिक मानवशास्त्र के अध्ययन के लिए इंग्लैंड चले गये। मुखर्जी की विशेष रूचि इतिहास के अध्ययन में थी। किंतु प्रौढ़ शिक्षा के दौरान कलकत्ता के गंदी बस्तियों के सम्पर्क आये और वहां के लोगो की दुर्दशा, अधःपतन और दुख दरिद्रता को देख और अनुभव कर उनकी रूचि अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र में जाग्रत हो गयी। और उन्होंने इन विषयों के साथ राजनीतिशास्त्र का भी अध्ययन कर एमए की उपाधि सामाजिक विज्ञान में प्राप्त की। सन् 1910 में मुखर्जी बरहामपुर में अपने ही कालेज में अर्थशास्त्र के प्राध्यापक बन गये। यहां पॉच वर्षों तक कार्य किया और सन् 1916 में उन्हें लौहार के एक कालेज में अध्यापन का प्रस्ताव मिला, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। सन् 1917 में वे कलकत्ता विश्वविद्यालय से जुड़े यहां उन्होंने 1921 तक अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीतिक दर्शन का अध्यापन किया। इसी अवधि में उन्होनें सन् 1920 में 'भारतीय ग्रामीण समुदाय में सामाजिक - आर्थिक परिवर्तन' विषय पर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। सन् 1921 में जब लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना हुई तो वें यहां अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष बन गये। सन् 1945-47 के बीच उन्होंने ग्वालियर राजघराने के आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य किया। सन् 1955 में वें लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति बन गये। और इस पद से 1958 में सेवामुक्त होकर इसी विश्वविद्यालय के नवनिर्मित 'मानव संबंधों और समाजशास्त्र के जे.के. संस्थान' में निदेशक बन गये। जहां वें मृत्यु प्रर्यन्त रहें। वें ही इस संस्थान के जन्मदाता थे।

आर.के.मुखर्जी अपने बौद्धिक जीवन में बृजेन्द्र नाथ सील, पैट्रिक गीड्स और नरेन्द्र सेन अत्यधिक प्रभावित हुए। अमेरिका प्रवास के दौरान उन पर वेब्लन के विचारों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने भारतीय पारम्परिक विचारधारा को पश्चिमी चुनौतियों के समक्ष अपनाते हुएं। सामाजिक-सांस्कृतिक विज्ञानों में प्रोफेसर सील की तुलनात्मक पद्धति के प्रयोग पर विशेष बल दिया। डॉ. मुखर्जी गीड्स की विश्लेषण पद्धति से भी प्रभावित थे। सामाजिक परिस्थितिकी, जनसंख्या तथा क्षेत्रीय अध्ययन सम्बन्धी मुखर्जी के विचारों पर पैट्रिक गीड्स के प्रभावों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नरेन्द्र सेन गुप्ता के विचार मुखर्जी के सामाजिक मनोविज्ञान में रूचि पैदा करने में सहायक सिद्ध हुआ। इन दोनो ने मिलकर 'इन्ट्रोडक्शन टू सोशल साइकोलॉजीः माइण्ड एण्ड सोसाइटी 1928 नामक पुस्तक भी लिखी। इन भारतीय विचारकों के अतिरिक्त पश्चिम के कुछ विचारकों ने भी मुखर्जी के साथ काम किया जिसमें प्रमुख रूप से रास, आर.ए.पार्क, मैकेंजी, और सोरोकिन आदि थे।

4.2.5.2. प्रमुख विचार

भारत में एक विषय के रूप में समाजशास्त्र की शुरूवात करने वाले विद्वानों ने आर.के.मुखर्जी की गणना प्रथम पीढी के समाजशास्त्रियों में की जाती है। डॉ. मुखर्जी ने भारतीय सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए पश्चिमी समाजविज्ञान माडल और मार्क्सवादी माडल दोनो को ही अनुपयुक्त और अप्रर्याप्त बताया। मुखर्जी ने समाजशास्त्र-अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सूक्ष्म स्तर पर समस्याओं के विश्लेषण की शुरूवात की। उन्होंने अपने अध्ययन तथा शोध कार्य दोनो में सामाजिक विज्ञानों के विभिन्न क्षेत्रों में परस्पर अन्तःक्रिया की आवश्यकता पर बल देते हुए मानवीय समस्याओ के अध्ययन में समाकलित उपागम (इंटीग्रेटेड एप्रोच) का समर्थन किया। मुखर्जी ने अपने अर्थशास्त्र के 'संस्थागत सिद्धांत' में परंपरा एवं मूल्यों की भूमिका को स्वीकार करते हुए बताया कि किस प्रकार आर्थिक सिद्धांत, भौतिक एवं मनोविज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। डॉ. मुखर्जी पश्चिम की आनुभविक-प्रत्यक्षवादी पद्धति से सहमत नही थे। साथ ही साथ इन्होंने वर्ग संघर्ष और साम्यवाद की विचारधाराओं को भी अस्वीकार करते हुए समुदाय वाद की वैकल्पिक धारणा प्रस्तुत की है। इनके प्रमुख विचार निम्नलिखित है-

1. मूल्यों का समाजशास्त्र- समाजशास्त्र में आर.के.मुखर्जी को विशेष ख्याति उनकें समाजिक मूल्य सम्बन्धी सिद्धांत के कारण ही प्राप्ति हुई। समाजिक संरचना के क्षेत्र में मूल्यों का अध्ययन करने वाले वे पहले विद्वान थे। उन्होंने अपनी पुस्तक मूल्यों की सामाजिक संरचना (द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ वैल्यूज 1949) तथा मूल्यों के आयाम (द डायमेन्संस ऑफ वैल्यूज 1964) में मूल्यों का गहन अध्ययन किया। प्रथम पुस्तक में मूल्यों के एक समाजशास्त्रीय सिंद्धांत को प्रस्तुत करते हुए मूल्य की परिभाषा, उत्पत्ति, विकास, नियम आदि पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है वहीं दूसरी पुस्तक में मूल्यों के आयामों को समझने का प्रयास किया। मूल्य को परिभाषित करते हुए डॉ मुखर्जी ने लिखा है '' मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वें इच्छायें एवं लक्ष्य है

जिनका आन्तरीकरण सीखने यह सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है''। मूल्य सम्बंधी उनके विचार उनकें अधिकांश लेखनों में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप में छाये हुए है। मूल्यों के बारे में मुखर्जी ने विशेषता दो मूलभूत मुद्दो पर ध्यान आकर्षित किया है। पहला, ' उनका यह मानना है कि मूल्य धर्म और राजनीतिशास्त्र तक सीमित नही है। अपितु अलग-अलग क्षेत्र में अलग-अलग मूल्य भी है। जैसे आर्थिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, वैधानिक मूल्य, शैक्षिक मूल्य, नैतिक मूल्य, परिस्थितिकी मूल्य आदि। जीवन के विभिन्न पक्षों में जुडे मूल्यों के आपस में प्रकार्यात्मक सम्बंध होता है, परिणाम स्वरूप में समाज में संतुलन एवं व्यवस्था बनी रहती है। दूसरा, 'मूल्य आत्मनिष्ठ अथवा व्यक्तिपरक अकाक्षाओं का परिणाम नही होते अपितु ये मूल्य हमारी अकाक्षाओं और इच्छाओं में समाविष्ठ होते है। दूसरे शब्दो में मूल्य सामान्य और वस्तुनिष्ठ दोनो होते है। मुखर्जी ने मूल्यों को दो वर्गों में विभाजित किया है। जो निम्न है-

2. साध्य मूल्य - साध्य मूल्य मानव के आन्तरिक जीवन से संबंधित ऐसे लक्ष्य एवं तृप्तियॉ है जिन्हें मनुष्य और समाज दोनो ही जीवन और मस्तिष्क के विकास के लिए आवश्यक मानते है। ये मूल्य व्यक्ति के आचरण के अंग होने के साथ-साथ अमूर्त या लोकातीत होते है जैसे सत्य, शिव, व सुन्दर से संबंधित मूल्य मनुष्य के आन्तरिक जीवन से संबंधित है स्वतः ही पूर्ण हैं।

3. साधन मूल्य - साधन मूल्य प्रथम प्रकार के मूल्यों अर्थात साध्य मूल्यों को प्राप्त करने, निर्वाह करने, विकसित करने सहायता करते है। स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सुरक्षा, सत्ता, पेशा, प्रस्थिति आदि से संबंधित मूल्य साधन मूल्य है। क्योकि इनका उपयोग कतिपय लक्ष्यों व संतोषो की प्राप्ति के साधन के रूप में किया जाता है। ये मूल्य विशिष्ट और अस्तित्वात्मक होते है जिनका प्रयोग 'लौकिक लक्ष्यों' की पूर्ति के साधन या उपकरण के रूप किया जाता है।

डॉ. मुखर्जी ने मूल्यों तथा गैरमूल्यों (अपमूल्यों) में भी भेद किया है। समाज द्वारा स्वीकृत लक्ष्यों को प्राप्ति करने के लिए स्वीकृत मानदंडों की उपेक्षा कर जब उनके विरूद्ध आचरण किया जाता है, तो इस स्थिति को सामाजिक मूल्यों का उल्लंघन अथवा अपमूल्य कहा जाता है। आर.के. मुखर्जी ने मूल्यों के कुछ नियमों का उल्लेख करते हुए कहते है कि समाज के नियन्त्रण या अनुमोदन के माध्यम से समस्त मानवीय अभिप्रेरणायें मूल्यों से रूपान्तरित हो जाती है। आधारभूत मूल्यों की परितृप्ति हो जाने पर खिन्नता या उदासीनता पनपती है। उस अवस्था समाज एवं संस्कृति मनुष्य के लिए नवीन इच्छाओं, नवीन लक्ष्यों तथा नवीन साधनों को प्रस्तुत करते है। जिसके कारण नये मूल्य पनपते है। इसी को मूल्यों के चक्र का नियम (ला ऑफ दा साइकिल ऑफ वैल्यू) कहते है। डॉ. मुखर्जी के अनुसार सभी मूल्य एक ही स्तर के नही होते अपितु उनमें एक संस्तरण देखने को मिलता है। इस संस्तरण का सम्बंध मूल्यों के आयामों से होता है। मूल्यों के तीन आयाम जैविक, सामाजिक, और आध्यमिक होते है। आर.के मुखर्जी के मूल्यों के सिद्धांत की तीन प्रमुख विशेषताएं है-

प्रथम - मूल्य जनसमूह की आधारभूत प्रेरणाओं को व्यवस्थित रूप में संतुष्ट करते है।

द्वितीय - मूल्यों का रूप सामान्य होता है। इनमें व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो प्रकार के मनोभाव एवं प्रतिक्रियाएं सम्मिलित होती है।

तृतीय - मानव समाज में विभिन्नताओं के बावजूद कुछ सार्वभौमिक मूल्य है सभी धर्म इन सार्वभौमिक मूल्यों के भंडार है।

पिछले कुछ दशकों में मूल्य रहित या मूल्य तटस्थ सामाजिक विज्ञान का विचार भारत सहित सभी पश्चिमी देशों में उभरा है। इस विषय पर कॉफी वाद-विवाद हुआ है और अभी भी जारी है। मुखर्जी के विचार में तथ्य और मूल्य को अलग-अलग समझना सही नही है। मानव अन्तःक्रियाओं में इन दोनो को एक-दूसरें से अलग नही किया जा सकता। प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है तथा इसकें मूल्य और प्रतिमान लोगो के व्यवहार का निर्देशन करते है। इसलिए पश्चिम की प्रत्यक्षवादी विचारधारा जो तथ्यों और मूल्यों को अलग-अलग रूप में देखती है, भारतीय समाज के सन्दर्भ में डॉ. मुखर्जी को रास नही आया।

सामाजिक परिस्थितिकी - आर.के.मुखर्जी ने सामाजिक परिस्थितिकी का व्यापक रूप से अध्ययन करते हुए इससे संबंधित पुस्तकें एवं अनेक लेखों का सम्पादक किया। इनकी दृष्टि में सामाजिक परिस्थितिकी एक मिश्रित विज्ञान है, जिसमें कई सामाजिक विज्ञानों का परस्पर आदान-प्रदान होता है। इसमें मानव जीवन पर सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक कारको सहित भूवैज्ञानिक, भौगोलिक एवं जैविक कारकों के सम्मिलित प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। डॉ मुखर्जी ने बताया कि मानव परिस्थितिकी और समाज के बीच गहरा सम्बंध है। अतः एक परिस्थितिक क्षेत्र के विकास को एक गतिशील प्रक्रिया के रूप देखा जाना चाहिए मुखर्जी के अनुसार मानव सम्बंधों के अध्ययन में 'मानव-प्रदेश' ही एक उचित इकाई है, क्योंकि एक प्रदेश में ही हम एक दूसरें के साथ अन्तःक्रिया करने वाले, एक संस्कृति को मानने वाले मानव समूहों और पौधों, पशुओं एवं उनके निर्जीव पर्यावरण के बीच पाये जाने वाले जटिल अन्तर्सम्बंधों को ठीक समझ सकते है। डॉ मुखर्जी ने सामाजिक परिस्थितिकी दो प्रमुख प्रकार बताये है-

व्यावहारिक परिस्थितिकी - व्यावहारिक परिस्थितिकी इस बात पर बल देती है कि मानव प्रकृति का दास नही । अपितु वह उसका एक सहयोगी है। इसमें मानवीय जनसंख्या, प्राकृतिक साधन, वनस्पति, और पशु जगत के बीच संतुलन का अध्ययन किया जाता है।

समुदाय परिस्थितिकी - इसके अन्तर्गत मानव भूगोल, जीवशास्त्र, अर्थशास्त्र, सामाजिक मनोविज्ञान, और प्रौद्योगिकी के साथ परिस्थितिकी सम्बंधो और अन्तःक्रियाओ का अध्ययन किया जाता है।

डॉ. मुखर्जी ने सामाजिक परिस्थितिकी पर अपनी पुस्तक में पाश्चात्य सामाजिक वैज्ञानिकों की मान्यताओं से भिन्न विचार व्यक्त किये हैं। अमेरिका में 'शिकागो स्कूल' ने सामाजिक विघटन, शहरीकरण की समस्याओं के आनुभविक अध्ययन को महत्व दिया इस विचारधारा के समर्थक पार्क, वार्गेस, लुई विर्थ, गीडिग्स आदि जैसे समाजशास्त्री थे जिनके विचारो से प्रभावित होकर डॉ. मुखर्जी ने अपना सामाजिक परिस्थितिकी से संबंधित सिद्धांत दिया।

शहरीकरण की समस्याओं का अध्ययन- डॉ मुखर्जी ने भारत में औद्योगिकीकरण के बाद शुरू होने वाली शहरीकरण की प्रक्रिया का अध्ययन किया। मुम्बई, कलकत्ता, मद्रास और कानपुर आदि जैसे शहरो की गंदी बस्तियों, वैश्यावृत्ति, जुऑखोरी, सामाजिक अपराध तथा आवास जैसी मूलभूत असुविधाओं का अध्ययन किया।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता- डॉ मुखर्जी ने भारतीय कला, वास्तुकला, इतिहास और संस्कृति के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की है। इनका मानना था कि एशियाई कला का उद्देश्य समाज का सामूहिक विकास करना है। जहां प्राचीन कलाएं सामुदायिक भावना से ओतप्रोत होती थी। वहीं पश्चिम के कलात्मक प्रयास में वैक्तिक भावना की प्रधानता होती थी। डॉ मुखर्जी के अनुसार भारतीय कला धर्म से जुडी रही है। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म जैसे भारतीय धर्म कला, नीतिशास्त्र एवं सामाजिक मूल्यों के स्पष्ट प्रतिमान रहे हैं। जिसमें विभिन्न समूह एक साथ रह सकते है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय कला, संस्कृति एवं धार्मिक मूल्य अत्यधिक सहिष्णु थे। जिसके कारण यहां स्थानीय संस्कृतियों की समृद्धि के साथ-साथ नई सम्मिलित संस्कृतियों का भी उद्भव हुआ। डॉ मुखर्जी ने सार्वभौम सभ्यता (संस्कृति) पर भी विचार रखा जिसके अन्तर्गत उन्होंने मानव सभ्यता को तीन स्तरों में विभाजित किया । यह स्तर एक-दूसरें से सम्बद्ध है। प्रथम स्तर पर जैविक विकास की चर्चा की गयी है, जिसने मानव सभ्यता के उदय और विकास में सहायता की है। द्वितीय स्तर पर उन्होंने सभ्यता की सामाजिक-मनोवैज्ञानिक आयामो की व्याख्या की है और तीसरे स्तर पर उन्होंने सभ्यता के आध्यमिक आयाम का विश्लेषण किया है।

डॉ मुखर्जी ने पश्चिम की प्रबोधनकालीन आधुनिकता को पूरी तरह अस्वीकार करते हुए अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि समाज के किसी भी सामान्य सिद्धांत की रचना तब तक नही कि जा सकती जब तक समाज को मनुष्य-ईश्वर-प्रकृति के त्रयी संरूपण में बांधा नही जाता है। डॉ मुखर्जी ने पिछली शताब्दी के साठ दशक में ही पश्चिमी सामाजिक विज्ञान की प्रकृति के संकट तथा इससे जुड़ी हुई आधुनिकता, औद्योगिकीकरण, और उपयोगितावादी योजनाओ के बारे में पूर्वानुमान कर समाज वैज्ञानिकों को इनके दुष्प्रभावों के बारे मे आगाह किया है। तथा भारतीय बुद्धिजीवियों को इसके अंधानुकरण से होने नुकसानो के प्रति सचेत किया।

4.2.5.3. महत्वपूर्ण रचनाएँ

1. दा फाउण्डेशन ऑफ इण्ड़यन इकोनॉमी (1916)
2. इन्ट्रोडक्शन ऑफ सोशल साइकोलॉजी: माइण्ड एण्ड सोसाइटी (1928)
3. दा रीजनल बैंलेस ऑफ मैन (1938)
4. इण्डियन वार्किंग क्लास (1940)
5. दा सोशल स्ट्राक्चर आफ वैल्यूज (1955)

6. इंटर कास्ट टेंशन
7. फिलोसाफी आफ सोशल साइंसेसज (1960)
8. दा डाइमेन्सन आफ हयूमन वैल्यूज (1964)
9. ऐ सिटी इन ट्रानजिशनः ए सर्वे आफ सोशल प्राब्लम्स आफ लखनऊ

4.2.6. धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी

डी.पी.मुखर्जी भारत के प्रमुख संस्थापक समाजशास्त्री थे। वे सन् 1922 में लखनऊ विश्वविद्यालय के जुड़े और लम्बे समय तक आर.के. मुखर्जी के साथ किया। डी.पी. मुखर्जी मार्क्सवाद के समर्थक थे जिसके कारण उन्होने भारतीय समाज के अध्ययन के लिए द्वन्द्वात्मक पद्धति का प्रयोग किया। इस भाग के अन्तर्गत डी.पी. मुखर्जी के जीवन परिचय के साथ-साथ उनके प्रमुख विचारों एवं कृतियों पर चर्चा की गयी है।

4.2.6.1. जीवन परिचय

डी.पी. मुखर्जी का जन्म 1864 में बंगाल के मध्यम वर्गीय ब्रह्ममण परिवार मे हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में हुई थी। इन्होंने प्रारम्भ में इतिहास का अध्ययन किया, किंतु बाद में स्नातकोत्तर उपाधि अर्थशास्त्र विषय में प्राप्त की। सन् 1922 में वें लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के लेक्चरर के पर नियुक्त हुए। वें मार्क्सवादी थे किंतु स्वयं को मार्क्सवादी के स्थान पर 'मार्क्सशास्त्री' (माक्सोलोजिस्ट) कहलाना अधिक पसन्द करते थे। डॉ मुखर्जी परंपरावादी ब्रह्ममण परिवार से थे जिसका प्रभाव इनके विचारों पर स्पष्ट रूप से दिखायी पडता है। इन्होंने भारतीय समाज के अध्ययन के लिए परंपराओ के अध्ययन को आवश्यक बताया है। भारत परंपरा और आधुनिकता के मध्य संघर्ष की द्वन्द्वात्मक व्याख्या कर इन्होंने भारतीय समाजशास्त्र में अपना विशेष स्थान बनाया है। इनका मानना है कि परंपरा तथा आधुनिकता, उपनिवेशवाद तथा राष्ट्रवाद, व्यक्तिवाद और समूहवाद में द्वन्द्वात्मक सम्बंध है। डॉ मुखर्जी के अनुसार सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन को दृष्टिकोण पृथकतावादी न होकर समष्टिवादी होना चाहिए। वें आधुनिक सामाजिक विज्ञानों में आनुभविकता के माध्यम से प्रत्यक्षवाद के बढते प्रभाव का भी विरोध करते है। वे कहते है कि प्रत्यक्षवाद व्यक्तिवाद पर अधिक बल देता है जो प्ररोक्ष रूप से मानवतावाद पर प्रहार है। लखनऊ विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने से एक वर्ष पूर्व सन् 1953 में उन्हें अलीगढ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया गया। यहां वे पॉच वर्ष तक रहे । इसी काल में वे हेग के 'अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक अध्ययन संस्थान' में समाजशास्त्र के अतिथि आचार्य रूप में कार्य किया। डॉ मुखर्जी 'भारतीय समाजशास्त्रीय परिषद' के संस्थापक सदस्यों में से थे।सन् 1962 में उनकी मृत्यु हो गयी।

4.2.5.2. प्रमुख विचार

डी.पी. मुखर्जी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न विद्वान थे। इन्होंने विभिन्न विषयों पर अपना विचार दिया है परन्तु समाजशास्त्र में भारतीय सामाजिक परंपरा और आधुनिकता से संबंधित द्वन्द्वात्मक सिद्धांत से इन्हे विशेष ख्याति प्राप्त हुई। समाजशास्त्रीय अध्ययन में इनके प्रमुख विचार निम्न है-

परंपरा से संबंधित विचार - भारतीय सामाजिक चिंतन में परंपरा से सम्बन्धित अध्ययन डी.पी. मुखर्जी के विचारो का केन्द्र है। इसको उन्होंने मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक पद्धति के आधार पर समझने का प्रयास किया है। लेकिन इन्होंने हीगल (विचारों का द्वंद्व) और मार्क्स (भौतिक पदार्थों का द्वंद्व) दोनो के द्वंद्ववादी धारणा से भिन्न द्वंद्वात्मकता का प्रयोग 'परंपराओं के द्वन्द्व' के रूप में किया है। इसी माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या की है। वे भारतीय परंपराओं के स्त्रोत धर्म, वेदान्त, बौद्ध धर्म, इस्लाम, और पश्चिमी संस्कृति को मानते है, जिनसे से भारतीय परंपराओ का निर्माण होता है। इस अवधारणा में डी.पी. मुखर्जी भारतीय और विदेशी दोनो परंपराओं को जोड़ते है। इस दृष्टि से भारतीय परंपरा एक प्रकार का संश्लेषण है जिसमें भारतीय तथा विदेश संस्कृतियों या मान्यताओं गठबंधन है। डॉ मुखर्जी ने भारतीय पम्पराओं का वर्गीकरण करते हुए तीन प्रकार बताएं प्राथमिक, द्वितीय और तृतीय, प्राथमिक परंपराओ का पालन प्रत्येक हिंदू के लिए अनिवार्य है। इससे किसी को मुक्ति नही है मृत्यु के बाद शरीर को अग्नि संस्कार द्वारा पंचभूतो में विलीन करना प्राथमिक संस्कार है। द्वितीयक एवं तृतीयक परंपरायें वैकल्पिक है। जिसमें व्यक्ति को छूट मिल जाती है। डॉ मुखर्जी के परंपरा की व्याख्या में तर्क को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। यह तर्क व्यावहरिक और निराधार कल्पना मात्र भी हो सकता है। उनका मानना था कि भारतीय समाज में जो भी परंपराएं है वे सामाजिक तथा ऐतिहासिक प्रक्रियाओ का परिणाम है।इन परंपराओं में वेदान्त, पश्चिमी उदारवाद और मार्क्सवाद का संश्लेषण है।

आधुनिकीकरण से संबंधित विचार- डॉ मुखर्जी आधुनिकीकरण को केवल तार्किकता से संबंधित नही मानते, उनका मानना है कि केवल इसी आधार पर आधुनिकता एक खोटी या अभिनयपूर्ण अवधारणा बनकर रह जायेगी। अतः आधुनिकता को किसी देश की संस्कृति के दायरें में ही देखा-परखा जाना चाहिए, यह सांस्कृतिक मूल्यों से पूर्णता मुख नही मोडती, अपितु यह उनका बेहतर तरीके से उपयोग करती है। उन्होंने आधुनिकीकरण को एक ऐतिहासिक प्रक्रिया माना है जो विस्तार, उन्नयन, गहनता और पुर्नजीवन को साथ प्रतिनिधित्व करती है इसकी उत्पत्ति परम्परिक और आधुनिक दोनो ही अन्तःक्रिया का प्रतिफल है। इस तरह डॉ मुखर्जी ने आधुनिकता को परंपरा को जोडकर समझने का प्रयास किया है। उनका मानका है कि आधुनिकीकरण में परंपरा बाधक नही, अपितु यह तो उसकी एक स्थिति, एक दशा है। यह ऐसे सास्कृतिक प्रतिमानों को जन्म देने पर बल देती है जो नवीन और पुरातन के समन्वय को प्रस्तुत करती है। इस तरह डॉ मुखर्जी के अनुसार आधुनिकीकरण नवीन मूल्यों और संस्थाओं के लिए ऐसी आधारभूमि को तैयार करती है जिसमें वे अपनी जडे जमा सके।

व्यक्तित्व के विकास से संबंधित विचार- डॉ मुखर्जी के अनुसार आधुनिक सामाजिक विज्ञानो में आनुभविक अध्ययन के माध्यम से प्रत्यक्षवाद को बढावा दिया जा रहा है। प्रत्यक्षवाद व्यक्तिाओं को मात्र जैविक और मनोवैज्ञानिक इकाईयो के रूप में देखता है। जिससे व्यक्तिवाद का बढावा मिलता है । डॉ मुखर्जी ने व्यक्तित्व के विकास के लिए व्यक्तिकरण और समष्टिकरण के बीच संतुलन स्थापित करने पर बल दिया है।

विविधता के संबंध में विचार- डॉ मुखर्जी ने भारतीय सांस्कृतिक विविधता का अध्ययन किया जिसमें उन्होनें हिंदू-मुस्लिम के सांस्कृतिक संबंधों एवं अन्तक्रिया का विस्तार से वर्णन किया । राजनैतिक दृष्टि से उत्तर भारत में 11वी.ई.पू. से 17वी.ई.पू. तक मुस्लिम बादशाहो ने हिंदू प्रजा पर शासन किया। इस दौरान प्रायः हिंदू राजाओं और मुस्लिम शासकों के बीच संधियों हुइर्, इस प्रकार मुस्लिम शासकों और हिंदू प्रजा में साझेदारी और भाईचारे की भावना विद्यमान थी। सांस्कृतिक दृष्टि से साहित्य, कला, संगीत, वेशभूषा, ललित कलाओं आदि के विकास में दोनों का एक दूसरे पर स्पष्ट प्रभाव था। उत्तर भारत में सूफीसंत एवं भक्ति संम्प्रदाय नें आपसी अन्तक्रिया को प्रोत्साहित किया।

अर्थशास्त्र के संबंध में विचार- डॉ मुखर्जी मूल रूप से अर्थशास्त्री थे। अर्थशास्त्र के प्रति उनका दृष्टिकोण दूसरे अर्थशास्त्रीयों से भिन्न था। उन्होने भारत के आर्थिक विकास को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशिष्टाओं के आधार पर देखां । उन्होंने बताया कि ब्रिटिश शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन हुए। शहरी-औद्योगिक अर्थव्यव्स्था ने न केवल पुरानी संस्थाओं के जाल को समाप्त किया बल्कि परंपरागत विशिष्ट जातियों को भी उनके व्यावसायिक धंधो से अलग कर दिया। इसके लिए नये सामाजिक अनुकूलन की आवश्यकता थी। इस नयी व्यवस्था में भारत के शहरी केन्द्रो का शिक्षित मध्यम वर्ग समाज का केन्द्र का केन्द्र बिन्दु बन गया।

4.2.6.3. महत्वपूर्ण रचनाएँ

धूर्जटी प्रसाद मुखर्जी की समाजशास्त्र पर कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ निम्नलिखित है-

1. पर्सनैलिटी एंड दा सोशल साइंसेज (1924)
2. वेसिक कान्सेप्टस इन सोसियोलाजी (1932)
3. माडर्न इण्डियन कल्चर (1942)
4. प्राब्लम्स आफ इण्डियन यूथस (1946)
5. डाइवर्सिटीज (1958)

4.2.7. सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत भारत में समाजशास्त्र के तीन संस्थापकों के विषय में विस्तृत चर्चा की गयी। सबसे पहले जी.एस. घुरिये के जीवन परिचय का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया और भारत में एक विषय के रूप समाजशास्त्र की स्थापना एवं विकास पर उनकें योगदान की चर्चा करते हुए उनके प्रमुख विचारों का भी अध्ययन किया गया। जिसमें उनके जाति, प्रजाति, जनजाति, भारतीय संस्कृति और सामाजिक तनाव आदि सम्बन्धी विचार प्रमुख रूप थे। इसके बाद आर.के.मुखर्जी के जीवन का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके प्रमुख विचारो की चर्चा की गयी। जिसमें मूल्यों का समाजशास्त्र, सामाजिक परिस्थितिकी, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता आदि प्रमुख है। अन्त में हमनें डी.पी. मुखर्जी का जीवन परिचय प्रस्तुत करते हुए उनके विचारों पर चर्चा की, जिसमें मुख्य रूप से परंपरा, आधुनिकीकरण, व्यक्तित्व का विकास अर्थशास्त्र सम्बन्धी विचार है।

4.2.8. प्रमुख शब्दावली

1. **परंपरा -** किसी समुदाय में संचरित विचार, धर्म, दर्शन, प्रथाएं, नियम, रीति-रिवाज, मूल्य एवं मान्य व्यवहार ही परंपरा है। इस प्रकार परंपरा का संबंध उन बातो से है जो अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। और जो पीढी दर पीढी हस्तान्तरित होती है।
2. **सभ्यता -** आगबर्न ने संस्कृति के दो पक्षों भौतिक एवं अभौतिक की चर्चा की है। संस्कृति के भौतिक पक्ष को ही सभ्यता कहा है। इस प्रकार संस्कृति के भौतिक पक्ष पेन, पेन्सिल, मकान, यातायात के साधन, पंखे, आदि को सभ्यता कहा जा सकता है।
3. **आधुनिकता -** बुद्धिवाद एवं अनुभववाद के दर्शन पर आधारित सोचने-समझने और व्यवहार करने के ऐसे तौर-तरीकों को सामान्यता आधुनिकता कहा जाता है। जिसमें परानुभूति, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, मुक्ति, उन्नत एवं परिष्कृत प्रौद्योगिकी, आदि जैसे लक्षण पाये जाते है।

4.2.9. बोध प्रश्न

4.2.9.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में समाजशास्त्र के संस्थापकों का वर्णन कीजिए?
2. जी.एस.घुरिये का जीवन परिचय देते हुए, उनकें प्रमुख विचारों की विवेचना कीजिए?
3. राधाकमल मुखर्जी के समाजशास्त्र सम्बन्धी विचारों की समीक्षा कीजिए?
4. डी.पी.मुखर्जी की परंपरा एवं आधुनिकता के सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्याकंन कीजिए?

4.2.9.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. घुरिये के अनुसार जाति की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?
2. भारत में समाजशास्त्र के संस्थापकों का उल्लेख कीजिए?
3. मूल्यों का समाजशास्त्र पर टिपण्णी लिखिए?
4. परंपरा एवं आधुनिकता में अंतर स्पष्ट कीजिए?
5. उत्तर प्रदेश में समाजशास्त्र के संस्थापक पर टिपण्णी लिखिए?

4.2.9.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मूल्यों के समाजशास्त्र से संबंधित है?
   अ. पैट्रिक गीड्स
   ब. राधाकमल मुखर्जी
   स. डी.पी. मुखर्जी
   द. ए.के. सरन
2. गोविंद सदाशिव घुरिये का जन्म हुआ था।
   अ. सन् 1893
   ब. सन् 1883
   स. सन् 1884
   द. सन् 1885
3. जाति इंण्डोआर्यन संस्कृति के ब्रह्मणों का शिशु है कथन है?
   अ. जी.एस.घुरिये
   ब. डी.पी.मुखर्जी
   स. आर.के.मुखर्जी
   द . निवास
4. कास्ट एण्ड रेस इन इण्ड़िया पुस्तक है?
   अ. आर.के.मुखर्जी
   ब. डी.पी.मुखर्जी
   स. जी.एस.घुरिये
   द. आर.एन.मुखर्जी
5. परंपराओं के द्वन्द्व की बात किस समाजशास्त्री ने की है?
   अ. आर.के.मुखर्जी
   ब. डी.पी.मुखर्जी

स. जी.एस.घुरिये

द. आर.एन.मुखर्जी

4.2.9.4. प्रश्नोत्तर

1. ब
2. अ
3. अ
4. स
5. ब

4.2.10. संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.
2. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2014). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
4. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. (2007). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-3 : मनु, पुराण, ग्रंथ एवं कौटिल्य का समाजशास्त्र

इकाई की रूपरेखा

4.3.1. उद्देश्य
4.3.2. प्रस्तावना
4.3.3. भारत के प्राचीन ग्रंथों में सामाजिक चिंतन
4.3.4. मनु एवं मनुस्मृति
4.3.5. मनु का सामाजिक चिंतन
4.3.6. कौटिल्य का समाजशास्त्र
4.3.7. सारांश
4.3.8. प्रमुख शब्दावली
4.3.9. संबंधित प्रश्न
4.3.10. संदर्भ ग्रंथ

4.3.1. उद्देश्य

'मनु, पुराण, ग्रंथ एवं कौटिल्य का समाजशास्त्र की इस इकाई में भारत कें प्राचीन ग्रंन्थ, मनु एवं कौटिल्य के सामाजिक चिंतन का विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप द्वारा संभव होगा -

1. भारत के वैदिक कालीन ग्रंथों एवं पुराण आदि के सामाजिक चिंतन को समझना।
2. मनु के सामाजिक चिंतन की विवेचना करना।
3. कौटिल्य के विचार का वर्णन करना एवं विवेचनात्मक मूल्यांकन करना।

4.3.2. प्रस्तावना

समाजशास्त्र का उद्भव एवं विकास की इस इकाई के भाग 4.3.3 में भारत के प्राचीन ग्रंथों वेद, ब्रह्ममण ग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, पुराण आदि के सामाजिक चिंतन को समझने का प्रयास किया गया है। भाग 4.3.4. में मनु के ग्रंथ 'मनुस्मृति' के अध्यायों का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया गया है। वही भाग 4.3.5. में मनु के सामाजिक चिंतन पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई के अन्त में भाग 4.3.6. में कौटिल्य के समाजशास्त्र पर चर्चा की गयी है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक विचारधारा का वर्णन किया गया है।

4.3.3. भारत के प्राचीन ग्रंथों में सामाजिक चिंतन

भारत के प्राचीन ग्रंथों में वेद, ब्रह्ममण, आरण्य, उपनिषद, वेदांग, रामायण, महाभारत, पुराण, स्मृतियॉ आदि को सम्मिलित किया जाता है। जिसमें वेद को भारत के सामाजिक चिंतन का मूल स्त्रोत माना जाता है। भारत के प्राचीन ग्रंथों के सामाजिक चिंतन को समझने के लिए इन ग्रंथों पर संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है-

1. वेद - वेदो की रचना के समय निर्धारण के बारे में सामाजिक चिंतकों में काफी मतभेद है, फिर भी कई सामाजिक चिंतक इन्हें विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ मानते है। वेदो को अपौरूषेय कहा गया क्यो की ऐसे मान्यता है कि इसकी रचना किसी पुरूष द्वारा न होकर ईश्वर द्वारा की गयी है। वेदो की संख्या चार है प्रथम तीन वेदो को वेद त्रयी कहा जाता है।

क. ऋग्वेद - यह सर्वाधिक प्राचीन वेद है। इसके पुरूष सूक्त में पहली बार वर्ण व्यवस्था पर विचार व्यक्त किया गया है। जिसमें ब्रम्हा के मुख से ब्रह्ममण, बाहु से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य और पैर शूद्र की उत्पत्ति मानी गयी है।

ख. यजुर्वेद - यह कर्मकाण्डी वेद है जिसमें देवताओं की स्तुति, धार्मिक अनुष्ठान एवं कर्मकाण्डों का वर्णन किया गया है।

ग. सामवेद - इसमें गायन एवं संगीत का वर्णन है। इसकों भारतीय संगीतशास्त्र का जनक कहा जाता है।

घ. अथर्ववेद - इस वेद में मंत्रों-तंत्रों, जादू, टोना, भूत, प्रेत, आदि का वर्णन मिलता है।

2. ब्रह्ममण ग्रंथ - वेदों को सरल ढंग से समझने के लिए ब्रह्ममण ग्रंथों का निर्माण हुआ जिसमें शतपथ ब्रह्ममण ग्रंथ प्रमुख है। ब्रह्ममण काल के सामाजिक चिंतन में कर्मकांडों की प्रबलता होने जाने आध्यात्मवाद कमजारे पडने लगा।

3. आरण्यक - वनों में रहकर लिखे गये ग्रंथों को आरण्यक कहा गया जिसमें दार्शनिक रहस्यों का विवरण मिलता है।

4. उपनिषद - शिष्य द्वारा गुरू के समीप बैठकर प्राप्त किया गया ज्ञान उपनिषद कहलाता है। जिसमे ब्रह्ममण काल के कर्मकाण्ड के विरूद्ध प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई। आश्रम व्यवस्था का सर्वप्रथम उल्लेख छांदोग्य उपनिषद में मिलता है। चारों आश्रमों का सर्वप्रथम उल्लेख जबालों उपनिषद में मिलता है।

वैदिककालीन सामाजिक चिंतन

वैदिककालीन सामाजिक चिंतन भारतीय सामाजिक चिंतन का आधार है। जो धर्म, दर्शन, आध्यात्मक, कल्पना, आदि पर आधारित था। इस सामाजिक चिंतन से उस समय की सामाजिक व्यवस्था, परिवार, विवाह, परंपरा, रीति-रिवाज, महिलाओं की स्थिति आदि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।इस काल में सामाजिक व्यवस्था पितृसतात्मक थी समाज की इकाई सयुंक्त परिवार था। इस काल में वर्ण व्यवस्था की

उत्पत्ति हो गयी थी। जो जन्म पर आधारित न होकर कर्म पर आधारित थी। विवाह संस्कार प्रचलित था जिसके अन्तर्गत अनुलोम विवाह एवं प्रतिलोम विवाह का वर्णन मिलता है। इस काल में महिलाओ की स्थिति अच्छी थी। जिन्हें शैक्षिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, कार्यो में प्रतिभाग की स्वतंत्रता थी। वैदिककालीन ग्रंथों के बाद रामायण, महाभारत, पुराण, और मनुस्मृति जैसे ग्रंथों का विकास हुआ जिसमें समकालीन सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं के विवरण के साथ-साथ वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, कर्म व्यवस्था, धर्म, रीति-रिवाज, परंपरा, विवाह, आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। महाभारत में वर्णो से जातियों की उत्पत्ति के संबंध में बताया गया है। वर्णों में अनुलोम विवाह के प्रचलन में आ जाने से उत्पन्न हुई संतान को माता-पिता में से किसी का भी वर्ण नही मिल सकता था इसलिए ऐसी संतानों को नयी जातियों में रखा गया।

पुराण - पुराण हिंदू धर्म के प्राचीन ग्रंथ है। जिसमें सामाजिक व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, कर्मकांड, रीति-रिवाज, परंपराएं, आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। पुराण का शाब्दिक अर्थ है 'प्राचीन या पुरानी कथा' पुराणो की संख्या 18 है।

4.3.4. मनु एवं मनुस्मृति

हिंदू धर्म के अनुसार मनु संसार का पहला व्यक्ति है। समाज का प्रथम व्यवस्थाप है, जिन्होंने अपने ग्रंथ 'मनुस्मृति' में सामाजिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया है। लेकिन मनु के जीवन के बारे में कोई प्रामाणिक कोई जानकारी उपलब्ध नही है, इनके जन्म, मृत्यु, अभिलेख, के तथ्यात्मक विवरण उपलब्ध नही है। जिसके कारण इस संबंध में भिन्न-भिन्न विचारकों ने अपना मत प्रस्तुत किया है। के0 मोतवानी ने मनु के संन्दर्भ में तीन मत प्रस्तुत किये है प्रथम, मनु एक ऋषि के रूप में वास्तविक व्यक्ति हुए है, द्वितीय मनु की उपाधि उन्हें वेदो की अनेक शाखाओं के ज्ञान के कारण दी गयी थी, तथा तृतीय, मनु सम्पूर्ण मानव जाति से संबंधित थे तथा वह भारत के हिन्दुओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति नही थे। पी.वी. काणे ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' में यह स्पष्ट नही किया कि मनु का जन्म कब हुआ, मनुस्मृति की रचना कब और किसने की? ऋग्वेद में जिस मनु का उल्लेख है निश्चय ही उन्होंने मनुस्मृति की रचना नही की। एस.सी. दूबे ने लिखा है कि 'मनुस्मृति' के मनु को कोई ऐतिहासिक पुरूष न मानते हुए हम इतना कह सकते है कि वैदिक सभ्यता के अन्तिम चरण में सम्भवता मनु नाम के कई पुरूष हुए हों जो शक्ति, बुद्धि और विद्वत्ता में तत्कालीन युग में श्रेष्ठ रहे हो और समाज के परिवर्तन के साथ उनकी ऐतिहासिकता, पौराणिकता, का रूप ग्रहण करती गयी हो, जिन्होंने बाद में उन्हें श्रद्धावश आदि पुरूष स्वीकार कर लिया हो। इस प्रकार 'मनुस्मृति' में वर्णित नियम लम्बी परंपरा की देन है उसे किसी एक व्यक्ति की रचना मान लेना एक भूल होगी। कुछ विचारक मानते है कि मनु शब्द का संबंध 'मनन अथवा चिंतन' से है। इसका तात्पर्य है कि मनु एक व्यक्ति न होकर विशेष पद का सूचक है। जिस तरह 'शंकराचार्य की गद्दी' को ग्रहण करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को 'शंकराचार्य' कहा जाता

है। ठीक उसी तरह मनु पद का प्रचलन हो गया, इन्हीं में से किसी एक मनु ने मनुस्मृति की रचना की। तथा उनकें बाद मनु के पद पर असीन विचारकों द्वारा समय-समय पर मनुस्मृति में संशोधन किया जाता रहा।

मनुस्मृति की रचना का भी कोई स्पष्ट काल निर्धारण नही मिलता स्वयं मनुस्मृति में इसकी रचना के काल का कोई उल्लेख न होने के कारण विभिन्न विद्वानों एवं इतिहासकारों ने इसे अपने-अपने ढंग से स्पष्ट किया है। उदाहरण के लिए काल्डवेल ने मनस्मृति की रचना का काल 900 वर्ष ई0 पूर्व माना है जबकि मैक्समूलर का विचार है कि यह ग्रंथ ई0 से 400 वर्ष पहले लिखा गया। भारतीय संस्कृति प्रमुख इतिहासकार पी.वी. काणे का विचार है कि मनुस्मृति की रचना ई0 से 200 वर्ष पहले से लेकर ई0 से 200 वर्ष बाद के बीच किसी समय की गयी। अनेक विद्वानों का मानना है कि जिस तरह वेदो की रचना का कोई निश्चित समय निर्धारित नही किया जा सकता उसी तरह मनुस्मृति की रचना का काल निर्धारण कर सकना भी बहुत कठिन है।

'मनुस्मृति सम्पूर्ण धनशास्त्र माना जाता है जिसमें मानव जीवन के सभी पहलुओं पर चर्चा की गयी है। मनुस्मृति बारह अध्यायों में विभाजित है तथा इसमें लगभग 2700 श्लोक है। इसकें प्रथम अध्याय में विश्व की उत्पत्ति, द्वितीय अध्याय में धर्म, संस्कार विधि, जातकर्म, तृतीय अध्याय में हिंदू विवाहों के प्रकार, ब्रम्हचर्य आश्रम, समावर्तन संस्कार, पंच महायज्ञ विधि तथा श्राद्ध-कर्मो आदि, चतुर्थ अध्याय में गृहस्थ के नियम आदि का, पंचम अध्याय में शुद्ध-अशुद्ध और व्यवहारों आदि का, षष्ठ अध्याय में वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम, मोक्ष आदि का, सप्तम अध्याय में राजधर्म का, अष्ठम अध्याय में न्याय एवं दंड का, नवम् अध्याय में स्त्री-पुरूष के धर्म, नियोग की निंदा, वैश्य एवं शूद्र के कर्मो आदि का, दशम अध्याय में अनुलोम-प्रतिलोम विवाह, आपद् धर्म आदि का, एकादश अध्याय में प्रयश्चित विधान एवं द्वादश अध्याय में संसारगति, कर्म एवं पुनर्जन्म, मोक्ष एवं आत्मज्ञान आदि का वर्णन किया गया है।

4.3.6. मनु का सामाजिक चिंतन

मनुस्मृति के अध्यायों के शीर्षक से स्पष्ट है कि मनु ने सामाजिक व्यवस्था (वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था,) संस्थाओ, संस्कार, कर्म एवं पुनर्जन्म, पुरूषार्थ, राजधर्म आदि जैसे मानवीय सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर चिंतन किया है।

1. वर्ण व्यवस्था

मनु के अनुसार वर्ण व्यवस्था सामाजिक संगठन का आधार है। जिससे समाज का ही नही वरन सम्पूर्ण सृष्टि का रक्षण एवं उत्थान होता है मनु के अनुसार सृष्टि के रक्षा के लिए ब्रम्हा ने अपने मुख से ब्रह्ममण, बाहु से क्षत्रिय, उरू से वैश्य और पैर शूद्र के रूप में चार वर्णो की उत्पत्ति की। प्रकृति एवं गुणों के आधार पर उनके लिए पृथक-पृथक कर्मो का निर्धारण किया। मनु के अनुसार ब्रह्ममण में सतोगुण, क्षत्रिय में

रजोगुण, वैश्य रजोमिश्रित तमोगुण और शूद्र में तमोगुण प्रधान होता है। मनु वर्ण व्यवस्था को समझने के लिए वर्णो का अध्ययन आवश्यक है।

क. ब्रह्ममण - मनु के अनुसार ब्रह्ममण वर्ण का कर्तव्य पढना-पढाना, यज्ञ करना और करवाना, दान लेना और दान देना, साथ-साथ मनु ने कहा कि आचरण से हीन ब्रह्ममण वेदों के फल की प्राप्ति नही कर सकता है। वह अपना पद व प्रतिष्ठा खो देता है। ब्रह्ममण भोगो तृप्ति के लिए नही अपितु शरीर की रक्षा के निमित्त ही धन का अर्जन कर सकता है।

ख. क्षत्रिय - मनु के अनुसार क्षत्रिय वर्ण का कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, विषय-भोगो से दूर रहना, अध्ययन करना आदि है।

ग. वैश्य - मनु ने वैश्य वर्ण के कर्तव्य को निर्धारित करते हुए कहा कि इस वर्ण का कर्तव्य पशुओं का पालन करना, दान देना, यज्ञ करना, अध्ययन करना, व्यापार करना, ब्याज लेना और खेती करना आदि है।

घ. शूद्र - मुन ने कहा कि शूद्र वर्ण का एक मात्र कर्तव्य अपने से उच्च तीनों वर्णो की बिना किसी ईर्ष्या भाव से सेवा करना है।

मनु का विचार है कि प्रत्येक वर्ण की पूर्णता तभी संभव है जब इसमें जन्म लेने वाला मनुष्य जन्म से, कर्म में एवं ज्ञान से पूर्ण हो यदि कोई जन्म से ब्रह्ममण हो परन्तु कर्म व ज्ञान से हीन हो तो वह पूर्ण ब्रह्ममण नही कहलायेगा। मनु ने कहा कि जिस प्रकार काठ का हाथी एवं चर्म का मृग नकली है, उसी प्रकार अज्ञानी ब्रह्ममण भी नाम मात्र का ब्रह्ममण है।

2. आश्रम व्यवस्था

मनु के सामाजिक चिंतन वर्ण व्यवस्था के बाद आश्रम व्यवस्था दूसरी प्रमुख व्यवस्था है इन दोनो व्यवस्थाओं के मध्य घनिष्ठ संबंध है। वर्ण व्यवस्था मनुष्य द्वारा समाज के प्रति कर्तव्य धर्म पर आधारित है जबकि आश्रम व्यवस्था मनुष्य को कर्तव्य पालन हेतु शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक रूप से तैयार करने पर आधारित है। शाब्दिक रूप से आश्रम शब्द 'श्रम' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'परिश्रम करना' अर्थात आश्रम एक ऐसा स्थान है जहाँ हम अपने जीवन के निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करते है। ऋग्वेद में सौ वर्ष जीने की कामना की गयी है (जीमेव शरदः शतम्) इस आधार पर आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन को सौ वर्ष मानकर इसे 25-25 वर्ष के चार आश्रमों में विभाजित किया गया है ये क्रमशः ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, तथा संन्यास आश्रम है।

क. ब्रम्हचर्य आश्रम - मनु के अनुसार पहला आश्रम ब्रम्हचर्य है जिसमें बालक उपनयन संस्कार के माध्यम से प्रवेश करता है और विद्यार्जन के लिए घर छोड़कर गुरूकुल में निवास करता है। ब्रम्हचर्य दो शब्दों से मिलकर बना है ब्रम्ह तथा चर्य जहां 'ब्रम्ह' का अर्थ महान् तथा 'चर्य' का अर्थ है विचरण अथवा अनुचरण करना। अर्थात ब्रम्हचर्य का तात्पर्य ऐसा मार्ग पर चलना है जिससे व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, तथा

आध्यात्मिक दृष्टि से सक्षम होकर महानता का वरण कर सकें। मनु ने स्पष्ट किया है कि इस आश्रम में बालक का अनुशाषित एवं सरल जीवन व्यतीत करना चाहिए इस संन्दर्भ में मनु ने मनुस्मृति के अध्याय दो में कुछ नियमों का भी उल्लेख किया है। जैसे ब्रम्हचारी यज्ञोपवीत, अजिन, मेघला और दंड को नियम पूर्वक धारण करें। सूर्योदय से पहले सोकर उठ जायें। मन, वचन, कर्म से आचार्य की सेवा करें आदि मनु द्वारा गुरूकुल में रहने की अवधि सामान्यता 18 वर्ष निर्धारित की गयी जिससे इतने समय में वह सभी तरह की विद्याएं प्राप्त कर सकें। 25 वर्ष की आयु पूरी हो जाने पर ब्रम्हचारी को प्रतीक के रूप में एक स्नान करने का विधान रखा गया जिसे 'समावर्तन संस्कार' कहा जाता है इस समय ब्रम्हचारी अपनी शक्ति के अनुसार गुरू को गुरू दक्षिणा देता है तथा यही से ब्रम्हचर्य आश्रम की समाप्ति हो जाती है।

ख. गृहस्थ आश्रम - मनु के अुनसार गृहस्थ आश्रम की अवधि 25 से 50 वर्ष तक की है। ब्रम्हचर्य आश्रम में आवश्यक तैयारी के बाद व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। इस आश्रम का प्रारम्भ विवाह संस्कार के साथ होता है। व्यक्ति का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि वह गृहस्थ आश्रम के लिए किसी ऐसी कन्या से विवाह करे जो माता या पिता के सपिंड न हो और साथ ही पिता के गोत्र का न हो। वास्तव में गृहस्थ वह स्थल है जहां व्यक्ति धर्म, अर्थ तथा काम जैसे पुरूषार्थो को पूरा करकें अपने आपको मोक्ष के लिए तैयार करता है। एक गृहस्थ के कर्तव्य को स्पष्ट करते हुए मनु ने लिखा है कि गृहस्थ आश्रम में पंच महायज्ञों को पूरा करना आवश्यक है। वेद का अध्ययन और अध्यापन करना ब्रम्ह यज्ञ है, पित्रो का तर्पण करना पित्र यज्ञ है, प्रतिदिन देव यज्ञ, अतिथियों के सत्कार को नृयज्ञ तथा जीवों पर दया करन भूतयज्ञ है। मनु के अनुसार पारलौकिक और सांस्कारिक सुख प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके इससे संबंधित कर्तव्यों को पूरा करे। जो व्यक्ति अस्थिर बुद्धि वाले अथवा इन्द्रियों में नियंत्रण में रहने वाले होते है उनके लिए इस आश्रम को धारण न करना ही उचित है। इस आश्रम में काम की पूर्ति की भी अनुमति दी गयी है। लेकिन 'काम' को एक साधन माना गया है जिसके द्वारा संतान को जन्म दिया जा सकें। मनु ने गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों में अधिक महत्वपूर्ण तथा अन्य सभी आश्रमों का आधार माना है। मनु ने कहा है कि ''जैसे सब जन्तु वायु के सहारे जीते है, वैसे ही सब प्राणी गृहस्थ आश्रम में जीवन धारण करते है'' जैसे सब नदी-नद समुद्र में जाकर स्थित होते है वैसे ही तीनों आश्रम गृहस्थ आश्रम में स्थिति प्राप्त करते है, उसी की सहायता से जीवित है अन्य आश्रमो का भरण-पोषण करने के कारण यह आश्रम ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है।

ग. वानप्रस्थ आश्रम - मनु के अनुसार गृहस्थ आश्रम के बाद व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। जिसकी अवधि 50 वर्ष की आयु से 75 वर्ष की आयु तक होती है। वानप्रस्थ का शाब्दिक अर्थ होता है 'वन की ओर प्रस्थान करना' अर्थात यह वह आश्रम है जिसमें व्यक्ति गृहस्थ आश्रम के दायित्वों से मुक्त होकर मानव मात्र की सेवा और ज्ञान का प्रसार करने के लिए जंगल में कुटिया बनाकर रहता है। मनु का निर्देश है कि गृहस्थ जब यह देख ले कि शरीर की त्वचा ढीली पड गयी और शरीर के बाल सफेद हो गये, संतान के संतान

हो गयी, तब घर-बार का मोह छोड़कर जंगल की ओर प्रस्थान करें। मनु के अनुसार वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति को सुख के लिए प्रयत्न नही करना चाहिए । इस तरह मनु के द्वारा वानप्रस्थ में व्यक्ति की जो दिनचर्या निर्धारित की गयी वह अत्यन्त कठोर एवं आव्यावारिक प्रतीक होता है। परन्तु मनु का यह चिंतन इस कारण पर आधारित था कि लम्बी साधना एवं अनुभवों के आधार पर वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाले व्यक्ति ही ब्रम्हचारियों को एक व्यवहारिक शिक्षा दे सकते थे।

घ. संन्यास आश्रम - वानप्रस्थ आश्रम के बाद व्यक्ति अपने जीवन के अतिंम आश्रम में प्रवेश करता है जिसकी अवधि 75 वर्ष की आयु से 100 वर्ष की आयु तक होती है। मनु के अनुसार इस आश्रम में प्रवेश करते ही व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह सब कुछ त्याग कर परिवाज्रक जीवन व्यतीत करें मुन के अनुसार संन्यासी का कर्तव्य है कि वह अकेला विचरण करें। भिक्षा मांगकर आठ पहर में एक बार ही दिन में भोजन करें। वह यम-नियमो का पूर्णतया पालन करें और अपना जीवन यम,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान में लगाये। मनु के अनुसार इन्द्रियों को वश में करने से संन्यासी मोक्ष पाने में सामर्थ हो जाता है।

3. पुरूषार्थ

पुरूषार्थ का तात्पर्य उद्योग करने या प्रयत्न करने से है। अर्थात अभीष्ट लक्ष्य प्राप्ति के लिए उद्यम करना ही पुरूषार्थ है। मनु ने व्यक्ति के जीवन के चार आधारभूत कर्तव्यों के रूप में पुरूषार्थ का उल्लेख किया है जिन्हें धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष का नाम दिया है मनु के अनुसार चारो पुरूषार्थो को प्राप्त करकें ही व्यक्ति जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो सकता है।

4. संस्कार

मनु के अनुसार ब्रह्ममण, क्षत्रिय, वैश्य भी मूलतः शूद्र के रूप में ही जन्म लेते है। उसके पश्चात 'संस्कारात् द्विज उच्यते'- अर्थात् धार्मिक संस्कारों द्वारा वह द्विज बनता है। मनु ने मुनस्मृति में तेरह संस्कारों का उल्लेख किया है जो कि इस प्रकार है-

1. गर्भाधान संस्का
2. पुंसवन संस्कार
3. सीमान्तोनयन संस्कार
4. जातकर्म संस्कार
5. नामधारण संस्कार
6. निष्कर्मण संस्कार
7. अन्नप्राशन संस्कार
8. चूड़ाकर्म संस्कार
9. कर्णवेध संस्कार
10. विद्यारम्भ संस्कार

11. उपनयन संस्कार

12. विवाह संस्कार

13. अन्त्योष्ठि संस्कार

5. विवाह

मनु के अनुसार विवाह संस्कार स्त्री-पुरूष को गृहस्थ में प्रवेश कराने वाली संस्था है। मनु ने 'एक विवाह' प्रथा को मान्यता देते हुए चारों वर्णों के लिए अच्छें-बुरे आठ प्रकार के विवाहों को उल्लेख किया है जो निम्नलिखित है-

1. ब्रह्म विवाह

2. दैव विवाह

3. आर्ष विवाह

4. प्रजापात्य विवाह

5. असुर विवाह

6. गन्धर्व विवाह

7. राक्षस विवाह

8. पैशाच विवाह।

मनु ने ब्रह्ममणों के लिए क्रमशः ब्राम्हा, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, असुर तथा गन्धर्व यह छः प्रकार के विवाह मान्य है।और क्षत्रियों के लिए आर्ष, प्राजापत्य, असुर व गन्धर्व विवाह मान्य है। वैश्यों और शूद्रो में भी ये चार प्रकार के विवाह मान्य है। मनु के अनुसार व्यक्ति प्रथमतः अपने ही वर्ण में विवाह करें। परन्तु ऐसा न होने पर ब्रह्ममण को क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की कन्या से, क्षत्रिय को वैश्य एवं शूद्र की कन्या से, वैश्य को शूद्र की कन्या से विवाह कर लेना चाहिए। मनु शूद्र को केवल शूद्र वर्ण में ही विवाह की अनुमति देते है।

मनु के सामाजिक चिंतन का अध्ययन करने से स्पष्ट पता चलता है कि इन्होंने समाज के सभी पहलुओं का गहनता के साथ चिंतन करते हुए अपना विचार दिया जिससे सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। मनु ने इस सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति के अपेक्षा समूह, समुदाय और समाज को महत्व दिया है। मनु का यह सामाजिक चिंतन भले ही धर्म, दर्शन, कल्पना, एवं भावना से प्रभावित रहा हो लेकिन भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन में इनका विचार आज भी विमर्श का विषय बना हुआ है।

4.3.6. कौटिल्य का समाजशास्त्र

प्राचीन भारतीय सामाजिक चिंतकों में कौटिल्य का विशेष स्थान है। इन्हें विष्णुगुप्त और चाणक्य के नाम से भी जाना है। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विचारधारा के विकास एवं विश्लेषण में अपूर्व योगदान दिया है। इसमें तत्कालीन सामाजिक

चिंतन के साथ-साथ समाज में होने वाले भविष्यगत परिवर्तनों का पूर्वाभास भी किया गया है। इस ग्रंथ में वर्णाश्रम धर्म, शिक्षा, विवाह, (स्वरूप एवं नियम) स्त्री-पुरूष के आपसी कर्तव्य, विवाह विच्छेद, पुनर्विवाह, उत्राधिकार के नियम (दायभाग), स्त्रियों का समाज में स्थान, राजधर्म, राजव्यवस्था, न्यायव्यवस्था आदि जैसे विषयों पर अतिसूक्ष्म और विशद् विवेचन देखने को मिलता है। इकाई के इस भाग में हम कौटिल्य के प्रमुख सामाजिक चिंतन का अध्ययन करेंगे।

वर्णाश्रम धर्म

कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र के प्रथम खंड में वर्णाश्रम धर्म का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने विभिन्न वर्णो के निए कर्तव्य निर्धारण किया है- ब्रह्ममण का धर्म पढना-पढाना, यज्ञ-याजन और दान लेना व देना है। क्षत्रिय का धर्म पढना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्र बल से समाज एवं जीवों की रक्षा करना। वैश्य का धर्म है पढना, यज्ञ करना, दान देना। कृषि कार्य, पशुपालन तथा व्यापार करना। उसी प्रकार शूद्र का कार्य ब्रह्ममण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करना, खेती करना और गाने-बजाने तथा कारीगरी का काम करना।

उसी प्रकार कौटिल्य ने आश्रम धर्म का भी उल्लेख किया है-ब्रम्हचारी का धर्म है नियमित स्वाध्याय करें अग्निहोत्र तथा रूद्राभिषेक करना, भिक्षा के लिए घूमना, गुरू के निकट रहना। गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह अपनी परंपरा के अनुकूल कार्यों से जीविका पालन करें, अपने से बराबर अथवा भिन्न गोत्र वालों से विवाह-संबंध स्थापित करना, देवता, पितर, अतिथि और सेवकों को भोजन देने के बाद सबसे अन्त में स्वयं भोजन करना। वानप्रस्थी का धर्म ब्रम्हचर्य पूर्वक रहना, भूमि पर शयन करना, जटा व मृगचर्म धारण करना। संन्यासी का धर्म है इन्द्रियों को काबू में रखना, इच्छारहित होना, एक जगह न ठहरना, जंगल में वास करना, मन, वचन, कर्म से पवित्र रहना-ये सब वर्ण तथा आश्रम के लिए साधारण धर्म है अतः इनका प्रत्येक वर्ण को पालन करना चाहिए।

विवाह धर्म

कौटिल्य का यह निश्चित मत है कि विवाह संस्कार के बाद ही सांसरिक व्यवहार प्राम्भ होते है अतः उचित समय में विधिवत इस संस्कार को पूरा कर लेना चाहिए। ताकि जीवन तथा धर्म सम्बन्धी कर्तव्य-कर्मों को पूरा किया जा सके। मनु की भांति कौटिल्य ने भी आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है। वस्त्र-आभूषण आदि से सजाकर विधिपूर्वक कन्यादान करना ब्रम्हा विवाह है। वेदों के समीप बैठकर ऋत्विज को जब कन्यादान दी जाती है तो उसे देव विवाह कहते है। वर से धर्मपूर्वक गाय अथवा बैल का जोड़ा लेकर कन्या देना आर्ष विवाह कहलाता है। कन्या और वर दोनो सहधर्म पालने की प्रतिज्ञा कर जिस विवाह बंधन को स्वीकार करते है उसे प्रजापात्य विवाह कहते है। कन्या और वर अपने-अपने माता-पिता से बिना पूछे आपसी पसंद व सहमति से जो विवाह करते है उसे गन्धर्व विवाह कहा जाता है। कन्या के पिता आदि को धन देकर किया हुआ विवाह असुर विवाह कहलाता है। बालात् किसी कन्या का अपहरण करकें विवाह

करना राक्षस विवाह है। सोई हुई कन्या के बालात्कार करके विवाह करना पैशाच विवाह कहलाता है। कौटिल्य ने प्रथम चार प्रकार के विवाह को धर्मानुकूल बताया है।

विवाह विच्छेद

चाणक्य राजद्रोही, हत्यारा, जाति और धर्म से पतित तथा नंपुसक पति से स्त्री को विवाह विच्छेद की अनुमति देते है। यदि पति-पत्नी के बीच द्वेष-वैमनस्य उत्पन्न हो जाये तो भी विवाह विच्छेद सम्भव है। लेकिन चाणक्य प्रथम चार प्रकार के धर्म विवाह में किसी भी दशा में विवाह विच्छेद की अनुमति नही देते।

चाणक्य कुछ परिस्थितयों में स्त्री और पुरूष पुनर्विवाह का भी अधिकार देते है जैसे किसी स्त्री के संतान न होती हो या वह बॉझ हो तो पति आठ वर्ष तक प्रतिक्षा करने के पश्चात पुनर्विवाह कर सकता है। वहीं कुछ समय के लिए विदेश गये पति की पुत्रहीन स्त्रियों के लिए चाणक्य एक वर्ष की प्रतिक्षा के बाद विवाह की अनुमति देते है। जिस स्त्री का पति संयासी हो गया हो या मर गया हो, उसकी स्त्री सात मासिक धर्म तक दूसरा विवाह न करें। यदि उसकी कोई संतान हो तो वह एक वर्ष तक ठहर जाय। इसके बाद वह अपने पति के सगे भाई के साथ विवाह कर लें, यदि पति के सगे भाई न हो तो समान गोत्र वाले उसी के किसी पारिवारिक भाई के साथ विवाह कर सकती है। इस प्रकार कौटिल्य देवर विवाह का भी समर्थन करते है।

उत्तराधिकार का नियम

कौटिल्य ने उत्तराधिकार के नियम का भी उल्लेख किया है जिसके अन्तर्गत वे उत्तराधिकार के दायभाग नियम का समर्थन करते है। जिसके प्रवर्तक जीमूतवाहन है। कौटिल्य ने लिखा है कि पिता या माता-पिता दोनो के जीवित रहते हुए लड़के सम्पत्ति के उत्तराधिकारी नही होते, उनकी मृत्यु के बाद ही वें सम्पत्ति का बँटवारा आपस में कर सकते है। किसी लड़के द्वारा स्वयं उपार्जित सम्पत्ति का बँटवारा नही हो सकता पर यदि वह सम्पत्ति पिता की सम्पत्ति खर्च करकें कमाई गयी हो तो उसका भी बँटवारा हो सकता है। जिसकें कोई पुत्र न हो उसकी सम्पत्ति उसके सगे भाई ले लें और विवाह आदि के लिए जितना धन-आभूषण आवश्यक हो वह सब कन्या ले सकती है। यदि पिता जीवित रहते हुए अपनी सम्पत्ति का विभाजन करना चाहे तो किसी को ज्यादा या किसी कम ना देकर सबकों बराबर बॉट दें।

समाज में नारी की स्थिति

कौटिल्य महिलाओं के लिए न्यायपूर्ण स्वतंत्रता की बात करते है, लेकिन अधर्म के रास्ते पर जाने से बचाने के लिए कुछ कड़े प्रतिबंधों का भी उल्लेख करते है। कौटिल्य बहुत कम उम्र में विवाह का समर्थन नही करते, उनके अनुसार कन्या 12 वर्ष की एवं पुरूष 16 वर्ष की आयु में विवाह योग्य होते है। वैवाहिक जीवन में नारी को पुरूष के अधीन करते हुए कौटिल्य ने यह घोषणा की कि स्त्री पुत्र पैदा करने के लिए ही है। कौटिल्य ने पति को निर्देश दिया कि वह अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त आदर और स्नेह पूर्वक व्यवहार करें, क्योकि इस प्रकार के परस्परिक स्नेह वा सम्मान भाव के आधार पर ही गृहस्थ जीवन के उच्चतर आदर्शों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति संभव है। साथ ही कौटिल्य ने नीच, परदेशी, प्रावासी, राजद्राही, हत्यारा, वर्ण और धर्म से

पतित एवं नपुंसक पति से स्त्रियों को विवाह विच्छेद का भी अधिकार दिया। स्त्रियों को कौटिल्य ने विलासप्रिय, आवारा, नष्टचरित्र और धर्म विरूद्ध आचरणों को करने से रोकने के लिए कई दिशा निर्देशों एंव दण्ड़ विधियों का उल्लेख किया। कौटिल्य ने दास स्त्रियों तक प्रति असम्मान या तिरस्कार का भाव नही दिखाया है, महिला गुलामों के प्रति अनुचित व्यवहार या यौन संबंध स्थापित करने पर उनकें मालिकों को उचित दण्ड़ देने का निर्देश दिया है।

भ्रष्टाचार

कौटिल्य ने अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में तत्कालीन शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का उल्लेख करते हुए 40 प्रकार के भ्रष्टाचार पर चर्चा की है। शाब्दिक अर्थ में भ्रष्टाचार दो शब्दों से मिलकर बना है, भ्रष्ट़आचार अर्थात समाज में प्रचलित मानक मूल्यों के विरूद्ध मानवीय व्यवहार भष्टाचार है। सामान्य रूप में भष्टाचार को आर्थिक प्रतिमानों के उल्लघंन से जोड़ा जाता है। कौटिल्य ने राज्य कर्मचारियों के आर्थिक भष्टाचार को उल्लेख करते हुए कहा कि ''जिस प्रकार जिहवा पर पड़ा मधु या विष का स्वाद लिये बिना जिहवा नही रह सकती उसी प्रकार अर्थ का देख-रेख करने वाले राजकर्मचारी अर्थ का स्वाद (भष्टाचार) अर्थ का स्वाद न ले संभव नही है"। इस प्रकार कौटिल्य भष्टाचार को एक जटिल समस्या मानते हुए स्वीकार करते है कि इसका पूर्णता समाप्त होना अंसभव है। जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' के एक अन्य श्लोक में भी किया है जिसमें उन्होंने कहा कि ''आकाश में उड़ते-विचरते पक्षियों की गति को समझना संभव है, किंतु राजकर्मचारियों के मन में छिपे भावों को समझ पाना संभव नही''। कौटिल्य मानते थे कि भष्टाचार को भले ही पूरी तरह समाप्त नही किया जा सकता है परन्तु प्रभावी नियमों और दण्ड़ प्रावधानों द्वारा पर्याप्य नियंत्रण लगाया जा सकता है। जिसका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा है कि राजा का कर्तव्य है कि भष्ट राजकर्मी की सम्पत्ति छीन ले और उसे निम्नतर पदो पर अवनत कर दें। ताकि वों राज्य के अर्थ का गबन न कर पावें तथा गबन की हुई सम्पत्ति पुनः राज को प्राप्त हो सके। साथ ही कौटिल्य ने ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति पर बल दिया है। जो ईमानदार रहें, अर्थ का गबन न करते हो, राजा के हित में कार्य करने वाले हो।

न्याय एवं दण्ड़ व्यवस्था

कौटिल्य राज्य में शान्ति स्थापित करने तथा शासन को सुचारू से चलाने के लिए दण्ड व्यवस्था को आवश्यक बताया है। कौटिल्य का मत है कि स्वधर्म पालन से मनुष्य का लोभ एवं परलोक दोनो ही सुधरते है। प्रजा अपने-अपने स्वधर्म पालन में तत्पर रहें इसकें लिए राजा का कर्तव्य है कि न्याय एवं दण्ड़ व्यवस्था का प्रबंध करें। न्याय एवं दण्ड़ एक दूसरें से अन्तः संबंधित है। राज्य में न्याय की स्थापना दण्ड बिना संभव नही है। कौटिल्य ने न्याय एवं दण्ड व्यवस्था का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

न्याय व्यवस्था

कौटिल्य के अनुसार राजा को स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था करनी चाहिये जिसके लिए उसे अलग से एक अधिकारी को नियुक्ति करना चाहिए जो ब्रह्ममण हो तथा धर्मशास्त्र एवं विधिशास्त्र का ज्ञाता

हो। राजा को न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, उसे न्याय के मामले में पक्षपात नही दिखाना चाहिए, शत्रु हो या मित्र उसे न्याययुक्त दण्ड देना चाहिए। कौटिल्य ने न्याय व्यवस्था को दो भागो में विभाजित किया है।

1. धर्मस्थ या व्यवहार न्यायालय - इस न्यायालय के अन्तर्गत साधारण समझौते सम्बन्धी विवाद, दम्पत्य समन्धी विवाद, सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्धी विवाद आदि का निपटारा किया जाता था।

2. कण्टक शोधक न्यायालय - इस न्यायालय के अन्तर्गत राज्य के नागरिकों के द्वारा नियम भंग करना, अवैधानिक रूप से धनार्जन, कन्याओं एवं स्त्रियों के साथ दुर्व्यव्यवहार एवं बालात्कार आदि सम्बन्धी विवादों का निपटारा किया जाता था।

कौटिल्य ने इस प्रकार के विवादों को सुनने और उस पर निर्णय देने के लिए न्यायालयों को तीन स्तरों में विभाजित किया। जनपद संधि न्यायालय जनपदों या गांवों की सीमा पर निर्धारित किये जाते थे, जहां दो या दो से अधिक जनपद की सीमाएं मिलती थी। संग्रहण न्यायालय दस ग्रामों के लिए होता था। द्रोणमुख न्यायालय चार सौ ग्रामों के केंद्रीय स्थानों पर होते थे।

दण्ड व्यवस्था

कौटिल्य के अनुसार दंड नीति ही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त करती है, प्राप्त वस्तुओ की रक्षा करती है एवं रक्षित वस्तुओं की वृद्धि करती है। उसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इसलिए संसार को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए राजा सदा ही दंड के लिए प्रस्तुत रहें। कौटिल्य लचीले एवं सुधारात्मक दंड के समर्थक है लेकिन उनका मानना है कि दंड में आवश्यकता से अधिक ढिलाई दे देने पर भी लोभ राजा की अवहेलना करने लगते है। वहीं कठोर अथवा प्रतिशोधात्मक दंड से प्रजा दुखी एवं राजा से असंतुष्ट होने लगती है। इसलिए राजा को संतुलित वा समुचित दंड देने वाला होना चाहिए। कौटिल्य ने कई प्रकार के दंड चर्चा की है। अर्थदंड, कायदंड, कार्यदंड, बंधनागारदंड तथा अर्थशास्त्र के 11वें अध्याय में कौटिल्य ने मृत्यु दंड का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

4.3.7. सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत भारत के प्राचीन ग्रंथों एवं उनकें सामाजिक चिंतन को समझने का प्रयास किया गया। वैदिककालीन ग्रंथों के साथ-साथ तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं की भी चर्चा की गयी। इसके बाद मनु के सामाजिक चिंतन का विस्तृत अध्ययन किया गया जिसके अन्तर्गत उनके वर्ण, आश्रम व्यवस्था, पुरूषार्थ, संस्कार, विवाह आदि जैसे सामाजिक व्यवस्थाओं, संस्थाओं एवं सिद्धांतो पर चर्चा की गयी। अन्त में कौटिल्य के समाजशास्त्र को समझने का प्रयास किया गया और उनकें सामाजिक विचारधाराओं का विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया।

4.3.8. प्रमुख शब्दावली

अनुलोम विवाह- जब उच्च वर्ण अथवा जाति, उपजाति के पुरूष का विवाह निम्नवर्ण अथवा जाति, उपजाति की महिला से होता है तो उसे अनुलोम विवाह कहते है।

प्रतिलोम विवाह- जब उच्च वर्ण, जाति अथवा गोत्र की महिला का विवाह निम्न वर्ण, जाति अथवा गोत्र के पुरूष से होता है तो उसे प्रतिलोम विवाह कहते है।

द्विज- द्विज शब्द 'द्वि' और 'ज' से बना है। जहां द्वि का अर्थ होता है 'दो' और 'ज' (जायते) का अर्थ होता है जन्म होना अर्थात जिसकी दो बार जन्म होता है उसे द्विज कहते है। मनु के अनुसार जन्म से सभी वर्ण शूद्र रहते है। संस्कारात् द्विज उच्यते अर्थात संस्कारों के माध्यम से ब्रह्ममण, क्षत्रिय, वैश्य द्विज बनते है।

दायभाग- यह प्राचीन हिन्दु धर्म ग्रंथ है जिसकी रचना जीमूतवाहन ने किया था। जिसमें उन्होंने उत्तराधिकार के दायभाग के नियम को प्रस्तुत किया। दायभाग का शाब्दिक अर्थ होता है 'पैतृक धन का विभाग' अर्थात दादा या पिता से सम्पत्ति का पुत्रों तथा पौत्रो में विभाग की प्रक्रिया। इसका प्रचलन मुख्य रूप से बंगाल एवं असम में था।

मिताक्षरा- यह यांज्ञवाल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका है, जिसकी रचना 11वीं शताब्दी में हुई। जिसमें उत्तराधिकार के मिताक्षरा नियम का उल्लेख है जो 'जन्मजात उत्तराधिकार' के सिद्धांत पर आधारित है। अर्थात जन्म से ही पिता की सम्पत्ति पर पुत्रो का अधिकार हो जाता है। यह नियम बंगाल एवं असम को छोड़कर शेष भारत में लागू है।

4.3.9. बोध प्रश्न

4.3.9.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत के प्राचीन ग्रंथ एवं उनकें सामाजिक चिंतन का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए?
2. मनु के वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था का विवेचनात्मक विश्लेषण कीजिए?
3. मनु के सामाजिक चिंतन का विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए?
4. चाणक्य के समाजशास्त्र का विवेचनात्मक मूल्याकन कीजिए?
5. कौटिल्य के न्याय एवं दण्ड़ व्यवस्था का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए?

4.3.9.2. लघुउत्तरीय प्रश्न

1. कौटिल्य के अनुसार विवाह धर्म क्या है?
2. भारत के प्राचीन ग्रंथों का उल्लेख कीजिए?
3. मनुस्मृति पर टिपण्णी लिखिए?
4. मनु के गृहस्थ आश्रम को समझाइए?
5. चाणक्य के भ्रष्टाचार सम्बन्धी विचार पर टिपण्णी लिखिए?

4.3.9.3. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मनु ने किसकों निर्देश दिया है कि वह तीन दिनों से अधिक एक स्थान पर न ठहरें?
   अ. ब्रम्हचारी
   ब. संन्यासी
   स. गृहस्थ
   द. व्यापारी
2. मनु के अनुसार कन्या के विवाह की आयु क्या होनी चाहिए?
   अ. 15 से 16 वर्ष
   ब. 14 वर्ष
   स. 8 से 12 वर्ष
   द. 12 से 14 वर्ष
3. अर्थशास्त्र किसका ग्रंथ है?
   अ. कौटिल्य
   ब. मनु
   स. ऐडम स्मिथ
   द. व्यास
4. निम्न में से कौन सा विवाह उत्तम कोटि का माना गया है?
   अ. पैशाच
   ब. गन्धर्व
   स. राक्षस
   द. प्रजापात्य
5. चाणक्य ने कितने प्रकार के भ्रष्टाचार का उल्लेख किया है?
   अ. 15
   ब. 20
   स. 8
   द. 40

4.3.9.4. प्रश्नोत्तर

1. ब
2. स
3. अ
4. द
5. द

4.3.10. संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.
2. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.
3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2014). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.
4. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. (2007). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

इकाई-4: भारतीय विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र में संबंध

इकाई की रूपरेखा

4.4.1. उद्देश्य
4.4.2. प्रस्तावना
4.4.3. भारत विद्याशास्त्र का परिचय
4.4.4. भारतीय विद्याशास्त्र की विशेषताएँ
4.4.5. समाजशास्त्र एवं विद्याशास्त्र में संबंध
4.4.6. प्रमुख विद्याशास्त्री एवं उनका अध्ययन
4.4.7. आलोचनात्मक मूल्यांकन
4.4.8. सारांश
4.4.9. बोध प्रश्न
4.4.10. प्रश्नोत्तर
4.4.11. संदर्भ ग्रंथ

4.4.1. उद्देश्य

भारत में समाजशास्त्र खंड (चार) की इस इकाई में भारतीय विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र के संबंध पर विस्तृत चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्यात आप द्वारा सम्भव होगा:

1. भारत विद्याशास्त्र का परिचय प्राप्त करना।
2. भारत विद्याशास्त्र की विशेषताओं का उल्लेख करना।
3. भारत के प्रमुख विद्याशास्त्रीयों को जानना एवं उनकें विचारों की विवेचना करना।
4. भारत विद्याशास्त्र (इण्ड़ोलाजी) का आलोचानात्मक मूल्यांकन करना।

4.4.2. प्रस्तावना

भारत विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र में संबंध की इस इकाई के भाग 4.2 में भारत विद्याशास्त्र के संक्षिप्त परिचय को जानने का प्रयास किया गया है जिसके अन्तर्गत इण्ड़ोलाजी के अर्थ के साथ-साथ अलबरूनी, विलियम्स जोन्स एवं मैक्समूलर के योगदानों की भी चर्चा की गयी है। इस इकाई के भाग 4.3 में भारतीय विद्याशास्त्र की विशेषताओं का भी उल्लेख किया गया है, वहीं भाग 4.4 में समाजशास्त्र एवं भारतीय

विद्याशास्त्र में संबंध पर चर्चा की गयी है। भाग 4.5 में प्रमुख विद्याशास्त्री एवं उनके अध्ययनों का वर्णन किया गया है। इकाई के अन्त में भाग 4.6 में भारतीय विद्याशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया गया है।

4.4.3. भारत विद्याशास्त्र का परिचय

भारतीय विद्याशास्त्र अध्ययन का वह परिपेक्ष्य है जो भारतीय समाज एवं संस्कृति का अध्ययन भारत की प्राचीन ग्रन्थों (वेद, उपनिषद, पुराण, ब्रह्ममण ग्रंथ, स्मृतिग्रंथ आदि) भाषाओं, ऐतिहासिक तथ्यों, परंपराओं एवं मूल्यों आदि के आधार पर करता है। यह विद्याशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि भारतीय समाज का अध्ययन उसकी परमपरात्मक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर करकें समाज की वास्विकता को असानी से समझा जा सकता है। भारतीय समाज के अध्ययन में इस परिपेक्ष्य की शुरूवात ईरानी इतिहास कार्य अलबरूनी से माना जाता है जिसने 'तहकीक-ए-हिन्द' (भारत की खोज) नामक पुस्तक में भारतीय समाज एवं संस्कृति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया हैं अलबरूनी को भारतीय विद्याशास्त्र का जनक भी माना जाता है। आधुनिक विचारकों ने इसकी शुरूवात सर विलियम्स जोन्स ने की। सर जोन्स को संस्कृत सहित कई भारतीय भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। जिसके कारण इन्होने भारत के साहित्य, संस्कृति एवं दर्शन पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद किये। सन् 1984 में इन्होंने ' एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल' की स्थापना की। जिससे यहां पर भारतीय धर्म ग्रन्थों, साहित्य, इतिहास, परंपरा, मूल्यों के अध्ययन की नीव पड़ी। और यही से भारत विद्याशास्त्र की व्यवस्थित अध्ययन की शुरू हुई। सन् 1849 से 75 के मध्य मैक्समूलर जैसे विद्वान ने संस्कृत सीखकर (ऋग्वेद का अनुवाद) महाकाव्यों और साहित्यिक कृत्यों के अनुवाद में सहायता की जिसे भारतवासी करीब-करीब भूल चुके थे। इस तरह सस्कृत के ज्ञान में भारत की महान सास्कृतिक और दार्शनिक परंपरा को समझने में सहायता दी। उस समय जब अधिकाश शिक्षित भारतीयों का अंग्रेजी शासकों द्वारा उपहास किया जा रहा था संस्कृत के इस ज्ञान ने उनकें स्वभिमान को फिर से जगाया। दयानन्द सरस्वती जैसे भारतीय चिंतको ने तत्कालीन भारतीय समाज की रूढियों, परंपराओं का विरोध करते हुए ' वेदो की ओर लौटो' का उद्घोष कर वैदिक साहित्य, सस्कृति, एवं परंपराओं का समर्थन किया। और आर्य समाज की स्थापना की। इसके अलावा कार्लमार्क्स और मैक्सबेवर आदि ने अपने अध्ययन में भारतीय सामग्री का उपयोग किया। पश्चिमी विद्याशास्त्रीयों के चिंतन में अनेक कमियॉ नजर आयी जिन्होने अपने अध्ययन में भारतीय समाज का विखण्डित, शोषित रूप प्रस्तुत किया। फिर विद्याशास्त्र में भारतीय समाज को समझने का एक नया दृष्टिकोण विकसित किया जिसका प्रयोग बाद में समाजशास्त्रीय चिंतको द्वारा भी किया जाने लगा।

4.4.4. भारतीय विद्याशास्त्र की विशेषताएँ

भारत विद्याशास्त्रीय अध्ययन 18-19 वीं शताब्दी के मध्य औपनिवेशिक भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक चिंतन में नये दृष्टिकोण का समावेश करता है जो भारतीय समाज के अध्ययन में पाश्यात्य दृष्टिकोण के स्थान पर भारतीय परम्परिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक चिंतन पर बल देता है। विद्याशास्त्री अध्ययन परिपेक्ष्य की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

यह विद्याशास्त्र इस मान्यता पर आधारित है कि किसी समाज का अध्ययन उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार किया जाना चाहिए जिससे उस समाज की यर्थाथता को आसानी से समझा जा सके।

यह विद्याशास्त्र भारतीय समाज का अध्ययन प्राचीन भारतीय ग्रन्थों, साहित्यों, भाषाओं, ऐतिहासिक तथ्यों, संस्कृति एवं परंपराओं के आधार पर करता है।

भारत विद्याशास्त्र भारतीय समाज को समझने के लिए ग्रन्थीय परंपरा पर बल देते हुए भारत के प्राचीन ग्रन्थों, वेद, पुराण, महाभारत, रामायण, मनुस्मृति, अर्थशास्त्र आदि का विमर्श एवं विश्लेषण करता है।

इस विद्याशास्त्र ने भारत के परम्परिक सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्थाओं को पुनः अध्ययन, चिंतन, एवं शोध का विषय बना दिया।

भारत विद्याशास्त्र ने भारत के समाजशास्त्रीय चिंतन को आधार प्रदान किया जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज को समझने के लिए वर्ण, आश्रम, जजमानी, जाति, परिवार, विवाह, संस्कार, धर्म आदि का व्यापक अध्ययन - अध्यापन शुरू हुआ।

यह विद्याशास्त्र वर्तमान भारतीय सामाजिक व्यवस्थाओं, संस्थाओं, मान्याताओ एवं मूल्यों को परंपरागत दर्शन एवं चिंतन के आधार पर ही समझने का प्रयास करता है। जिससे इस विद्याशास्त्र के लिए क्षेत्र कार्य आवश्यक नही है।

भारत विद्याशास्त्र ग्रन्थीय एवं किताबी ज्ञान पर आधारित होता है।

4.4.5. समाजशास्त्र एवं विद्याशास्त्र में संबंध

भारत विद्याशास्त्र जिसे भारतशास्त्र (इण्ड़ोलाजी) भी कहते है का विकास भारत में समाजशास्त्र के विकास के बहुत पहले हो चुका था। जिसकें विकास का श्रेय सर विलियम जोन्स, हेनरी मेन, मैकमूलर, आदि जैसे कई प्राच्य विदों को है। इन लोगो ने भारत की समृद्धि प्राचीन संस्कृति और दार्शनिक परंपरा का अध्ययन किया और इस बात पर बल दिया कि भारतीय समाज की संरचना, प्रकार्य, गतिशीलता आदि को यूरोपीय परिपेक्ष्य के माध्यम से न समझकर भारत की ऐतिहासिक, प्राचीन संस्कृतिक एवं दार्शनिक परंपरा के माध्यम से समझा जाना चाहिए। इनका मानना था कि भारतशास्त्र के माध्यम से ही भारतीय समाज की वास्तविकता को जाना जा सकता है। जिसके लिए सर विलियम जोन्स 1787 में ''ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल''

की स्थापना की। यहा पर उन्होनें संस्कृत और भारतशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। इनकी इस सोसाइटी का कार्य एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन करना था जो संस्कृत, तुलनात्मक विधिशास्त्र, तुलनात्मक मिथकों आदि जैसी नृशास्त्र और भारतशास्त्र संबंधित विषयों में रूचि पैदा कर सकें। मैक्समूलर जैसे विद्वानों ने सस्कृत सीखकर पुराने महाकाव्यों और साहित्यिक कृतियों के अनुवाद में सहायता की जिसे भारतवासी करीब-करीब भूल चुके थे। इनकें संस्कृत के ज्ञान ने भारत की महान सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपरा को समझने में सहायता की। उस समय जब अधिकाश शिक्षित भारतीयों का अंग्रेजी शासकों द्वारा उपहास किया जा रहा था संस्कृत की इस ज्ञान ने उनकें स्वाभिमान को फिर से जगाया। भारत विद्याशास्त्रियों ने प्राचीन कानून और समाज का सावधानी अध्ययन किया। जिसमें हेनरी मेन ने सहायता की इन्होने 1871 में 'विलेज कम्प्यूनिटीज इन दा ईष्ट एंव दा वेस्ट' नाम की एक पुस्तक भी लिखी। भारत में समाजशास्त्र का औपचारिक विकास 20 वीं शताब्दी के दूसरें दशक में जीएस घुरिये के निर्देशन में हुआ। घुरिये को भारतीय समाजशास्त्र का जनक कहा जाता है। घुरिये ऐसे पहले समाजशास्त्री थे जिन्होंने अपने अध्ययनों में भारत विद्याशास्त्र का प्रयोग किया यही कारण है कि इन्हें समाजशास्त्र ने भारतीय विद्याशास्त्रीय परिपेक्ष्य के प्रवर्तक के रूप में देखा जाता है। घुरिये जाति व्यवस्था, परिवार एवं नातेदारी व्यवस्था, जनजातिएं समाज, भारतीय समाज में तनाव, भारतीय समाज में साधू की भूमिका तथा भारत के समाज में शहरीकरण के अध्ययन में भारत विद्याशास्त्र का व्यापक प्रयोग किया। घुरिये के बाद मम्बई विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के अध्यक्ष पद का भार संभालने वाले के.एम. कपाड़िया नातेदारी,विवाह एवं परिवार जैसी मूलभूत भारतीय सामाजिक सामाजिक संस्थाओ को समझने के लिए भारतशास्त्र उपागम का प्रयोग किया। वहीं मति ईरावती कर्बे ने संयुक्त परिवार एवं भारत के नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन के लिए इस प्रविधि का प्रयोग किया। लुई डयूमा ने भारत की जाति व्यवस्था एवं गांवो की सामाजिक संरचना के अध्ययन के लिए भारत विद्याशास्त्रीय उपागम का प्रयोग किया। जबकि पी.एन. प्रभु ने भारतीय सामाजिक संरचना को समझने के लिए इस उपागम का प्रयोग किया।

इन समाजशास्त्रीयों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत विद्याशास्त्र एंव समाजशास्त्र में घनिष्ट संबंध है। भारत के समाजशास्त्रीय अध्ययन में यह विद्याशास्त्र एक विशेष समाजशास्त्रीय उपागम के रूप में सामने आया। जिसका मुख्य कारण है कि भारतीय विद्याशास्त्र जहां भारतीय समाज एवं संस्कृत के अध्ययन के लिए उसकी ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं परम्परिक चितंन के पृष्ठभूमि का सहारा लेती है वही समाजशास्त्रीय अध्ययनों में इन समाजशास्त्रियों ने भी इसी अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया।

4.4.6. प्रमुख विद्याशास्त्री एवं उनका अध्ययन

भारतशास्त्र के प्रमुख समाजशास्त्रियों में जी.एस. घुरिये, के.एम. कपाड़िया, ईरावती कर्बे, पी.एन. प्रभु एवं लुई डयूमा का नाम आता है। जिन्होने ने भारतीय समाज की संरचना, व्यवस्थाओं एंव संस्थाओं के अध्ययन के लिए इस उपागम का प्रयोग किया। भारतीय समाजशास्त्र की इस उपागम को समझने के लिए प्रमुख विद्याशास्त्रियों एवं उनकें अध्ययनों को समझना आवश्यक होगा।

4.4.7. आलोचनात्मक मूल्यांकन

जी.एस. घुरिये - एक समाजशास्त्री के रूप में इस उपागम सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय जी.एस. घुरिये को जाता है। इन्होंने जाति, प्रजाति, परिवार एवं नातेदारी, संस्कृति, विवाह, धर्म, साधू, कला, नृत्य एवं भेष-भूषा का विस्तृत वर्णन किया। जिसके लिए इन्होंने भारत विद्याशास्त्र उपागम का प्रयोग करते हुए भारत के पौराणिक एवं धार्मिक ग्रंथों का सहारा लिया। घुरिये जाति को इण्ड्रोआर्यन संस्कृति के बाह्मणों का शिशु के रूप में मानते हुए इसकी 6 विशेषताओ का उल्लेख किया। घुरिये ने जाति के साथ-साथ जनजातियों का भी अध्ययन किया है जिन्हें पिछडे हिंदू के रूप मे सम्बोधित किया है। घुरिये ने धार्मिक विश्वास, कर्मकांड, संस्कार तथा भारतीय परंपरा में साधू की भूमिका का भी विस्तृत अध्ययन किया। घुरिये के विचार में सन्यास भूतकाल का अवशेष मात्र नही है, अपितु यह हिंदू धर्म का प्राणभूत तत्व है। सन् 1968 में प्रकाशित ‘ भारत में सामाजिक तनाव’ पुस्तक में घुरिये हिंदू और मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच तनाव का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन किया है। इस तरह देखा जाय तो घुरिये का अध्ययन केन्द्र भारतशास्त्रीय उपागम रहा है।

के.एम. कपाड़िया - कपाड़िया घुरिये के शिष्य थे। जिन पर घुरिये के शोध परिपेक्ष्य एवं पद्धति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इन्होंने भी घुरिये की भाति अपने अध्ययनों में पौराणिक संस्कृत साहित्य, बौद्ध धर्म और यात्रियों के यात्रा-वर्णन, वृतान्तों एवं दस्तावेजो का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। इस तरह से घुरिये की भाति इनकें अध्ययनों का स्वरूप भी मुख्य रूप से ‘इण्ड्रोलाजिकल’ रहा है। इनके अध्ययन का प्रमुख विषय हिंदू विवाह, परिवार, एवं नातेदारी रहे है। जिसका उल्लेख इन्होंने अपनी पुस्तकें हिंदू नातेदारी (1947) और भारत में विवाह एवं परिवार (1955) में किया है। इन्होंने हिंदू विवाह को एक संस्कार के रूप में निरूपित किया है।

ईरावती कर्बे - ईरावती कर्बे भी जी.एस. घुरिये की शिष्या थी। संस्कृत के ज्ञान में उन्हें प्राचीन शास्त्रों जैसे-धर्म ग्रंथ, न्याय पुस्तकें, और महाकाव्यों के अध्ययन में मदद की। जिसका प्रभाव इनकें सामाजिक अध्ययनों पर व्यापक रूप से पड़ा। कर्बे के अध्ययन का प्रमुख विषय भारत की जाति व्यवस्था, नातेदारी व्यवस्था, संयुक्त परिवार, ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय है। इन्होंने अपनी पुस्तक किंनशिप आर्गेनाइजेशन इन इण्ड़िया (1952) में भारत में नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन के लिए भारत विद्याशास्त्र सम्बन्धी सभी स्त्रोत सामग्री का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया। भारतीय सामाजिक संरचना के अध्ययन के बारें में उनकी यह टिपण्णी

विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार और ग्रामीण समुदाय भारतीय सामाजिक संरचना के तीन प्रमुख स्तम्भ है। कर्बे ने इस तथ्य का खंडन कि वैदिक आर्यो की चातुर्वर्ण व्यवस्था ही आगे चलकर जातियों में बट गयी। कर्बे के मतानुसार जाति व्यवस्था या इस तरह की कोई सामाजिक व्यवस्था आर्यो के भारत में आगमन के पहले से यहां पर प्रचलित थी। कर्बे ने जाति को एक विस्तारित नातेदारी-समूह या विस्तारित परिवार मानते हुए इसकी दो विशेषताएँ बतायी: अन्तः विवाही समूह और जाति का परम्परिक या पुस्तैनी व्यावसाय। संयुक्त परिवार का विश्लेषण करते हुए कर्बे ने सहनिवास, सहभोज, सहउपासना, साझा सम्पत्ति और नातेदारी संबंधों में आबद्धता को इस प्रकार के परिवार की प्रमुख विशेषताएँ बताई है।

पी.एन. प्रभू - इन्होंने हिंदू सामाजिक संगठन पर किये गये अपने अध्ययन में इस उपागम का प्रयोग करते हुए कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत, पुरूषार्थ, आश्रम व्यवस्था,वर्ण व्यवस्था, ऋण व यज्ञ, संस्कार आदि को हिंदू सामाजिक संगठन के दार्शनिक एवं संस्थागत आधार के रूप में प्रस्तुत किया। और वर्तमान समाज में इसकी निरान्तरता एवं इसकी प्रकार्यात्मक भूमिका को स्पष्ट किया।

लुई डयूमा - फ्रांसीसी मानवशास्त्री लुई डयूमा भारतीय समाजशास्त्र के क्षेत्र में जाति व्यवस्था, नातेदारी, धर्म, एवं विवाह का अध्ययन का सराहनीय योगदान दिया है। इन्होंने जाति व्यवस्था और भारत की गांवो की सामाजिक सरंचना के अध्ययन के लिए भारत विद्याशास्त्रीय उपागम का व्यापक प्रयोग किया। उन्होने जाति व्यवस्था को भारतीय समाज की आधारभूत संस्था माना है। उन्होंने जाति व्यवस्था को पवित्रता और अपवित्रता के आधार पर समझने का प्रयास किया है। डयूमा ने हिंदू समाज को समझाने के लिए इण्ड़ोलाजी स्त्रोतो (पौराणिक धार्मिक ग्रन्थों) का सहारा लेते हुए बाह्मणवादी दृष्टिकोण से समाज को समझने का प्रयास किया। जिसकी बाद में आलोचना भी हुई। '' भारत में समाजशास्त्र की पीठ '' की स्थापना के अवसर पर हेग विश्वविद्यालय में डयूमा ने भाषण देते हुए कहा कि ' भारतीय समाजशास्त्र एक विशिष्ट ज्ञान की शाखा है जो भारत विद्याशास्त्र और समाजशास्त्र के संगम स्थल पर स्थित है'। सन् 1970 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'होमोंहाईररकी' ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में उन्हें अग्रणी समाजशास्त्री के रूप कर दिया।

आलोचात्मक मूल्यांकन

भारत विद्याशास्त्र अध्ययन की इस परम्परा पर बल देता है कि किसी समाज का अध्ययन उसके परमपरागत मूल्यों एवं साहित्यों के आधार किया जाना चाहिए। यहीं कारण है कि यह परिपेक्ष भारतीय समाज के अध्ययन में वेदो, पुराणो, स्मृतियों आदि जैसे प्राचीन ग्रन्थों को महत्व देता है जिनके अध्ययन का आधार अनुभाविक न होकर के धार्मिक एवं दार्शनिक होते है। इन्हीं कमियों के कारण भारतीय विद्याशास्त्रीय परिपेक्ष्य की कड़ी आलोचना होती है। यहा हम भारत विद्याशास्त्र की प्रमुख कमियों को रेखांकित कर रहे है जो निम्न है:-

1. भारत विद्याशास्त्र के अध्ययन का आधार प्राचीन ग्रन्थ एवं साहित्य है। ये मूल रूप से धर्म एवं दर्शन पर आधारित होते है जिनमें तार्किता एवं वैज्ञानिकता की प्रयाप्त कमी दिखाई पडती है। जिस कारण इस परिपेक्ष्य की समाजशास्त्रीय ने कड़ी आलोचना की।

2. समाज परिवर्तनशील है समय के साथ समाज की प्रकृति भी बदलती रहती है भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाओं में समय के साथ व्यापक परिवर्तन हुए है। प्राचीन ग्रंथ एवं साहित्य के अधार पर वर्तमान भारतीय समाज का अध्ययन संभव नही।
3. कई समाजशास्त्रियों के अनुसार आनुभाविकता का अभाव इस परिपेक्ष्य की प्रमुख कमी है। प्रमुख भारतीय समाजशास्त्री एम.एन. निवास भी इस परिपेक्ष्य की आलोचना करते हुए कहते है कि यह परिपेक्ष्य 'बुक ब्यू ' पर आधारित है जिसकी सहायता से समाज का आनुभाविक अध्ययन संभव नही । उनका मानना था कि भारतीय समाजशास्त्र अनुमानात्मक विषय नही बल्कि अनुभावात्मक विषय है। ऐसे विषय का आधार 'बुक ब्यू' नही 'फील्ड ब्यू' होना चाहिए और भारतीय समाज के क्षेत्रीय अध्ययन के आधार पर समाज का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
4. यह परिपेक्ष्य वर्तमान समाज के अध्ययन में प्राचीन ग्रंथों एंव साहित्यों के विश्लेषण पर बल देता है और क्षेत्रीय अध्ययन की उपेक्षा करता है इसलिए आलोचको का कहना है कि यह परिपेक्ष्य भारतीय समाज के केवल परमपरागत स्वरूप, धार्मिक एवं दार्शनिक आधारों के विश्लेषण में ही प्रांगिक रह जाता है। जब भारतीय समाज एवं संस्थाएं स्थिर नही रही है बल्कि निरंतर परिवर्तनशील रही है तो यह परिपेक्ष्य परिवर्तनशील भारतीय समाज का विश्लेषण कर पाने में अक्षम दिखाई पड़ता है।
5. उपर्युक्त कमियों के बाद भी भारतीय समाज के अध्ययन में भारत विद्याशास्त्र परिपेक्ष्य के महत्व को अस्वीकार नही किया जा सकता। भारतीय समाज मूल रूप से परमपरिक एवं प्राचीन संस्कृति वाला देश है जिसका प्रभाव वर्तमान भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतीय सामाजिक परमपराएं कभी समाप्त नही हुए ये परम्पराऐं कुछ स्वरूप परिवर्तन के बाद भी वर्तमान समाज में अपनी निरंतरता बनाये हुए है जिनकों समझे बिना भारतीय समाज का व्यवस्थित अध्ययन संभव नही है। जिस कारण यह परिपेक्ष्य भारतीय समाज के अध्ययन में महत्वपूर्ण है। भारतीय समाजशास्त्रियों ने भी इस परिपेक्ष्य की कमियों को स्वीकार किया है और भारतीय समाज के अध्ययन में इसके साथ-साथ क्षेत्र कार्य को भी महत्व दिया है। इस परिपेक्ष्य का प्रयोग भारत के लगभग सभी प्रमुख समाजशास्त्रियों ने किया है। जिसमें जी.एस. घुरिये, ईरावती कर्वे, कपाड़िया, एम.एन. शाह आदि है। जिन्होंने अपने अध्ययन में भारत विद्याशास्त्र के साथ-साथ क्षेत्रकार्य को भी महत्व दिया।

4.4.8. सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत भारतीय विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र में संबंध पर विस्तृत चर्चा की गयी। जिसके अन्तर्गत सर्वप्रथम भारतीय विद्याशास्त्र के बारे में मौलिक जानकारी प्राप्त की गयी। यह भारतीय समाज को समझने की वह प्रविधि है जो ऐतिहासिक, पौराणिक ग्रन्थों महाकाव्यों एवं साहित्यों पर आधारित होती है। इस इकाई के अन्तर्गत भारतीय विद्याशास्त्र की विशेषताओ पर भी चर्चा की गयी। इसकें साथ-साथ प्रमुख विद्याशास्त्रियों एवं उनके विचारो का अध्ययन करते हुए इस विद्याशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन किय गया।

4.4.9. बोध प्रश्न

4.4.9.1. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारत विद्याशास्त्र का संक्षिप्त परिचय देते हुए घुरिये के योगदान की चर्चा कीजिए?
2. भारत विद्याशास्त्र क्या है? इसकें विकास एवं विशेषताओं पर प्रकाश ड़ालिए।
3. भारत विद्याशास्त्र को परिभाषित करते हुए भारत विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र के बीच संबंधों को समझाइए?
4. प्रमुख विद्याशास्त्रीयों एवं उनकें योगदान पर विस्तृत चर्चा कीजिए?
5. भारत विद्याशास्त्र का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए?

4.4.9.2. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. घुरिये के भारतीय विद्याशास्त्र परिपेक्ष्य पर टिप्पणी लिखिए?
2. भारत विद्याशास्त्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए?
3. भारत विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र के संबंध को समझाइए?
4. प्रमुख इण्ड़ोनाजिस्ट का नाम लिखिए?
5. भारत विद्याशास्त्र के कमियों का उल्लेख कीजिए?

4.4.9. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इण्ड़ोलाजी आधारित होता है।

   अ. ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं साहित्यों पर

   ब. शोध पर

   स. तर्क पर

   द. कल्पना पर

2. भारत विद्याशास्त्र के प्रवर्तक समाजशास्त्री है

   अ. डी.पी. मुखर्जी

ब. निवास

स. घुरिये

द. ए.आर. देसाई

3. हिंदू नातेदारी पुस्तक है

अ. डी.पी. मुखर्जी

ब. घुरिये

स. ए.आर. देसाई

द. के.एम. कपाड़िया

4. हिंदू सोसाइटी पुस्तक किसने लिखी?

अ. ईरावती कर्वे

ब. घुरिये

स. आर.के. मुखर्जी

द. एच.सी. दूबे

5. भारत में विवाह एवं परिवार पुस्तक के लेखक है?

अ. आर.के. मुखर्जी

ब. के.एम. कपाड़िया

स. एस.सी. दूबे

द. ईरावती कर्वे

4.4.10. प्रश्नोत्तर

1. अ
2. स
3. द
4. अ
5. ब

4.4.11. संदर्भ ग्रंथ

1. गुप्ता, एल.एम. एवं शर्मा, डी.डी. (2010). *समाजशास्त्र*. आगरा: साहित्य भवन पब्लिकेशन.

2. महाजन, धर्मबीर. एवं महाजन, कमलेश. (2014). *समाजशास्त्र*. नई दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

3. सिंह, प्रताप. हिरेन्द्र. एवं कुमार, नवीन. (2014). *समाजशास्त्र*. आगरा: अग्रवाल पब्लिकेशन.

4. मुकर्जी, नाथ. रवीन्द्र. (2007). *सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा*. दिल्ली: विवेक प्रकाशन.

नोट – इस कृति का कोई भी अंश विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लिए बिना पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। संयोगवश यदि इसमें कोई भी कमी या त्रुटि रह गई हो तो इसके लिए संपादक, संयोजक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। अवगत कराए जाने पर सुधार करने का प्रयास किया जाएगा।